देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
November 2025
Vol.-22, Issue-5

Impact Factor
8.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

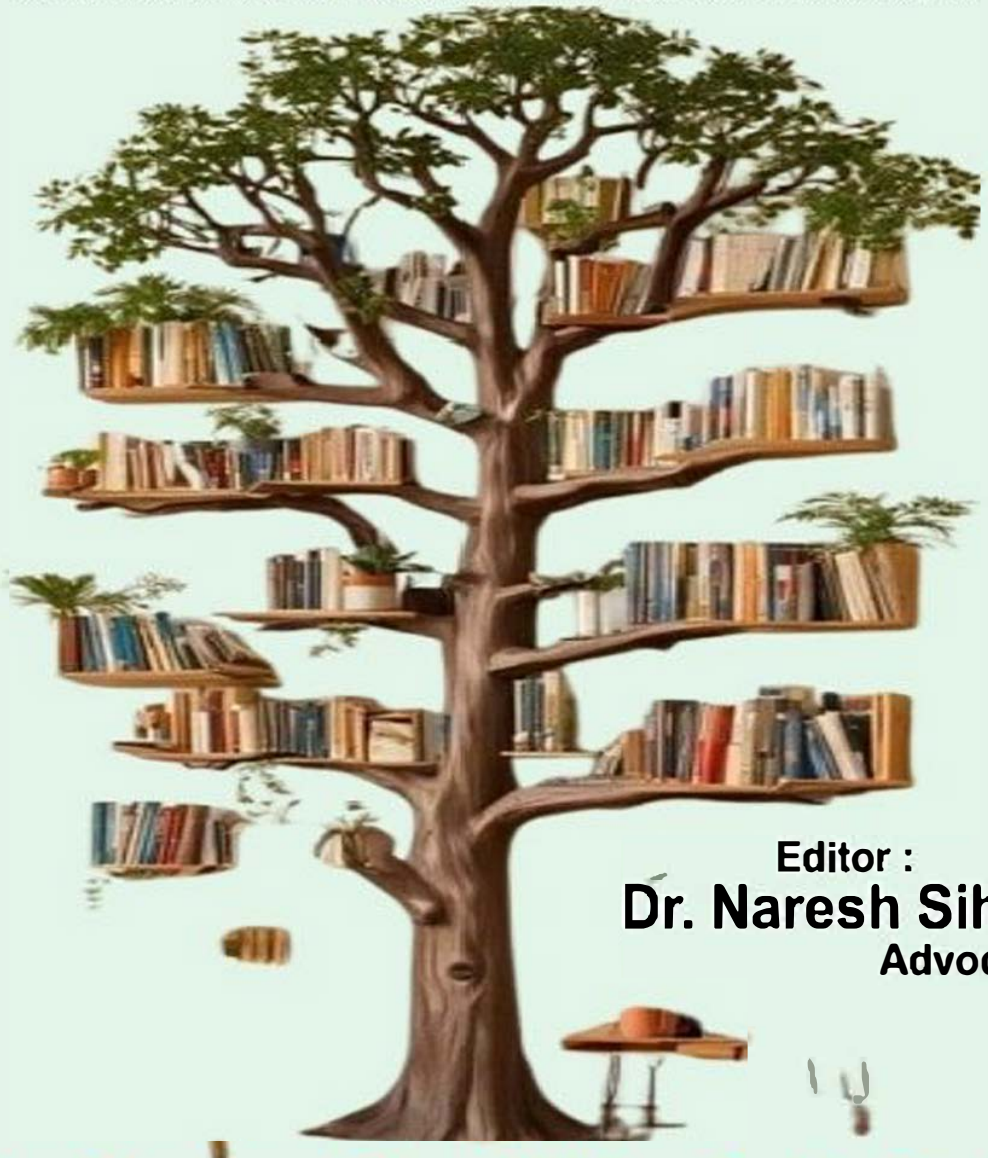

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 22 ISSUE-5 (नवम्बर 2025) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध-पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव-10, कृतिदेव-21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :- उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र : टेलीफोन, मोबाईल नं., ई-मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

★ शोध पत्र 2000-2500 शब्दों (4-6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

★ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

★ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

★ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/- रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/- रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

अनुक्रमणिका-नवम्बर 2025

क्र०	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	संपादकीय	डॉ० नरेश सिहाग	10-10
2.	भारतीय स्वाधीनता आंदोलन और छायावाद	प्रो. जगदेव कुमार शर्मा	11-18
3.	न्यीशी जनजाती के पारंपरिक लोक कलाओं का सामान्य परिचय	डॉ. डूरी शांति	19-27
4.	भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भागीदारी: एक ऐतिहासिक विश्लेषण	कमला कुमारी	28-33
5.	Oraon Tribe and PDS: A Sociological Study of the Impact of the National Food Security Act (NFSA)	Prof. Raj Kumar	34-38
6.	भारत में कृषि क्रांति एवं इसके भौगोलिक प्रभाव: पलामू जिले के संदर्भ में	सुमित्रा कुमारी	39-44
7.	सोशल मीडिया का चक्रव्यूह और वर्तमान युवा पीढी	डॉ.सूर्यकांत शिंदे	45-47
8.	Information Retrieval in the Era of Big Data: Challenges and Innovations	Dr. Devendra Kumar Sharma	48-58
9.	समकालीन रचनाओं में पारिस्थितिकी स्त्रीवाद- एक नई सोच	डा. जी सुजिदा	59-61
10.	विकास की चकाचौंध और विस्थापन की पीड़ा : समकालीन हिंदी कहानियों के आईने में	डॉ.अंजली जोसफ	62-65
11.	हिन्दी कहानियों में नव माध्यम का प्रभाव	Dr. Jeena Mary Jose	66-68
12.	परिवर्तन की बात - शोषण का शिकार	डॉ. एस. लीलाकुमारी अम्मा	69-70
13.	भारतीय शिक्षण नीति-2020 में हिन्दी का महत्त्व	डॉ. शिल्पा राजेन्द्रसिंह कामलीया	71-74
14.	ग्रामीण क्षेत्रों में लैंगिक असमानता को कम करने में शिक्षा की भूमिका	Dr.Deepa Bharti	75-78
15.	सन्तों के देश में बाज़ारीकरण का आधार शब्द शक्ति व्यापार	डॉ. अश्विनी रोलन	79-82
16.	AI का सामाजिक प्रभाव एवम् चुनौती	रमेश कुमार भोजक, डॉ. तेज कुमार	83-85

17.	"Invisible Decomposers of the Social Ecosystem: Manual Scavenging, Environmental Justice, and the Ethics of Sustainability in India"	Reeta Rani, Dr Shiv Nandan Maurya,	86-90
18.	डॉ० ए० पी० जे० अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचार	सोमित सिंह, डॉ० कृपा शंकर यादव	91-95
19.	कुमार कृष्ण के काव्य में ग्रामीण संस्कृति	मनोज कुमार, डॉ एस. प्रीति	96-104
20.	कबीर और हरिशंकर परसाई: समाज में व्यंग्य और विद्रोह की परंपरा	इन्दु कुमारी	105-110
21.	उराँव समाज की सामाजिक संस्था 'परहा पंचायत' का रूपांतरण: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन	पूर्णिमा किस्पोट्टा	111-115
22.	SOCIAL THOUGHTS OF DR. B.R AMBEDKAR IN CONTEXT OF UNTOUCHABILITY	Dr. Renu Bala	116-119
23.	अखिलेश की कहानियों में उपभोगवादी संस्कृति ('हाकिम कथा' और 'शापग्रस्त' कहानी के संदर्भ में)	लक्ष्मी प्रिया वी., डॉ. षिबी सी.	120-127
24.	Intersectionality and Democratic Inclusion: Reimagining Policy for Gender and Sexual Minorities in India	Shakkeeb P,	128-131
25.	भूमंडलीय संकट के परिप्रेक्ष्य में बालमन	प्रियंका श्रीवास्तव	132-135
26.	'एक कहानी यह भी' में स्त्री की आतंरिक वेदना	रीना गिरी, डॉ. सरिता रावत	136-139
27.	नासिरा शर्मा की कहानियों में चित्रित माँ का बदलता स्वरूप	Jasmine Mary P J	140-143
28.	दिविक रमेश की बाल कविताओं में प्रकृति और पर्यावरणीय चेतना	कंचना कुमारी, डॉ० एस. रज़िया बेगम	144-148
29.	संवेदना का बाज़ार : भूमंडलीकरण के कारण भारतीय पारिवारिक संबंधों का विघटन	सोना जाट	149-153
30.	आदिवासी जीवन और साहित्य	आशिमा गोयल	154-156
31.	हिंदी एकांकी साहित्य के विकास में भारतेंदु हरिश्चंद्र का योगदान	डॉ. दिलचंद राम	157-161
32.	हिंदी बाल कथा साहित्य में बाल जीवन की समस्याएं : एक	पूजा सोनी	162-165

	मनौवैज्ञानिक अध्ययन		
33.	हिंदी का बदलता परिवेश और संभावनाएं	रजत तिवारी	166-169
34.	मुअनजोदड़ो : सभ्यता से संवाद का सफ़रनामा	अमित कुमार यादव	170-173
35.	इक्कीसवीं सदी के प्रमुख उपन्यासों में किन्नर जीवन की त्रासदी	डॉ. राहुल सैनी	174-176
36.	शैक्षिक सुविधाओं में वृद्धि एवं जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना में सहसम्बन्ध: अलवर जिले का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	नीतू चौधरी, डॉ. विजय कुमार वर्मा	177-185
37.	डॉ. महीप सिंह की कहानियों में विभाजन की विभीषिका का चित्रण	अभिमल्ला विजयश्री	186-188

संपादकीय

विचार का उजाला ही सच्चा दीप है

"बोहल शोध मंजूषा" का यह नवंबर अंक उजास का विस्तार है — एक ऐसा प्रयास, जहाँ साहित्य, समाज, संस्कृति और शोध के विविध स्वर एक साथ झिलमिलाते हैं। यहाँ हर लेख, हर समीक्षा और हर विमर्श अपने भीतर एक दीप की तरह प्रज्वलित है, जो अंधकार के विरुद्ध ज्ञान की लौ को जीवित रखता है।

इस बार के अंक में सम्मिलित लेख, समीक्षाएँ और शोध आलेख समकालीन हिंदी साहित्य की संवेदनशील दिशा को रेखांकित करते हैं। चाहे बात हो **नव मीडिया और डिजिटल साहित्य** की अथवा **ग्रामीण जीवन और लोक चेतना** के पुनरुत्थान की या फिर **स्त्री विमर्श, पर्यावरण-संवेदना और सामाजिक यथार्थ** की — हर आलेख अपने समय से संवाद करता है और पाठकों को सोचने पर विवश करता है। हमारे लेखक केवल शब्दों के शिल्पी नहीं, बल्कि समय के साक्षी हैं — वे उन आवाज़ों को स्वर देते हैं, जो अक्सर समाज के शोर में दब जाती हैं।

"बोहल शोध मंजूषा" की संपादकीय दृष्टि हमेशा इस विचार पर आधारित रही है कि ज्ञान और संवेदना का संगम ही सच्चे साहित्य की पहचान है। यदि शोध केवल तथ्यों तक सीमित रह जाए और उसमें जीवन का ताप न हो, तो वह निर्जीव हो जाता है। उसी प्रकार यदि साहित्य में गहराई और विश्लेषण का अभाव हो, तो वह क्षणिक प्रभाव तक सीमित रह जाता है। इसलिए, हमारी यह पत्रिका सदा इस द्वंद्व को संतुलित करने का प्रयास करती रही है — जहाँ **विचार की गंभीरता और भाव की मधुरता** एक साथ चल सकें।

हमारा यह भी विश्वास है कि शोध और लेखन को केवल 'प्रकाशन' का माध्यम न समझा जाए, बल्कि इसे **लोकसेवा** के रूप में देखा जाए। जब कोई लेखक समाज की समस्याओं पर लिखता है, जब कोई शोधकर्त्ता परंपरा के भीतर से नयी दृष्टि खोजता है — तो वह वास्तव में मानवता की सेवा कर रहा होता है। ऐसे ही लेखन से सभ्यता आगे बढ़ती है, पीढ़ियाँ संवाद करती हैं, और इतिहास अपना आकार ग्रहण करता है।

इस दीपोत्सवी अंक के माध्यम से हम उन सभी रचनाकारों को नमन करते हैं, जो सत्य, सौंदर्य और करुणा के पक्षधर हैं। वे लेखक जो शब्दों से प्रकाश रचते हैं, वे शोधकर्त्ता जो तथ्यों के बीच से मानवता की गंध खोजते हैं, और वे पाठक जो इन सबको आत्मसात करते हैं — ये तीनों मिलकर ही **सृजन की पूर्ण त्रयी** बनाते हैं।

हम अपने पाठकों और लेखकों का हृदय से आभार व्यक्त करते हैं, जिनके विश्वास और स्नेह ने इस पत्रिका को निरंतर नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया है। **आपका सहयोग ही हमारी प्रेरणा है।**

आइए, हम सब मिलकर यह संकल्प लें —
कि शोध और लेखन केवल पुस्तकीय न रह जाएँ,
बल्कि **जीवनमूल्य** बनें।
हम अपने शब्दों से समाज के अंधेरों को चुनौती दें,
अपने विचारों से नई सुबह का स्वागत करें,
और अपने लेखन से यह प्रमाण दें कि
जब विचार जीवित रहते हैं, तभी मानवता का प्रकाश बना रहता है।

– संपादक
बोहल शोध मंजूषा

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 11-18
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन और छायावाद

प्रो. जगदेव कुमार शर्मा
आचार्य एवं अध्यक्ष मानविकी विभाग,
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय (केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

हिन्दी साहित्य के इतिहास में छायावाद को एक महत्वपूर्ण काव्य आंदोलन के रूप में रेखांकित किया जाता है। छायावाद का आरंभ 1918 ई. से माना जाता है। 1920 ई. के आसपास पत्र-पत्रिकाओं में यह शब्द चलन में आ चुका था। 'छायावादी कविता के सौन्दर्य-पक्ष और वैचारिक पक्ष पर बाद में अनेक महत्वपूर्ण आलोचकों ने कई महत्वपूर्ण लेख लिखे और उसे स्वीकृति प्रदान की। उसे 'स्वाधीन चेतना का महत्वपूर्ण काव्य-आन्दोलन' माना गया। कई विद्वानों ने यह भी स्वीकार किया कि छायावद को 'शक्ति-काव्य' के रूप में देखा जाए। जिसमें कविता के ऊपरी तौर पर भाषा-शैली, छंद, कल्पना आदि सौन्दर्यबोध है किन्तु आंतरिक रूप से छायावद में राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। छायावाद का समय मोटे तौर पर 1918-1936 ई. माना जाता है। छायावाद के प्रमुख कवियों में जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और महादेवी वर्मा हैं।

वास्तव में छायावाद का समय मूलतः राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का समय था। यह वह दौर था जब महात्मा गांधी के नेतृत्व में सत्य और अहिंसा को केन्द्र में रखकर महत्वपूर्ण आंदोलन हो रहे थे। गांधी के राजनीति में प्रवेश के पहले से ही भारतीय समाज नवजागरण के दौर से गुजर रहा था। नवजागरण की चेतना आम जनता में फैल रही थी। ब्रिटिश शासन के माध्यम से पश्चिमी ज्ञान विज्ञान, साहित्य, दर्शन आदि से भारतीय युवा वर्ग परिचित हो चुका था। पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति से भारतीय संस्कृति की टकराहट से एक नया विचार और नया ज्ञानोदय तैयार हो रहा था। छायावाद इसी वैचारिकी का कविता में रूपांतरण है। छायावाद अपनी ऊर्जा स्वाधीनता आन्दोलन से ग्रहण करता है। छायावादी कविता का सम्पूर्ण सौन्दर्यबोध व्यक्ति की स्वाधीनता की भावना से उत्पन्न हुआ है। छायावादी कवियों ने नितान्त वैयक्तिक भावनाओं को भले ही कविता के रूप में उजागर किया हो किन्तु इन कविताओं में अप्रत्यक्ष रूप से स्वाधीनता की चेतना विद्यमान रही है। निराला की महत्वपूर्ण कविता 'राम की शक्ति-पूजा' (1936 ई.) छायावाद की एक उत्कृष्ट प्रबंधात्मक रचना है। इस काव्य में 'निराला ने पौराणिक प्रतीक एवं कथानक के माध्यम से देशोद्धार के लिए नैतिक शक्ति साधना का संदेश देने का कार्य करते हैं। इसके द्वारा निराला देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत जनता को उत्साहित

एवं प्रेरित करना चाहते हैं। वे रामकथा से एक अत्यंत संकटपूर्ण प्रसंग रावण के साथ युद्ध में राम की निराशा का चयन करते हैं और अपनी सृजनात्मक कल्पना के योग से एक तरफ उसमें पौराणिक वातावरण की सृष्टि करते हैं वहीं और दूसरी ओर उसमें नई अंतर्वस्तु का समावेश भी करते हैं। यह कविता उस वक्त लिखी गई जब देश अंग्रेजों के अधीन था। यहाँ सीता अपहरण के प्रसंग का चुनाव कर राष्ट्र - मुक्ति हेतु नवयुवकों को प्रेरित किया गया है। निराला ने राम का चित्रण एक साधारण मानव के रूप में किया है जिसकी अस्मिता रावण के अधीन है और ऐसे में उस जीवन पर धिक्कार है जो राष्ट्र को स्वतंत्र कराने में सक्षम नहीं है। कविता में निराला राम के मुख से कहलवाते हैं -

"धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन, जिसके लिए सदा ही किया शोध!
जानकी! हाय, उद्धार प्रिया का न हो सका।"[1]

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला अपनी प्रबंधात्मक कविता 'राम की शक्ति पूजा'में राम के माध्यम से साधारण मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन संघर्ष को बताते हैं। निराला का मानना है कि हम अंग्रेज जैसी बाह्य शक्तियों को तभी पराजित कर सकते हैं जब आपसी भेद-भाव को त्यागकर पूर्ण मनोयोग से मिलकर अंग्रेजों का सामना करेंगे। वे जामवंत के माध्यम से केवल राम को ही नहीं अपितु समस्त मानव समाज को जगाने का प्रयास करते हैं -

"रघुवर विचलित होने का नहीं देखता मैं कारण,
हे पुरुष सिंह तुम भी यह शक्ति करो धारण,
आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर,
तुम करो विजय संयत प्राणों से प्राणों पर।"[2]

देश को पराधीन देखकर निराला के मन में अनेक भाव उदय होते हैं, कभी वह आत्मग्लानि से भर जाते हैं, कभी उनका मन अवसादग्रस्त हो जाता है। कभी अतीत का स्मरण करके जनता में राष्ट्रीस भाव जगाने का प्रयास करते हैं तो कभी पराधीनता से समझौता करने वालों पर क्रोध भी करते हैं । निराला स्वाधीनता पर पराधीन देशवासियों की मोहनिद्रा से क्षुब्ध होकर कहते हैं-

"मेरे साथ मेरे विचार
मेरी जाति
मेरे पददलित मौन है- निद्रत है
स्वप्न में भी पराधीन।"[3]

मुख्य रूप से निराला के काव्य की विषय-वस्तु सर्वहारा वर्ग दलित, गरीब, मजदूर, और किसान आदि रहे हैं। छायावादी युग में रचित 'वह तोड़ती पत्थर', 'दीन', 'ग़रीबों की पुकार', 'भिक्षुक', 'दीन', 'विधवा' आदि कविताएँ इसका ज्वलंत प्रमाण हैं। 'जन्मभूमि' 'स्वाधीनता पर' 'बादल-राग' महाराज शिवाजी का पत्र', 'राम की शक्तिपूजा', 'तुलसीदास', 'दिल्ली 'जागो फिर एक बार', 'आवाहन' आदि कविताएँ भारतीय स्वाधीनतावादी आंदोलन से अनुप्रेरित कविताएँ हैं। निराला की भाँति अन्य छायावादी कवियों ने भी अपने काव्य के माध्यम से स्वाधीनतावादी आंदोलन में महत्वपूर्ण

भूमिका निभायी। इनमें प्रसाद, पंत, रामकुमार वर्मा, महादेवी वर्मा, आदि ने बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। इन्होंने प्राचीन भारतीय इतिहास के स्वर्णिम वृतांतों के माध्यम से संस्कृति की अभूतपूर्व झांकी प्रस्तुत की तथा जन मानस में स्वाधीनता की भावना को जाग्रत किया। इस संदर्भ में नामवर सिंह का कथन देखा जा सकता है- "इस तरह छायावाद ने प्रत्यक्ष रूप से भी समकालीन राष्ट्रीय आंदोलन को प्रतिबिम्बित और प्रभावित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया। यह ज़रूर है कि सभी कवियों ने समान रूप से इस भाव की कविताएँ नहीं लिखीं, लेकिन यह सच है कि सभी कवियों ने राष्ट्रीय आंदोलन के किसी किसी पहल को यथाशक्ति चित्रित करने की कोशिश की। इन सबमें निराला सबसे आगे रहे।"[4]

छायावादी काव्य में अपनी परंपरा के गौरव का बोध सर्वाधिक दिखलाई पड़ता है। निराला की चर्चित कविता 'छत्रपति शिवाजी का पत्र', औरंगजेब के समर्थक जयसिंह के लिए नहीं, बल्कि अंग्रेजी बहादुर के समर्थक आधुनिक 'जयसिंहों' के लिए है, जिसमें अंत तक जाते-जाते वे कहते हैं-

"एकीभूत शक्तियों से एक हो परिवार
फैले समवेदना,
व्यक्ति का खिचाव यदि जातिगत हो जाए,
देखो परिणाम फिर,
स्थिर न रहेंगे पैर,
पस्त हौसला होगा,
ध्वस्त होगा साम्राज्य
जितने विचार आज
मारते तरंगा हैं,
साम्राज्यवादियों की भोगवासनाओं में
हिन्दुस्तान मुक्त होगा घोर अपमान से,
दासता के पाश कट जाएँगे।"[5]

प्रथम दृष्ट्या इस कविता में हिंदू पुनरूत्थान का स्वर भले ही दिखाई पड़ रहा हो, परंतु इसमें अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरूद्ध विद्रोह तथा जातीय एकता का बीज भी निहित है। जागो फिर एक बार' कविता में भी निराला ने सांस्कृतिक परंपरा की दुहाई देकर आत्म- गौरव और उद्बोधन का भाव जगाया है। अकाली सिक्खों के शौर्य तथा गीता की वाणी को स्मरण कराते हुए निराला कहते है-

"जागो फिर एक बार
समर अमर कर प्राण
गान गाये महासिंधु से
सिन्धु, नद-तीरवासी!
सैन्धव तुरंगो पर

चतुरंग चमू संग;

.....…..

शेरों की म्यांद में

आया है आज फिर स्यार

जागो फिर एक बार।"[6]

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने अपनी कविता 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' में शिवाजी के आदर्श चरित्र और ओजमयी वाणी के माध्यम से पराधीन भारतीयों को ही लक्ष्य किया है। महाराज छत्रपति शिवाजी किस प्रकार जय सिंह को धिक्कारते और समझाने का प्रयास करते है उसे पढ़कर कौन जड़ उद्वेलित नहीं होगा। युद्ध का सीधा वर्णन किये बिना कवि ने व्यजना से राम भारतीयां की ही उदबुद्ध किया है। छत्रपति शिवाजी जिस प्रकार जय की सहायता से निराला समर भूमि और संघर्ष का चित्र उपस्थित कर देते हैं। भावात्मक उर्जा से दीप्त होकर निराला के बिम्ब मानस पर गहरा प्रभाव डालते हैं जो भाषण मात्र से नहीं पड़ सकता। निराला शत्रुओं को किस प्रकार फटकार लगाते हैं उन्हें इन पंक्तियों में देखा जा सकता है-

"शत्रुओं के खून से धो सके यदि एक भी तुम माँ का दाग

कितना अनुराग देशवासियों का पाओगे ।

निर्जन हो जाओ अमर कहलाओगे।"[7]

छायावद में भारतवर्ष का गुणगान, स्वतंत्रता के लिए जन-जागृति, भारतीयों की दयनीय स्थिति एवं दासता के प्रति विद्रोह व आक्रोश है। जयशंकर प्रसाद की निम्न पंक्तियाँ ओज गुण से परिपूर्ण है जो देश के नौजवानों में जागरण एवं चेतना प्रसारित करने में किसी भी दृष्टि से कम नहीं है। उन्होंने भारतीय जनमानस में आशा, उत्साह एवं आत्मविश्वास का संचार किया है। प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक चन्द्रगुप्त की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं-

“हिमाद्रि तुंग श्रंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती,

स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतन्त्रता पुकारती |"[8]

प्रसादजी ने अपने नाटकों में देश का गौरवगान कर भारत देश के नौजवानों को जाग्रत करने का प्रयास किया है। प्रसादजी का गीत- “बीती विभावरी जाग री, अंबर पनघट में डूबो रही, ताराघट ऊषा नागरी। इस गीत को आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने जागरण गीत कहा है। यह गीत मात्र प्रकृति चित्रण के माध्यम से एक नायिका को जगाने के लिए ही नहीं है बल्कि सम्पूर्ण देश को जगाने के लिए भी है। प्रसाद के साहित्य में राष्ट्रीयता एवं स्वदेश के प्रति अनुराग की जो भावना है, वह भी युगीन प्रभाव से अनुप्राणितहै। जयशंकर प्रसाद हिंदी के ऐसे सहित्यकार हैं, जिन्होंने अपने नाटकों में गीतों का सर्वाधिक प्रयोग किया है और यह काम प्रसाद ने लगभग सभी नाटकों में किया है। उनके नाट्यप्रगीतों में राष्ट्रप्रेम की अनुगँज सुनाई देती है और साथ ही उसमें देश की सभ्यता एवं संस्कृति का चित्रण भी देखने को मिलता है। प्रसाद ने अपने काव्य नाटकों में देश के सांस्कृतिक और राष्ट्रीय गौरव को उस ऊँचाई तक पहुँचाया है, जहाँ वे मात्र

देशवासियों के लिए ही प्रेरक और वन्दनीय नहीं अपितु समस्त विश्व के लिए अभिनंदनीय बन गए हैं। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में कार्नेलिया द्वारा गाया हुआ यह गीत इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है-

"अरुण यह मधुमय देश हमारा !
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ-विभा पर नाच रही तरूशिखा मनोहर ।
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा।
लघु सुरधुन से पंख पसारे शीतल मलय समीर सिहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुँह किये समझ नीड निज न्यारा
मंदिर ऊंघते रहते जब-जब कर रजनी भर तारा।"[9]

छायावाद को नवजागरण की अभिव्यक्ति कहा जा सकता है। इस नवजागरण के पीछे मुख्य रूप से राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना अधिक सक्रिय थी। छायावाद का मूल उत्स भारतीय स्वाधीनता संघर्ष में है। जब लोगों में दासता के ख़िलाफ संघर्ष के भाव मुखरित हुए, तो उनमें स्वाधीनता की चेतना प्रस्फुटित हुई। इसी चेतना का परिणाम है कल्पना पर अधिक बल। ध्यान देने योग्य बात यह है कि हिंदी कविता में छायावाद और भारतीय राजनीतिक मंच पर महात्मा गांधी का आगमन लगभग एक साथ हुआ। तभी तो डॉ. नगेन्द्र कहते हैं- "जिन परिस्थितियों ने हमारे दर्शन और कर्म को अहिंसा की ओर प्रेरित किया, उन्होंने ही भाव-वृत्ति को छायावाद की ओर ।"[10] जयशंकर प्रसाद के काव्य में हमें नवीन भावबोध के साथ-साथ स्वाधीनता की प्रखर चेतना, सूक्ष्म कल्पना, लाक्षणिकता, नवीन बिम्ब विधान, नया सौंदर्य बोध आदि के दर्शन होते हैं। छायावादी काव्य में राष्ट्रीय जागरण, सांस्कृतिक जागरण के रूप में आता है। नन्ददुलारे वाजपेयी ने आधुनिक साहित्य में कहा है, -"केवल राष्ट्रीयता की भावना देश और समाज के सांस्कृतिक जीवन के बहुमुखी पहलुओं का स्पर्श नहीं करती और एक बड़ी सीमा तक एकांगी बनी रहती है। नवयुग के कवियों ने इस तथ्य को समझ लिया था और इसीलिए उनकी रचनाएं 'राष्ट्रीय' न रहकर अधिक राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भूमियों पर पहुंची थीं।"[11] महाराणा का महत्व' प्रसाद का ऐतिहसिक काव्य है। महाराणा प्रताप हिन्दू आत्मविश्वास, स्वातंत्र्य भावना, देशभक्ति, विदेशी शक्ति के विरुद्ध संघर्ष के प्रतीक हैं। यह काव्य स्वाधीनता प्रेम, पराधीनता के खिलाफ संघर्ष, शौर्य एवं संकल्प की कविता है।

"मसि मुख से ले अहो लेखनी क्या लिखे !
उस पवित्र प्रातः स्मरणीय सुनाम को |
नहीं, नहीं, होगी पवित्र यह लेखनी
लिखकर स्वर्णाक्षर में नाम प्रताप का ।"[12]

इतना ही नहीं प्रसाद इस नाम के स्मरण की सलाह भी देते हैं-

"कर अपने प्रताप को विस्मृत सो गए
अरे कृतघ्न बनो मत उसको भूल के
यह महत्वमय नाम स्मरण करते रहो।"[13]

छायावद की श्रेष्ठ कवयित्री महादेवी वर्मा की कविता 'मैं नीर भरी दुख की बदली' में प्रेम की कसौटी और विरह की सर्वोच्चता के साथ-साथ दार्शनिकता भी विद्यमान है। इसलिए इस कविता का विविध आयामी अर्थ प्रकट होता है। यदि राष्ट्रप्रेम एवं पुनर्जागरण चेतना की दृष्टि से अवलोकन किया जाय तो महादेवी वर्मा की कविता 'मैं नीर भरी दुःख की बदली' में जीवन की समस्त सम्भावनाएँ समाहित हैं और यहाँ बादल क्रांति के दूत के रूप में प्रकट होता है। बादल अर्थात 'क्रांति का दूत' जो समस्त सामाजिक संकीर्णताओं, रूढ़ियों को तोड़कर राष्ट्र को एकाकार करने की भावना के साथ उपस्थित होता है-

तोड़ दो यह क्षितिज मैं देख लूँ उस पार क्या है ?
जा रहे जिस पंथ से युग कल्प उसका छोर क्या है ?
नभ डुबा पाया न अपनी बाढ़ में वह क्षुद्र तारे
ढूँढ़ने करुणा मृदुल घन चीर कर तूफान हारे ।"[14]

छायावादी कवियों प्रसाद और निराला के सम्बन्ध में अपना मत प्रस्तुत करते हुए प्रखर मार्क्सवादी आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं कि -'स्वाधीनता आंदोलन के प्रति छायावादी कवियों का रुख उन्हें इतिहास को नए सिरे से समझने की प्रेरणा देने वाला है, सामन्ती समाज के अन्तर्विरोधों, राजाओं के अत्याचारों तथा उच्चवर्णों द्वारा निम्नवर्णों के उत्पीड़न की पहचान प्रसाद और निराला दोनों में स्पष्ट है ।"[15] छायावादी रचनाएँ देश-प्रेम, स्वाधीनता आंदोलन, वैयक्तिक जीवन की अनुभूतियों का प्रकटन, प्रकृति और नारी सौंदर्य, धर्म, दर्शन, अध्यात्म का सीधा सम्बन्ध प्रकृति से जुड़ा हुआ है। समस्त छायावादी रचनाएँ नारी सौंदर्य और प्रकृति सौंदर्य दोनों ही दृष्टि से भारतीय परम्परा और राष्ट्रीयता के अनुरूप है। यहाँ अश्लीलता का अभाव है। सघन से सघन विरह को भी छायावादी रचनाकार श्रेष्ठता प्रदान करने का सफल प्रयास करते हैं।

मुख्य रूप से छायावाद को 1918 से 1936 तक सीमांकित किया जाता है यह वह दौर था जब देश में कई महत्वपूर्ण राष्ट्रीय घटनाएँ घटीं; जैसे, 1919 में जलियाँवाला बाग हत्याकांड | इसने समस्त भारतीयों के अंदर क्रांति की ज्वाला फूँक दी। 1920 में महात्मा गाँधी ने असहयोग आंदोलन शुरू किया, पर इसका भी बहुत ज्यादा प्रभाव अंग्रेजों पर नहीं पड़ा। 1928 में साइमन कमीशन के विरुद्ध एक प्रदर्शन में अंग्रेजों के लाठीचार्ज के फलस्वरूप लाला लाजपत राय की हत्या कर दी। 1931 में भगत सिंह को फाँसी दे दी गई। 1930 का सविनय अवज्ञा आंदोलन एवं उसके बाद हुए तीन गोलमेज सम्मेलनों का भी राष्ट्र हित में कोई स्पष्ट परिणाम नहीं निकला। इन सब घटनाओं को ध्यान में रखते हुए प्रख्यात आलोचक डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी छायावाद की राष्ट्रीयता पर विचार करते हुए लिखते हैं - "यह समूची काव्य-साधना स्वाधीनता संग्राम के युग की है। अतएव स्वाधीनता संग्राम के केंद्रीय भाव से जुड़कर ही यह सारी काव्य-साधना फलीभूत होती है इसलिए छायावाद अपनी सारी कल्पना- प्रवणता और रहस्य भावना के साथ शक्ति, जागरण और लोकमंगल का काव्य है, जिसमें व्यक्तिगत पीड़ा, दुःख और अवसाद भी समाविष्ट है,इसके लिए छायावाद ने कविता का रूप बदला शब्द-योजना, छंद,लय आदि में नया प्रयोग किया| "[16] छायावादी साहित्य में निहित राष्ट्रीय चेतना एवं स्वाधीनता की अनुगूंज को प्रायः सभी आलोचकों ने स्वीकार किया है। निराला के सम्बन्ध में डॉ. बच्चन सिंह लिखते

हैं कि- 'सरोज-स्मृति के पिता, राम की शक्तिपूजा के राम और तुलसीदास के तुलसीदास कहीं न कहीं एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं। कर्म-संन्यास, शक्ति-आराधना और उत्थानमूलक सांस्कृतिक चेतना एक ही मनःस्थिति के विकसनशील रूप हैं, तीनों बहुआयामी हैं, तीनों में युद्ध है- 'देखता रहा मैं खड़ा अपल/ वह शरक्षेप, वह रण-कौशल' (सरोज-स्मृति),आज का तीक्ष्ण शर - विधृत क्षिप्र कर, वेग प्रखर' (राम की शक्ति - पूजा), होगा फिर से दुर्धर्ष समर । (तुलसीदास)"[17] इन समस्त युद्धों के बीच शक्ति की मौलिक कल्पना भारतीय परम्परा का द्योतक है। 'राम की शक्तिपूजा' में श्रीराम स्वयं ईश्वर के अवतार होते हुए भी शक्ति का आह्वान करते हुए दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि उस समय देश ऐसे दौर से गुजर रहा था जिसमें देश व राष्ट्रहित हेतु शक्ति का आह्वान अपेक्षित है-

शक्ति की करो मौलिक कल्पना करो पूजन
छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो, रघुनंदन।
हे सिंह पुरुष तुम भी यह शक्ति करो धारण
आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर।"[18]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि छायावाद में राष्ट्रीय चेतना एवं स्वाधीनता आंदोलन का तीव्र स्वर मुखरित हुआ। इस युग में तत्कालीन राष्ट्रीय भावना का पूरा प्रभाव दिखाई देता है। ध्यान देने योग्य बात है कि हिन्दी साहित्य में छायावादी काव्य का उदय और अस्त उस युग में हुआ था, जब भारत में अंग्रेजों का अखण्ड राज्य था और देश में स्वतंत्रता का आन्दोलन पूरी शक्ति के साथ चल रहा था। उस समय छायावादी कवियों ने राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत अनेक गीतों का सृजन किया और अपने-अपने तरीके से राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में अपनी भूमिका का सफल निर्वाह किया।

संदर्भ -

1. राग-विराग, (संपादक) डॉ. रामविलास शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या -103
2. वहीं, पृष्ठ संख्या -99
3. निराला की साहित्य साधना, भाग -2, डॉ. रामविलास शर्मा, पृष्ठ संख्या -147
4. छायावाद, नामवर सिंह, पृष्ठ संख्या -10
5. निराला समग्र, प्रो. सूर्यप्रकाश दीक्षित, पृष्ठ -129
6. राग-विराग, (संपादक) डॉ. रामविलास शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-58
7. निराला समग्र, प्रो. सूर्यप्रकाश दीक्षित, पृष्ठ -140
8. चन्द्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, प्रकाशन संस्थान, पृष्ठ संख्या -126
9. वहीं, पृष्ठ संख्या -67
10. डॉ. नगेन्द्र ग्रन्थावली, (खंड -7), पृष्ठ संख्या -92
11. आधुनिक साहित्य, नंददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ संख्या -87
12. महाराणा प्रताप का महत्त्व, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ संख्या-०६

13. वहीं, पृष्ठ संख्या-08
14. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृष्ठ संख्या-43
15. छायावादी कविताएँ, शिवकिरण सिंह, संपादक डॉ.महेन्द्रनाथ राम, पृष्ठ संख्या-22
16. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ संख्या -127
17. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, पृष्ठ संख्या -349
18. राग-विराग, (संपादक) डॉ. रामविलास शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या -100

ईमेल - jagdevkumar68@gmail.com
मोबाइल - +91 9868618799

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 19-27
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

न्यीशी जनजाती के पारंपरिक लोक कलाओं का सामान्य परिचय

डॉ. डूरी शांति
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
देरा नातुङ शासकीय महाविधालय, ईटानगर जिला - पापुम पारे ७९११३,

प्रस्तावना : अरुणाचल प्रदेश के मनोरम पर्वतमालाओं में बहु-जनजातीय लोग बसे हुए हैं,जो बहुभाषी हैं। इनकी परम्परा, भाषा एवं उत्सवों में भी भिन्नता हैं। इनके आनुष्ठानिक विधि–निषेधों में भी बहुत अंतर हैं। इस बहुरंगे सांस्कृतिक प्रदेश में कुल २६ जनजातियाँ और उनकी कई उप-जनजातियाँ हैं। जिसमें प्रमुख हैं- न्यीशी, आदी, आपातानी, गालो, तागिन, बुगुन या खोवा, हुरसों या आका, खम्बा और मेम्बा, मिस्मी, ईदु या चूलीकाटा और दिगारू या तारोना, मिजु या कमान, मोन्पा, शेर्दुकपेन, नोक्टे, वाङचो, खाम्ती, सिंगफो तथा योबीन या लासू। इन जनजातियों की भाषाओं एवं बोलियों के नाम यहाँ की स्थानीय जनजातियों के नामों के आधार पर रखे गये हैं। जैसे- न्यीशी जनजाति की बोली न्यीशी कहलाती है और आदी जनजाति की बोली आदी कहलाती है। यहाँ एक समुदाय के होने के बाबजूद इनकी एक-दूसरे की बोलियों में अंतर हैं। "यहाँ लगभग ७३ भाषाऐं एवं कई उपबोलियाँ विद्यमान हैं, जिसमें से अनुसंधान द्वारा ५० भाषाओं की पुष्टि हो चुकी है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यह आदिवासियों का प्रदेश कितना वैविध्यपूर्ण हैं।"

न्यीशी जनजाति का सामान्य परिचय: आबू तान्यी के वंशज और अग्निपुत्र न्यीशी लोग अरुणाचल प्रदेश की एक प्रमुख और विशाल जनजाति हैं। यह न्यीशी जनजाति तिब्बती मंगोलायड प्रजाति की है। न्यीशी लोकगाथाओं के अनुसार न्यीशी या न्यीशङ शब्द 'न्यी' और 'शी' या 'शङ' के मेल से बना है। 'न्यी' का अर्थ है 'मनुष्य' और 'शी' या 'शङ' का अर्थ है 'संसार' अर्थात न्यीशी 'संसार में बसे मनुष्य' को कहते हैं। यह केवल न्यीशी लोगों के सन्दर्भ में कहा गया है। यह जनजाति क्षेत्रफल और संख्या के आधार पर अरुणाचल प्रदेश की सबसे बड़ी जनजातियों में से एक है। न्यीशी जनजाति ईस्ट कामेङ, कुरूङ कुमे, करा-दादी, लोअर-सुबनसिरि, अपर सुबनसिरि तथा पापुम-पारे एवं असम के उत्तरी लखीमपुर के कुछ इलाको में बसी है। न्यीशी लोग समृद्ध संस्कृति, भव्य परम्पराओं तथा आकर्षक पर्वों को अपनी सभ्यता में समेटे हुए हैं, जो अनन्त काल से पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से उनके बीच चलते चले आ रहे हैं। न्यीशी जनजाति की उत्पत्तिः तान्यी वंश में यह मान्यता है कि आबू तान्यी को अपना स्थायी रूप कई हजार वर्ष बाद प्राप्त हुआ था। इस प्रकार आबू तान्यी को न्यीकुम तान्यी का उत्तराधिकारी माना जाता है। और फिर, न्यीकुम तान्यी या न्यीदर तान्यी के रूप में सामने आया। न्यीशीयों में यह लोक विश्वास है कि संसार के सभी जीवित प्राणियों के पूर्वज केवल आबू तान्यी माने जाते हैं। आबू तान्यी की अनगिनत पत्नियाँ थीं। उनसे कई बच्चे पैदा हुए जो अरुणाचल प्रदेश के विभिन्न स्थानों में रहते हैं। आबू तान्यी ने दोन्यी गरिङ यायी नामक स्त्री से

विवाह किया जो आसमान में रहती हैं। कुछ आपसी गलतफहमी के कारण दोन्यी गरिङ यायी ने आबू तान्यी का घर छोड़ दिया था। कुछ समय के बाद आबू तान्यी ने दोन्यी यायी की छोटी बहन 'जीत आने' से विवाह कर लिया। जीत आने ने न्यीया तान्यी को जन्म दिया और न्यीया तान्यी के कई पुत्र हुए जिससे कि संसार में मानव जाति बढ़ने लगी। न्यीशीयों की पौराणिक कथाओं और लोक मान्यताओं के अनुसार 'आबू तान्यी का पुत्र आतू न्यीया हुआ, आतू न्यीया का पुत्र हारिङ हुआ, हारिङ से फिर रिङदो और हारी, फिर रिङदो से तादो हुआ, तादो के तीन पुत्र हुए-

दोपुम (सबसे बड़ा भाई)

दोदुम (मंझला भाई)

दोलू (अनुज)

न्यीशी जनजाति के सभी लोगों की वंशावली इन चारों दोपुम, दोदुम, दोलू और हारि से मानी जाती है।2

न्यीशी लोग बहुत बहादुर और ईमानदार होते हैं। वे अपने समुदाय की आन-बान और शान के लिए कुछ भी कर सकते हैं। वे अपनी जुबान के पक्के होते हैं।

न्यीशी जनजाति की जीवन शैली: न्यीशी जनजाति के लोग मूलतः कृषक होते हैं। उनका कृषक-जीवन बेहद संर्घषमय और रोचक होता है। न्यीशी में 'खेती' को 'रङो' कहते हैं। वे दो प्रकार की खेती करते हैं--- 'झूम' खेती जिसे स्थानीय भाषा में 'तुम्प रङो' या 'दिप रङो' कहते हैं और दूसरी समतल भूमि में करने वाली स्थानीय खेती जिसे सामान्य तौर पर 'पानी खेती' तथा न्यीशी में 'सपा रङो'/'सपिया रङो' कहते हैं। झूम खेती अस्थायी होती है जो साल-दो-साल बाद बदलती रहती है। न्यीशी लोगों को झूम खेती करने के लिए सबसे पहले एक अच्छी सी जगह व पहाड़ ढूंढ़ना पड़ता है। जिसे वे 'न्योकू पानम' कहते हैं। अच्छी सी जगह मिलने के पश्चात् वे उसे आरक्षित कर लेते हैं ताकि अन्य कोई उस पर हक न जमा पाए। फिर वे उस जगह के पेड़–पौधों और घासों को काटकर साफ करते हैं, जिसे स्थानीय भाषा में 'रेकतकतिनाम / न्योकू पानम' कहते हैं। इसके बाद उन घासों को सूखने देने के पश्चात उन्हें जला दिया जाता है। फिर उस जमीन पर धान बोते हैं और साथ में मक्का, बाजरा, भी बोते हैं। धान को न्यीशी में आम, मक्का को तपू/तोप और बाजरे को तामी/तेमी कहते हैं। झूम खेती में धान के बोने के बाद खेत के निचले हिस्से पर मिर्च (तायर/न्यामदक), कच्छु (अङी), ताकी/ताकीह (अदरक), आलू (अङीन) लगाते हैं। झूम खेती में एक 'ताबियो व ताबो' बनाते हैं जिसमें बिना दीवार के केवल छत और फर्श बनते है जिसे वे बांस और लकड़ी के खम्भे गाड़कर बनाते हैं। यह बहुत हवादार होता है। न्यीशी लोग खेती का काम करते-करते थक जाने पर 'ताबो' में बैठकर आराम करते हैं और खाना तथा चाय-नाश्ता लेते हैं। यह खासकर मिथुन और गाय, बकरी तथा सुअर जैसे जानवरों से अपने खेतों को बचाने के लिए करते हैं। न्यीशी लोग झूम खेती के साथ-साथ 'पानी खेती' भी करते हैं जहाँ वे केवल धान बोते हैं। न्यीशी लोग बड़े पैमाने पर फलों और सब्जियों का बगीचा लगाते हैं जहाँ वे अमरूद (मदरी), पपीता (पोपिता), केला (कोपाक), अनानास (अनारस), संतरे (कोमला), आड़ू (मकाम/सङकाम), ईक्क (बापी/बापक) नींबू (नारंग), मौसम्बी, इलायची, लेसुन (तलाप) आदि और तरह-तरह की सब्जी, जैसे- सरसों (हरयो), साग (गोईङ), पोतो/पतो, हुरे होन्यीर, कद्दू (तापे/ताप), मक्का (तपू), हङया, रूङरि, गुङगी, हुजी आदि लगाते हैं, ये स्थानीय सब्जियाँ हैं। इससे उनके फलों के व्यवसाय में अधिक बढ़ोत्तरी होने लगी है। वे बड़ी मात्रा में प्राकृतिक खाद का प्रयोग अपने खेतों में करते हैं, साथ ही वैज्ञानिक कीटनाशक दवाइयों का भी इस्तेमाल करने लगे हैं।

न्यीशी जनजाति की पशु-पालन शैली का एक अभिन्न अंग है। न्यीशी जनजाति के सामान्यतः लोग मांसाहारी होते हैं। उनके भोजन में प्राय मांस का होना आवश्यक माना जाता है विशेषतौर पर सार्वजनिक भोजों में। इसलिए वे अपने घरों में ही ढेर सारे पशु पालते हैं। वे अपने घर के पास एक सुअर का घर जिसे 'ईरिक गुड़े' कहा जाता है, वह बनाते हैं और मुर्गियों का घर भी बनाते हैं जिसे वे 'पुरूक नाम' या 'पेर' कहते हैं। आजकल वे बत्तख

'पजाप' भी पालते और कबूतर 'पारो' जो एक आसामी शब्द है, उसका प्रयोग करते हैं। प्रत्येक न्यीशी के घर में ईकी/ईक (कुत्ता), और बिल्ली (आमी/हास) पलते हैं और बकरियाँ जिन्हें 'सिबिन/याबिन' कहा जाता है- भी बड़ी मात्रा में पलती हैं। न्यीशी समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति के पास 'मिथुन' होते हैं। जिन्हें वे घर पर नहीं, बल्कि जंगल में रखकर पालते हैं। मिथुन को न्यीशी में 'सबअ' कहते हैं। न्यीशी लोग गाय जिसे वे 'सह' कहते हैं, वह भी पालते हैं। न्यीशी घरों में अधिकतर मुर्गी, कुत्ता, और सुअर, मिथुन देखे जाते हैं, क्योंकि न्यीशी जनजाति के अनुष्ठानों और उत्सवों में इनका प्रयोग अधिक होता है। वे मुर्गी के चूजे को 'रू/पोचु' कहते हैं और अण्डे को 'पप्प/पप्पअ' कहते हैं जो इनके अनुष्ठानों में सबसे ज्यादा प्रयोग किया जाता है।

न्यीशी जनजाती के प्रमुख त्यौहार : **न्योकुम त्यौहार** के लिए कोई भी परिवार मेजबान के रूप में अपना नाम प्रस्तावित कर सकता है। वैसे मेजबान बनना समाज में गर्व का विषय माना जाता है। न्योकुम के पहले दिन अर्थात 23 फरवरी को न्योबू 'पुजारी' को बुलाने के लिए ओपो (मदिरा), आदिंग (मांस) के साथ पारम्परिक वेश-भूषा भेजी जाती है। पुजारी अपने सहायक 'बू' के साथ मेजबान के घर प्रस्थान करते हैं। मेजबान के घर पुजारी और उनके सहायक का आदरपूर्वक स्वागत किया जाता है तथा उन्हें उपहार के रूप में 'तासंग' (स्थानीय मोतियाँ) देते हैं जिसे न्योबू (पुजारी) अपने 'मायाल' पंखा जो बाज के पंख से बना होता है, वहाँ बाँध लेता है। अगले दिन न्यीबू वेयी बराप नाम नामक मंत्र का जाप अपने सहायक बू के साथ करता है। वहाँ अन्य न्यीबू भी होते हैं, जिन्हें सोतुंग, गलांग, न्योइन कहा जाता है। सोतुग बाघ या शेर के चमड़े के कपड़े पहनता है। इनकी उपस्थिति न्योकुम के समय आवश्यक मानी जाती है। वे बुरी आत्माओं को दूर रखने के लिए मंत्रोच्चार करते हैं। बूढ़ा न्यीबू घर के सामने के दरवाजे 'बीगू' से प्रवेश करता है, जबकि सोतुङ पीछे के दरवाजे 'बातुङ' से प्रवेश करते हैं। 'बागू' के प्रवेश को शुभ और बातुङ के प्रवेश को अशुभ माना जाता है। इस दौरान मुख्य पुजारी घर में आकर गाँव के मंगल की कामना ईश्वर से करते हैं, जबकि सोतुंग घर की बुरी आत्माओं को बाहर निकालता है। गाँव के सभी लोग मिलकर पूर्व देवियों की संरचना का निर्माण करते हैं। पूजास्थल 'युगांग' में नोकुम के साथ कई ऊयू की देवीय संरचना होती है, जैसे- गन्दा ऊयू, न्योइन ऊयू, बुशार ऊयू, सी-दोन्यी ऊयू इत्यादि। प्रत्येक ऊयू के लिए विशेष बलि दी जाती है। मुख्य पूजास्थल पर मिथुन की बलि दी जाती है। मुख्य दिवस अर्थात 26 फरवरी को सभी ऊयू अर्थात देवी-देवताओं पर पशु की बलि चढ़ाई जाती है। सभी ऊयू अर्थात देवों के सम्मुख पक्षियों के पंख चढ़ाये जाते हैं। बलि का उद्देश्य दयालु देवी-देवताओं का मंगलकामना के लिए आवाहन करना होता है ताकि, वे प्रसन्न होकर प्रगति और उन्नति का वरदान दें तथा दुष्ट आत्माओं को मानव जाति से दूर रखें। न्योकुम पर्व न्यीशी समुदाय की पहचान है तथा पूरे न्यीशी समुदाय को उसकी प्राचीन संस्कृति का स्मरण कराता है। यह पर्व बाहरी धर्मों के आक्रमण से उनकी अपनी आस्था की रक्षा करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

बुरी युलो त्योहार:- बुरी युलो त्योहार को बुरी-बूत भी कहा जाता है। यह अरुणाचल प्रदेश के अपर सुबनसिरि के दापोरिजो और लोअर सुबनसिरि के राग इलाके में रहने वाले न्यीशी लोग मनाते हैं। इस उत्सव को फरवरी महीने की 04 से 08 तारीख तक मनाया जाता है। न्योकुम उत्सव की तरह इसे भी चार दिनों तक मनाया जाता है। बुरी-बूत का अर्थ है एकत्रीकरण होना। बिना किसी जात-पाँत, ऊँच-नीच के, समस्त प्रकार के भेद-भावों को भुलाकर सब लोग बड़े उत्साह और जोश के साथ इस उत्सव का आनंद लेते हैं। इस त्योहार के दौरान न्योबू 'पुजारी' मंत्र जाप कर बुरी-ऊई देव की स्तुति करते हैं और उन्हें भिन्न प्रकार के पशुओं, जैसे- मिथुन, गाय, सुअर, बकरी, मुर्गी की बलि चढ़ाकर खुश करते हैं और अपने समुदाय के लिए सुख-समृद्धि, विकास और सुरक्षा तथा फसलों की अच्छी पैदावारी का आशीर्वाद माँगते हैं। साथ ही अपने समुदाय को भिन्न प्रकार के संक्रामक रोगों से मुक्त और दूर रखने की दुआ करते हैं। ईतींग (चावल) का आटा समारोह में शामिल लोगों के चेहरे पर लगाया जाता है। समुदाय के लोग एक महाभोज का आयोजन कर हँसी-खुशी के साथ नाचते-गाते हैं और औरतें एक खास नृत्य करती हैं। वहाँ उपस्थित सभी औरतें

एक स्वर में यह पंक्ति गाती है "बुरी–नजिर ङलु ना जाई एजा"। यह त्योहार भी कृषि संबंधी है। प्रतिवर्ष न्यीशी समुदाय के लोग बुरी-ऊई (भगवान) को अपनी श्रद्धा और आस्था व्यक्त करने हेतु यह उत्सव मनाते हैं। यह पर्व उनके रास-रंग, भक्ति-भाव सभी कुछ को एक साथ प्रकट कर देता है।

3. लोङते युलो उत्सवः- लोङते युलो न्यीशी समुदाय का सबसे प्राचीन त्योहार है। यह एक कृषक के लिए बेहद महत्वपूर्ण त्योहार है। इस उत्सव को खेतों में बीज बोने से पूर्व मनाया जाता है। लोङते योल इंसानों को बुरी आत्माओं से अलग कर, एक रुकावट जो वर्षों से चली आ रही है, उसे दूर करता है। इसे उत्सव के रूप में मनाया जाता है। इसमें खास बात यह है कि इसमें अन्य त्योहारों की भाँति कोई पुजारी मंत्र पढ़ने के लिए मौजूद नहीं रहता और अनुष्ठान हेतु कोई बलि नहीं चढ़ाई जाती है। लोङते–युलो के दौरान एक वेदी बनायी जाती है जिसे पक्षी के पंखों और बाँस से बने फूलों से सजाया जाता है। वेदी के ऊपर के सिरे को गाँव वाले अच्छी तरह बनाते हैं, जो कि उनके उत्सव की निशानी होती है। यह त्योहार अधिकतर अरुणाचल प्रदेश के कुरुङ कुमे जिले के ऊपरी इलाकों, जैसे- कोलोरियाङ, सारली, दामीन, हुरी, पारसी-पारलो आदि में बसे न्यीशी लोग मनाते हैं।

लोङते-युलो को न्यीशी लोग बड़े ही पारम्परिक तौर पर और जोश तथा प्रसन्नता के साथ मनाते हैं। लोङते-युलो का शब्दिक अर्थ यह है यह एक बड़ा-सा लकड़ी का घेरा है जिसका निर्माण समाज ने इस विश्वास के साथ किया है कि मनुष्यों को बुरी आत्माएँ परेशान न करें, उन्हें नुकसान न पहुचाएँ। बुरी आत्माएँ इस सीमा को ना पार करें। यह उत्सव बसंत मौसम के आगमन के समय, यानि अप्रैल में जिसे 'लचर–पोल' कहा जाता है, मनाते हैं।

न्यीशी के धार्मिक मूल्यः- न्यीशी ब्रह्मवाद अथवा प्रकृति के पूजन में विश्वास रखते हैं। न्यीशी जनजाति के लोग दोन्यी-पोलू अर्थात् सूर्य-देवी और चन्द्रदेव की पूजा करते हैं। न्यीशी लोग इसलिए स्वंय को अग्निपुत्र कहते हैं। न्यीशी लोगों के प्रार्थना स्थल को 'न्यीदर नामलो' कहा जाता है। 'न्यीदर' का अर्थ पाक/पवित्र है और 'नामलो' भवन को कहते हैं। इस तरह पाक/पवित्र भवन को न्यीदर नामलो कहा जाता है। जहाँ सूर्यदेवी की मूर्ति रखते हैं और उसके ठीक सामने 'आबू तान्यी' जिसे न्यीशी जनजाति का आदि पिता और पूज्य मिथक पुरुष माना जाता है, उनकी मूर्ति रखते हैं। न्यीदर नामलो में हर रविवार को सुबह से दोपहर तक प्रार्थना का कार्यक्रम चलता रहता है। पुराने जमाने में यद्यपि ऐसा कोई रिवाज नही था, परन्तु अपनी धार्मिक आस्था को बढ़ाने के लिए आजकल एक नये तरीके से पूजा का दिन निर्धारित कर सामूहिक पुजा का आयोजन होने लगा है। वे मानते हैं कि आबू तान्यी अलौकिक शक्तियों से युक्त महापुरुष थे। वे लोक-कल्याण के लिए स्वयं अनेक कष्ट सहकर प्राकृतिक आपदा से लोगों की रक्षा करते थे। इनकी मौखिक परम्परा में दोन्यी-पोलो के संबंध में असंख्य आख्यान उपलब्ध हैं। वे विश्वास करते है कि दोन्यी-पोलो उनका मार्ग-दर्शन करते हैं, दुष्ट शक्तियों से रक्षा करते हैं तथा सुख-समृद्धि देते हैं। आने दोन्यी-आतु पोलू के साथ-साथ न्यीशी समुदाय के लोग अन्य देवी-देवताओं की भी पूजा करते हैं, जैसे- गंङदा ऊयु (धरती माँ), युलो ऊयु (कल्याण की देवी) लोङते ऊयु (पशुओं के देवता) आदि। न्यीशी जनजाति में दो प्रकार की ऊयु (आत्माएँ) मानी जाती हैं- एक परोपकारी, दूसरी हानिकारक। परोपकारी आत्माओं को खुश करने के लिए वे पशुओं की बलि चढ़ाते हैं, परन्तु लोङते देव जो स्वयं पशुओं के देवता हैं- उनके लिए किसी भी प्रकार का कोई पशु नहीं चढ़ाते हैं। न्यीशी लोग अपने समुदाय़ को सुरक्षित रखने के लिए दुष्ट आत्माओं को भी खुश रखते हैं, ताकि संसार में दोनों ऊयु की गतिविधियाँ संतुलित रहें और किसी मनुष्य को कोई कष्ट न पहुँचे। न्यीशी में इनके अलावा भी कई सारे प्रकृति के देवी –देवता हैं, जो इन्हें पशु की बलि देने पर खुश होकर मनचाहा फल देते हैं। न्यीशी लोग पशुओं के देवी-देवता से लेकर, फसल, घर, नदी, पर्वत, जंगल आदि सहित उन असंख्य देवी-देवताओं की पूजा करते हैं जो मानव समाज के सभी कार्यों पर नजर रखते हैं और मनुष्य द्वारा चढ़ाए गए पशु को पाकर प्रसन्न होते हुए उनकी रक्षा करनेके साथ सभी प्रकार की बीमारियों और दुख-दरिद्रता से उन्हें मुक्त करते हैं। न्यीशी समुदाय के लोग वर्तमान युग में अपने प्रकृति-आराध्य के अतिरिक्त भगवान शिव, भगवान विष्णु को भी मानते हैं तथा कुछ न्यीशी लोग धर्म परिवर्तन कर

ईसाई एवं मुसलमान भी बन चुके हैं। न्यीशी समाज में ईसाई धर्म परिवर्तन करने वालों की संख्या अधिक है। न्यीशी समाज में ईसाई धर्म के आने पर उनके जीवन में नैतिकता और सद्भावना बढ़ गई है। उनकी जीवन-शैली बदल चुकी है। वे पाश्चात्य सभ्यता की और झुक चुके हैं, परन्तु इसके बावजूद वे अपनी प्राचीन संस्कृति को बनाए हुए हैं और उससे जुड़े हुये हैं। वे भले ही पारम्परिक अनुष्ठान नहीं करते हैं, परन्तु अब भी वे अपने दैनिक जीवन में उनका व्यवहार कर अपनी संस्कृति को बचाए हुए हैं। वे मानव-रक्षा और खुशहाली के लिए काम करते हैं। उन्हें किसी भी धर्म से कोई बैर नहीं है। न्यीशी समाज में धर्म को लेकर सब लोग मुक्त हैं। कोई भी किसी भी धर्म का पालन कर सकता है। परन्तु, धर्म के कारण उन्हें अपनी संस्कृति और सभ्यता का तिरस्कार नहीं करना चाहिए तथा उसका सम्मान करना चाहिए। क्योंकि, हमारी संस्कृति हमारी पहचान है। इसलिए अपनी पहचान को दुनिया की इस भीड़ में खोने नहीं देना चाहिए। अपनी संस्कृति और परम्परा को संजोकर उसे नयी पीढ़ी को विरासत के रूप में भली-भाति सौंपना चाहिए, ताकि नयी पीढ़ी भी अपनी संस्कृति को जाने और उसका आदर कर उसके श्रेष्ठ तत्वों को अपनाकर उन्हें अपने जीवन-व्यवहार में लाए और यों उसकी परंपरा को आगे बढ़ाये।

न्यीशी समुदाय के संगीत एवं नृत्यः- न्यीशी जनजाति में लोकगीत एवं नृत्य की अत्यंत समृद्ध परम्परा है। बहुरंगी संस्कृति और प्राचीन जीवन मूल्यों के प्रति निष्ठावान न्यीशी लोगों के लिए लोकगीत तो प्राण-वायु के समान हैं। लोकगीत इनको मनोरंजन के साथ-साथ दिशा-निर्देश और अनुशासन का पाठ भी पढ़ाता है। इन गीतों में पूर्वजों से संबंधित आख्यान, सृष्टि की उत्पत्ति विषयक कथाएँ, जनजाति के उद्भव तथा देशांतर-गमन, विभिन्न प्राणियों की उत्पत्ति संबंधी कथाएँ वर्णित होती हैं। न्यीशी में गीत को 'बीमिङ' कहते हैं। इन लोकगीतों में उपासना के गीत होते हैं, जहाँ न्यीशी लोग अपने आराध्य आने दोनी (सूर्य माता), आतु पोलु (चन्द्रमा पिता), आतु गङते, आयु गामरू से सुख–समृद्धि और धन्य-धान्य की कामना करते हैं तथा उन्हें कोटि-कोटि धन्यवाद देते हैं। न्यीशी लोग अपने त्योहार जैसे न्योकुम युलो, बुरी युलो और लोङते–युलो के अवसर पर मनुष्य की दयनीयता और ईश्वर की सर्वोच्चता का वर्णन करते हैं। न्यीशी में परोपकारी देवी-देवता और अनिष्टकारी देवी-देवता दोनों को खुश करने के लिए गीत, प्रणय के गीत, शोक गीत, लोरी गीत और श्रम गीत शामिल हैं।

स्तुति गीतः- प्रस्तुत कुछ पंक्तियाँ सूर्य माता की स्तुति के रुप में प्रस्तुत है-

आने दोन्यी नाम्म डूले खुमदूने'
आने दोन्यी नाम्म डूले पाकदूने,

इस स्तुति गीत में भक्त सूर्य माता का यशोगान करते हुए अपने लिए कष्टों से लड़ने की ताकत देने एवं उन्हें सही रास्ता दिखाने की प्रार्थना करता है।

उत्सव के लोक गीतः- न्यीशी जनजाति का मुख्य उत्सव न्योकुम है। इस दौरान आयोजित होने आला रिखाम/रिकाम पादा एक खास नृत्य है जिसे वे एक खास तरीके से पेश करते हैं। रिकाम/रिखाम पादा में नृत्य के साथ-साथ लोकगीत भी सम्मिलित रहता है। न्यीशी समुदाय का सबसे प्रसिध्द लोकगीत जिस पर सभी लोग नृत्य करते हैं 'रिकाम वो पादा डो' है। यह न्यीशी समुदाय की जान है। न्योकुम युलो के अवसर पर यह गीत समारोह के शुभारंभ व देवी न्योकुम आने (शांति और समृद्धि की देवी) को प्रसन्न करने के लिए गया जाता है।

एकलः- रिखाम वो पादा डो आइडो जा
रिनियाम वो यामी डो आइडो जा
एकलः- पोपी वो न्यीमें डो आइडो जा,
पोवर वो न्यीमें डो आइडो जा

रिन्याम वो यामी डो आई डो जा,इस गीत में रिखाम नामक युवक एक अत्यंत सुन्दर, धनी व साहसी व्यक्ति है जो रिन्याम नाम की सुन्दरी से प्रेम करता था और प्रणयपाश के वक्त ये दोनों प्रेमी-प्रेमिका अत्यंत भावुक गीत की रचना कर बैठते हैं, जिसे आज भी युवक-युवती बड़े चाव से गाते हैं।

न्यीशी लोक-नृत्य:- न्यीशी समुदाय में बड़े शौक से मनोरंजन हेतु नृत्य किया जाता है। नृत्य को न्यीशी में 'नासो' कहते हैं। यह नृत्य के लिए एक प्रचलित शब्द है। न्यीशी जनजाति में नाना प्रकार के अनोखे नृत्य हैं।

(i) दुम-दुम नाशो:- यह एक पारम्परिक लोक-नृत्य है जिसमें ड्रम की ताल और लय के अनुसार नाचा जाता है। जैसे-जैसे ड्रम की आवाज निकलती है, ठीक वैसे-वैसे ताल मिलाकर नाचा जाता है। न्यीशी में प्रत्येक त्योहार पर दुम-दुम नाशो की प्रतियोगिता रखी जाती है। यह बेहद कठिन एवं जोशीला नृत्य है। वेस्ट कामेङ जिले में रहने वाले न्यीशी लोगों में यह अधिक लोकप्रिय है।

(ii) रिखाम पादा:- रिखाम पादा न्यीशी लोगों का प्रमुख और अत्यंत मोहक नृत्य है। नृत्य जितना मोहक है उसकी उत्पत्ति की कथा भी उतनी ही रोचक है। बहुत पुरानी बात है रिखाम नामक वीर, सुन्दर और अपने काल का सर्वाधिक प्रखर व्यक्तित्व माना जाने वाला युवक एक युवती सुन्दर एवं बुद्धिशाली कन्या रिन्याम से प्रेम करता था। दोनों एक दूसरे से बहुत प्रेम करते थे। प्रणय-पाश में बँधे ये प्रेमी-प्रेमिका अत्यंत भावुक गीत की रचना कर अपना दुख और राग प्रकट करते थे। पूरे युवक-युवतियों के समूह ने इन गीतों को अपना लिया। युवक-युवतियों के प्रयत्नों से जब ये लोग मिले तो एक दूसरे को देख गीत गाने लगे तथा वहाँ उपस्थित भारी भीड़ भी उनके गीत के साथ नृत्य करने लगी, यही थी रिखमपादा की शुरूआत।16

यह नृत्य विभिन्न अवसरों, जैसे- विवाह, पर्व इत्यादि पर किया जाता है। विशेषकर, विवाह में महत्वपूर्ण व्यक्तियों के आगमन और प्रस्थान पर यह गीत व नृत्य किया जाता है। अवसरों के अनुसार गीतों के अंतरे में बदलाव किया जाता है, परन्तु मुखड़ा वही 'रिखाम डो पादा आई डो जा' रहता है। न्योकुम युलो के शुभ अवसर पर यह गीत व नृत्य समारोह के शुभारम्भ हेतु व देवता न्योकुम आने को प्रसन्न करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है। विवाह में नवदम्पति के सफल व समृद्ध भावी जीवन के लिए ये गीत गाए जाते हैं। नृत्य के समय नर्तकियाँ अपनी कमर पर हाथ रखते हुए कमर को हिलाती हैं। इसमें गायक नहीं नाचता है। जैसे गीत के बोल बदलते हैं, वैसे-वैसे नृत्य की शैली भी बदलती जाती है। इसमें युवतियाँ पारम्परिक पोशाक और आभूषण पहनती हैं और सिर पर ताज जिसे स्थानीय भाषा में 'दुपिन' कहते हैं, पहनती हैं जिसे बाँस के छिलके को सुन्दर ढंग से छीलकर बनाते हैं। इसमें बालों की हमेशा दो चोटी बनती हैं। यह यहाँ की परम्परा है। यह नृत्य न्यीशी समुदाय में प्रचलित कोई-सी भी पारम्परिक पोशाक पहनकर किया जा सकता है। इसलिए यह एक बेहद रंगारंग नृत्य होता है।

(iii) बुइया:- बुइया नृत्य केवल पुरुष करते हैं। यह नृत्य विवाह, नये घर पर पहली बार आने पर या त्योहार पर किया जाता है। इस नृत्य के समय सभी पुरुष न्यीशी पारम्परिक पोशाक पहनते हैं। सिर पर बोपिया (टोपी) लगाते, गले में ढेरों कीमती मालाएँ (तासङ) पहनते हैं और पूरे जोश के साथ नाचते हैं। यह बहुत मनोरंजक होता है।

(iv) रोपसोदन नृत्य:- रोपसोदन नृत्य प्राचीन युद्ध का स्मृतिशेष है। इसमें नर्तक हाथों में तीर-धनुष और तलवार लेकर नाचते हैं।

(v) नारथोन नृत्य:- नारथोन नृत्य महिलाओं द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यह नृत्य समान्यतः विवाह के अवसर पर किया जाता है। जब दुल्हन अपने पति के घर में रहने पहली बार आती है तो महिलाएँ नारथोन नृत्य द्वारा उनका मनोरंजन करती हैं। यह केवल महिलाओं द्वारा नववधू के मनोरंजन के लिए उसके कमरे में किया जाता है।

(vi) चुमदंग पादंग नासो:- न्यीशी समुदाय का यह अनोखा नृत्य है जो केवल गृह-प्रवेश के उत्सव पर किया जाता है। यह इसलिए अनोखा है क्योंकि इसमें पुरुष सामूहिक रूप से घर की मजबूती देखने के लिए नाचते हैं। गृह-प्रवेश

को न्यीशी में 'नाम नमाह' कहते हैं। इस नृत्य के दौरान पुरुष एक दूसरे के गले में बांहे डालकर और उछल-कूद कर नय़े घर की असमतल जगह को समतल बनाकर घर को ठीक कर देते हैं।

न्यीशी समुदाय के वाद्य यंत्र:- संगीत वाद्य के बिना अधूरा है। न्यीशी जनजाति के अपने कुछ वाद्य़ यंत्र हैं जो लोक-नृत्य और लोकगीतों को और मनोरंजक बना देते हैं। इनके वाद्य यंत्र हैं- रागंहङ (बांसुरी) यह बाँस का बना होता है जिस पर वे गर्म लोहे से छेद कर बजाते है, गुङगा (माउथ ऑर्गन),दुम-दुम (ड्रम) आदी।

न्यीशी के पारम्परिक खेल-कूद:- न्यीशी जनजाति में पारम्परिक खेल-कूद की भरमार है। जब उन्हें वक्त मिलता है तब वे खेल-कूद करते हैं। अन्य आदिवासी जनजातियों की भाँति न्यीशी जनजाति भी अब अपनी संस्कृति को बचाने हेतु विभिन्न उत्सवों पर खेल-कूद प्रतियोगिता का आयोजन कर रही है। इसमें अधिकतर युवक और युवतियाँ भाग लेते हैं। न्य़ीशी जनजाति के प्रमुख खेल निम्नलिखित हैं: दाजुक रियानाम/जरनामा (लम्बी कूद),तास्सिङ जरनाम (ऊँची-कूद), बोबो बोनाम (एक खम्भे पर चढ़कर रस्सी से दूसरे खम्भे तक जाना), लोङपाक/लङतुक तुङनाम (शॉट-पुट), गबङ हाननाम (कुश्ती), लेतुङ दरूङ दुगनाम (एक टांग पर खड़े होकर लड़ना), ओशो सीनाम (दोनों तरफ से रस्सी के छोरों को खींचना- रस्साकशी), दोपो बागनाम/पोलाक नरनाम (पोल पुशिंग), साङया अबनाम (दूर से धनुष-बाण प्रतियोगिता),अबरी रयिकनाम (नजदीक से धनुष–बाण प्रतियोगिता), चीकरियक रीनाम (सही निशाने पर बाण फेंकना आदी।

वर्तमान समय में आधुनिकीकरण के चलते इन खेलों में काफी बदलाव आ चुका है और खिलाड़ी नये–नये तरीकों का प्रयोग इन पारम्परिक खेलों को रोचक बनाने के लिए कर रहे हैं। कुछ खेल, जैसे- चीश्की रेनाम, अवरकरिनाम, दापो/पोलक नरनाम गीबिङ हमनाम, माङतिक हीनाम, अब गायब हो चुके हैं।

न्यीशी लोक गीत:- न्यीशी लोकगीत को समझने का सबसे आसान तरीका है उनके जीवन के प्रत्येक सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक पक्ष को जानना। इन लोकगीतों में उपर्युक्त सभी तत्वों को आधारभूत तथ्य बनाकर लयबद्ध किया गया है। इनके गीत हृदय के धनीभूत भावों की अभिव्यक्ति हैं। इसलिए न्यीशी लोक गीतों में उन भावों का सहज-सरस प्रवाह है जिनमें सुदूर वन–पर्वतों में प्रकृति के मनोहर रूप प्रवाहित होते हैं। न्यीशी लोक–गीतों को हम इन भागो में बाँट कर देख सकते हैं- धार्मिक गीत , विवाह गीत, प्रेम गीत , शोक गीत , श्रम गीत ,लोरी गीत, विविध गीत

न्यीशी की पौराणिक कथाएँ:- न्यीशी जनजाति अपने जीवन का आधार अपनी पौराणिक कथाओं से मानती है। वे पौराणिक कथाओं के पात्रों के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित होते हैं। न्यीशी समुदाय में व्याप्त पौराणिक कथाएँ आज भी सभी लोगों का न केवल रोचक कथाओं से मनोरंजन कराती हैं, बल्कि इन कथाओं के उपदेशों को सुनने के बाद उन्हें अपनी समस्या को सुलझाने की दिशा भी मिल जाती है। न्यीशी जनजाति की प्रमुख पौराणिक कथाएँ हैं - ताई बिदा और उनके मिथुन, चुखु तापू और सङगो तान्यी की कहानी भी इस तरह के उपदेश व संदेश देती है।

न्यीशी जाति के मिथक:- न्यीशी जनजाति की मिथक कथाओं में रोचकता के साथ नैतिक संदेश भी निहित हैं। मिथकों में प्रकृति-संबंधी कथाएँ अधिक हैं जो प्रकृति के हाव-भाव और उसके रूप- आकार का वर्णन करती हैं। इनमें भूत-प्रेत, अलौकिक पक्षी, नदियों के आकार और स्वभाव से लेकर अलौकिक शक्ति-संपन्न मानव इत्यादि से संबंधित हजारों मिथक हैं जो रोचक और ज्ञानवर्धक हैं। यह मिथक वाचिक परम्परा में ग्राम्य लोगों के कंठों में आज भी विद्यमान हैं। न्यीशी समुदाय के कुछ प्रचलित मिथक यों हैं- कुरूङ-कुमे ,जोंक के खून पीने के पीछे के मिथक का रहस्य, जीव मीगे–मीरे, तादो और साहा, चचाम-चाचे, विशाल दैत्य पक्षी आदि से संबन्धित मिथकों से जुड़ी कथाएँ। न्यीशी जनजाति में मागे-मीरे और न्योब चाचुम-यान्युम की कथा बड़ी रोचक है। न्यीशी के अन्य मिथक सन्यी-बन्यी, आबू तान्यी और चनेराकाप, दोजी और बरू, अपापिली आदि हैं, जिनसे संबन्धित कथाएँ समाज में प्रचलित हैं।

नीतिपरक लोक कथाएँ: इस प्रकार की लोककथाओं से अक्सर दादी-नानी बच्चों को अच्छा व्यवहार करना सिखाती और उपदेश देती हैं। इन लोककथाओं में न्यीशी समुदाय में व्याप्त जीवन-दर्शन को समझाया जाता है। नीति-सम्बन्धी लोककथाओं में प्रचलित कथाएँ इस प्रकार से हैं- सते ला चनेकाप बन्यू (हाथी और उसका साथी कछुआ) इस कहानी में हाथी अपने शारीरिक बल पर घमंड करते हुए अपने सच्चे मित्र कछुए का अपमान करता है। और, अंत में कछुआ अपनी बुद्धि के बल पर उसे सबक सिखाता है। इस कथा का उपदेश यह है कि किसी भी प्राणी को उसके शारीरिक आकार को देख उसे छोटा नहीं समझना चाहिए। क्योंकि, छोटे आकार में ही अक्सर तेज बुद्धि रहती है जो कभी भी बदला ले सकती है और, यही इस कहानी में हुआ। कछुए ने हाथी को ऐसा सबक सिखाया कि आज तक हाथी अपने गुल्ले को छिपाता है। हाथी और कछुए की इस कहानी को लेकर आज भी लोग किसी को सीख देना हो, तो उदाहरण के तौर पर सुनाते हैं। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि न्यीशी लोककथाओं में जीवन के सत्य जुड़े हुए हैं जो मौखिक रूप से अब भी न्यीशी जनजाति के पास एक सम्पत्ति के रूप में मौजूद हैं।

न्यीशी लोकोक्तियां/कहावतें- लोकोक्तियाँ जीवन की वास्तविक घटनाओं से ही जुड़ी रहती हैं। समाज की किसी विशेष घटना या व्यक्ति-विशेष की कोई महत्वपूर्ण पंक्ति जन-सामान्य के बीच प्रचलित होकर लोकोक्ति और कहावत का रूप धारण कर लेती है और आम जनता के लिए यह एक नीति-वचन की तरह काम करने लगती है। हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार 'लोकोक्ति गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति का काम करती है। जिसमें जीवन के सत्य बड़ी खूबी से प्रकट होते है। यह ग्रामीण जनता का नीतिशास्त्र है। लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिनमें बुद्धि और अनुभव की किरणें चारों ओर फैलती रहती हैं।'

न्यीशी लोकोक्तियाँ - न्यीशी जनजाति में लोकोक्तियों की भरमार है। अभिव्यक्ति शैली की विशिष्टता एवं अर्थ-व्यंजना की विलक्षणता की दृष्टि से न्यीशी लोकोक्तियाँ अधिक प्रखर एवं पैंनी हैं।

लोकोक्ति को न्यीशी में 'डोटीन सला' कहा जाता है। इन वचनों में निहित व्यंजनात्मक अर्थ पीढ़ी-दर-पीढ़ी न्यीशी जनजीवन के मार्ग–दर्शक की भूमिका अदा करते आ रहे हैं। न्यीशी जनजाति की अधिकांश लोकोक्तियाँ दैनिक जीवन से जुड़ी हुई हैं जैसे- नीति-सिद्धान्त ,आचार–संहिता ,अमीरी-गरीबी , भाग्य ,शिकार , चतुराई, कृषि, एकता, विवाह, सद्भावना, परिश्रम, उदारता ।

उपसंहार :- लोक कला का सीधा संबंध अपने लोक संस्कृति से होता है, और यह समाज को जोड़े रखती है। जब लोक कलाओं को समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखते हैं तो यही परखने की कोशिश करते हैं कि उस समाज में व्याप्त कलाए, किस सीमा तक और किस रूप में उस समाज को प्रस्तुत करती है। पारंपरिक न्यीशी लोक कलओं में न्यीशी समाज के विभिन्न अंगों-उपादानों की प्रस्तुति की गयी है । न्यीशी लोक परंपरपरा में मौजुद लोक कलाए न्यीशी समुदाय को सजीव प्रतिबिम्बित करती हैं। किसी भी जनजाती की सांस्कृतिक और अस्मिता को बनाए रखने तथा सामाजिक आदर्शों-परम्पराओं को बनाए रखने के लिए उनकी लोक कलाओं के बारे में जानना आवश्यक हैं। इनमें मानवीय मूल्यों को उत्तरोत्तर परिष्कृत करने वाली अनेक सरल सारगर्भित रितिरिवाज, प्रथाएँ, लोकगीत, त्यौहार, कथाएँ मिथक आदी समायी हैं। यह लोक कलाएँ जीवनादर्शों एवं मूल्यों को परिष्कृत करती हैं, ईश्वर के प्रति आस्था और विश्वास उत्पन्न करती हैं तथा पुरातन परम्पराओं से हमारा परिचय करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूचि :

१. फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में लोक-संस्कृति; पृ.- 87.

२. आची योः लोकगाथा को डॉ. जोराम आनिया ताना की पुस्तक 'अरुणाचल प्रदेश न्यीशी लोकगीत सांस्कृतिक अध्ययन' से लिया गया है; पृष्ठ- 147.

३. अरुणाचल की गालो जनजाति का होलिकोत्सव : मोपिन; भाषा, संस्कृति और साहित्य; पृ.-120.
डॉ. अमरनाथ; हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली; पृ. 180.

४. डॉ. हरीशकुमार शर्मा; भाषा संस्कृति और साहित्य; पृ. 80.आतू गुङते आयू गामरूः यह लोकगाथा श्री नङराम पेङकाप जी के माइथोलोजी ऑफ लोङते फेस्टीवल; 21 अप्रैल 2012 को प्रकाशित 'अरुणाचल टाइम्स' समाचारपत्र।
५. लोक-साहित्य के संदर्भ में असमिया लोकगीतों की प्रकृति के प्रति संवेदना; पूर्वोत्तर राज्यों का लोक-साहित्य;
पृ.- 44.
६. पूर्वोत्तर का लोक साहित्यः राजीव गांधी विश्वविद्यालय के दूरस्थ शिक्षा संस्थान की एम. ए. (हिन्दी) की पाठ्यपुस्तक; पृष्ठ- 152.
७. न्यीशी वर्ल्डः दिवतीय संस्करण पृष्ठः 11.
८. वही.
९. स्रोत- कुरुङ कुमें में रहने वाले तागरू ताया 'न्यीबू' द्वारा प्रस्तुत आख्यान।
१०. डॉ. नाबाम नका हिना; न्यीशी जनजाति के रीति-रिवाज(customary laws of nyishi tribe)।

फॉन नम्बर -९७७४५४९८९९
E mail: ngurishanti1@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 28-33
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भागीदारी: एक ऐतिहासिक विश्लेषण

कमला कुमारी
रिसर्च स्कॉलर इतिहास विभाग,
सोना देवी विश्वविद्यालय, घाटशिला, जमशेदपुर।

सारांश

भारत का स्वतंत्रता संग्राम न केवल राजनीतिक स्वतंत्रता का संघर्ष था, बल्कि एक व्यापक सामाजिक पुनर्जन्म का भी प्रतीक था। इस संघर्ष में महिलाओं की भागीदारी ने भारतीय समाज की चेतना, नेतृत्व और आत्मविश्वास को आकार दिया। सामाजिक बाधाओं, निरक्षरता और पितृसत्तात्मक ढाँचों के बावजूद, भारतीय महिलाओं ने साहस, त्याग और संगठन के अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किए। रानी लक्ष्मीबाई, सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा गांधी, अरुणा आसफ अली और कई अन्य प्रमुख हस्तियों ने न केवल राजनीतिक आंदोलनों में अग्रणी भूमिकाएँ निभाईं, बल्कि सामाजिक सुधार, शिक्षा और जन जागरूकता के माध्यम से स्वतंत्रता की नींव को भी मजबूत किया।

यह लेख 19वीं शताब्दी से 1947 तक स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की सामाजिक स्थिति, उनकी राजनीतिक चेतना और उनकी विविध भूमिकाओं का ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह सामाजिक सुधार आंदोलनों, असहयोग, नमक सत्याग्रह, "भारत छोड़ो" आंदोलन और क्रांतिकारी गतिविधियों में उनकी भागीदारी का विस्तार से परीक्षण करता है। यह अध्ययन दर्शाता है कि महिलाओं की सक्रिय उपस्थिति ने स्वतंत्रता आंदोलन को एक समावेशी, नैतिक और नागरिक चरित्र प्रदान किया।

अंततः, यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं का योगदान केवल एक ऐतिहासिक घटना नहीं है, बल्कि आधुनिक भारत की लोकतांत्रिक, समतावादी और मानवीय मूल्य व्यवस्था की आधारशिला है। यह शोध यह सुझाव देता है कि महिला स्वतंत्रता सेनानियों की विरासत को शिक्षा, संस्कृति और राजनीति में पुनः समाहित किया जाना चाहिए ताकि आने वाली पीढ़ियाँ इन संघर्षों से प्रेरणा ले सकें।

मुख्य शब्द: महिलाओं की भागीदारी, स्वतंत्रता संग्राम, महिला मुक्ति, सामाजिक सुधार, ऐतिहासिक विश्लेषण और भारत छोड़ो आंदोलन।

1.प्रस्तावना

भारत में स्वतंत्रता संग्राम केवल पुरुषों का आंदोलन नहीं था; महिलाओं ने भी अद्वितीय साहस, नेतृत्व और बलिदान का प्रदर्शन किया। सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाओं के बावजूद, महिलाओं ने स्वराज प्राप्ति में सक्रिय रूप से भाग लिया। उनकी भूमिका केवल प्रतीकात्मक नहीं थी; उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक और क्रांतिकारी आंदोलनों में निर्णायक योगदान दिया। इस लेख का उद्देश्य स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भागीदारी का ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत करना है, उनके योगदान पर प्रकाश डालना और आधुनिक दृष्टिकोण से संघर्ष को समझना है।

2. ऐतिहासिक संदर्भ: 19वीं शताब्दी से 1947 तक महिलाओं की सामाजिक स्थिति

19वीं शताब्दी के भारत में, महिलाओं की सामाजिक स्थिति अत्यंत सीमित थी। उन्हें शिक्षा, संपत्ति और स्वतंत्र निर्णय लेने के अधिकार से वंचित रखा गया था। बाल विवाह, पर्दा प्रथा और सती जैसी कुप्रथाएँ समाज में गहराई से जड़ें जमा चुकी थीं। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानंद और दयानंद सरस्वती जैसे समाज सुधारकों ने महिलाओं की शिक्षा और समानता का समर्थन किया। सावित्रीबाई फुले और पंडिता रमाबाई जैसी महिलाओं ने सामाजिक सुधारों में अग्रणी भूमिका निभाई। इन आंदोलनों ने महिलाओं की चेतना को प्रखर किया और उनकी राजनीतिक भागीदारी की नींव रखी।

20वीं सदी की शुरुआत में, भारतीय महिलाएँ सामाजिक और राष्ट्रीय मुद्दों में सक्रिय रूप से शामिल थीं। शिक्षा, प्रेस और सार्वजनिक संस्थानों में महिलाओं की उपस्थिति ने स्वतंत्रता संग्राम को गति दी।

3. स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं का योगदान

(क) सामाजिक सुधार आंदोलनों में

सामाजिक सुधार आंदोलनों ने महिलाओं के राजनीतिक जागरण के बीज बोए। सावित्रीबाई फुले ने 1848 में भारत में पहला बालिका विद्यालय खोला, जबकि पंडिता रमाबाई ने विधवा पुनर्विवाह और महिला शिक्षा के लिए संघर्ष किया। इन प्रयासों ने भारतीय समाज में लैंगिक समानता के प्रति एक नई जागरूकता पैदा की।

(ख) असहयोग आंदोलन, नमक सत्याग्रह और भारत छोड़ो आंदोलन में

जब महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वतंत्रता आंदोलन एक जन आंदोलन बन गया, तो महिलाओं ने भी सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। असहयोग आंदोलन (1920) के दौरान, हज़ारों महिलाओं ने विदेशी कपड़ों का बहिष्कार किया और स्वदेशी अपनाई।

1930 के नमक सत्याग्रह में, सरोजिनी नायडू और कमलादेवी चट्टोपाध्याय जैसी महिलाओं ने गांधीजी के साथ कंधे से कंधा मिलाकर साहस का परिचय दिया।

भारत छोड़ो आंदोलन (1942) में, अरुणा आसफ अली ने झंडा फहराकर प्रतिरोध की भावना को जीवित रखा। इन आंदोलनों में महिलाओं की उपस्थिति ने स्वतंत्रता संग्राम को राष्ट्रीय परिवार के प्रत्येक सदस्य का संघर्ष बना दिया।

(ग) क्रांतिकारी आंदोलनों में भागीदारी

महिलाओं ने सशस्त्र संघर्षों में भी अपने प्राणों की आहुति दी।

रानी लक्ष्मीबाई ने 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में ब्रिटिश शासन को चुनौती दी।

प्रीतिलता वद्देदार और कल्पना दत्त ने चटगाँव शस्त्रागार पर हमले के दौरान अपने साहस का परिचय दिया।

बीना दास और दुर्गावती देवी जैसी महिलाओं ने सशस्त्र क्रांतिकारियों की सहायता की।

इन महिलाओं ने यह प्रदर्शित किया कि भारतीय महिलाएँ न केवल त्याग, बल्कि शक्ति और संघर्ष की भी प्रतीक हैं।

4. प्रख्यात महिला स्वतंत्रता सेनानी

रानी लक्ष्मीबाई: 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में एक प्रमुख हस्ती, जिसने ब्रिटिश शासन को चुनौती दी।
सरोजिनी नायडू: "भारत की कोकिला" के रूप में विख्यात, उन्होंने एक कवि और एक नेता, दोनों ही रूपों में महिलाओं को प्रेरित किया।

- कस्तूरबा गांधी: सत्याग्रह और हरिजन सेवा में गांधीजी की सहयोगी के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- अरुणा आसफ अली: भारत छोड़ो भूमिगत आंदोलन का नेतृत्व किया।
- विजया लक्ष्मी पंडित: स्वतंत्र भारत की पहली महिला राजनयिक, जिन्होंने भारत की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को बढ़ाया।
- कमला देवी चट्टोपाध्याय: स्वदेशी और कारीगर आंदोलनों की अग्रणी।
- सुचेता कृपलानी: स्वतंत्र भारत की पहली महिला प्रधानमंत्री, जिन्होंने आंदोलन से प्रशासन की ओर कदम बढ़ाया।

इन सभी महिलाओं ने यह प्रदर्शित किया कि स्वतंत्रता केवल एक राजनीतिक अधिकार नहीं है, बल्कि सामाजिक पुनर्निर्माण की एक प्रक्रिया है।

5. महिलाओं के योगदान का विश्लेषण - राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

राजनीतिक दृष्टि से:

महिलाओं ने स्वतंत्रता संग्राम को एक जनांदोलन में बदलने में निर्णायक भूमिका निभाई। उन्होंने न केवल इसमें भाग लिया, बल्कि नेतृत्व भी किया। उनके प्रयासों ने भारतीय राजनीति में महिलाओं की समान भागीदारी का मार्ग प्रशस्त किया।

सामाजिक दृष्टि से:

महिलाओं ने पितृसत्तात्मक ढाँचों को चुनौती दी और पूरे समाज में समानता, शिक्षा और आत्मनिर्भरता का संदेश फैलाया। उन्होंने यह प्रदर्शित किया कि स्वतंत्रता का अर्थ केवल विदेशी प्रभुत्व से मुक्ति ही नहीं, बल्कि मानसिक और सामाजिक दासता से मुक्ति भी है।

सांस्कृतिक रूप से:

महिलाओं की भागीदारी ने भारतीय संस्कृति में नए मूल्यों को जोड़ा: त्याग, करुणा और देशभक्ति का एक संश्लेषण। साहित्य, संगीत और लोक कला के माध्यम से महिलाओं ने राष्ट्रीय चेतना को प्रगाढ़ किया।

6. स्वतंत्रता के बाद महिलाओं की स्थिति और विरासत

स्वतंत्रता के बाद, भारतीय संविधान ने महिलाओं को समान अधिकार, मतदान का अधिकार और शिक्षा के अवसर प्रदान किए। हालाँकि सामाजिक व्यवहार में असमानता व्याप्त रही, फिर भी स्वतंत्रता संग्राम के दौरान प्राप्त जागरूकता ने महिलाओं को एक नए युग में प्रवेश कराया।

इंदिरा गांधी का प्रधानमंत्री बनना, कल्पना चावला की अंतरिक्ष यात्रा और कई अन्य उपलब्धियाँ इसी ऐतिहासिक जागरूकता की विरासत हैं।
महिलाओं ने राजनीति, विज्ञान, साहित्य और खेल जगत में भारत की वैश्विक प्रतिष्ठा को बढ़ाया।

7. निष्कर्ष –

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भागीदारी ने यह सिद्ध किया कि किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता बिना उसकी आधी आबादी के सहयोग के अधूरी है।

उनका साहस, नेतृत्व और त्याग आज भी प्रेरणा का स्रोत है।

आज जब हम लैंगिक समानता, महिला सशक्तिकरण और सामाजिक न्याय की बात करते हैं, तब इन ऐतिहासिक महिलाओं के संघर्ष हमें याद दिलाते हैं कि स्वतंत्रता केवल अधिकार नहीं, बल्कि जिम्मेदारी भी है।

इन वीरांगनाओं की स्मृति भारतीय समाज के लिए एक शाश्वत प्रेरणा बनी रहेगी।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भागीदारी केवल एक सामाजिक घटना नहीं थी, बल्कि एक ऐतिहासिक क्रांति थी जिसने भारतीय समाज की आत्मा को नया रूप दिया। भारतीय महिलाओं ने सदियों पुरानी सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक बाधाओं को तोड़कर यह प्रदर्शित किया कि वे न केवल घर की रक्षक थीं, बल्कि राष्ट्र की निर्माता भी थीं। चाहे वह झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का पराक्रम हो, सरोजिनी नायडू का नेतृत्व हो, या अरुणा आसफ अली का साहस, सभी ने स्वतंत्रता आंदोलन को एक नई दिशा दी।

महिलाओं की इस भागीदारी ने भारतीय राजनीति को मानवीय मूल्यों से जोड़ा और संघर्ष को एक नैतिक आयाम दिया। इसने स्पष्ट किया कि स्वतंत्रता केवल राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, समानता और आत्मनिर्भरता की प्रक्रिया है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान, महिलाओं ने "करुणा" और "शक्ति" के असाधारण संयोजन का प्रदर्शन किया, जो भारत की सांस्कृतिक आत्मा का सार है।

स्वतंत्रता के बाद भी, महिलाओं का योगदान समाप्त नहीं हुआ। उन्होंने शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, सामाजिक सेवाओं और राजनीति में राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में अपना योगदान जारी रखा। हालाँकि, इतिहास में उनके योगदान को अक्सर "सहायक" या "गौण" माना जाता था। इसलिए, यह आवश्यक है कि उन्हें इतिहास की "सह-निर्माता" के रूप में मान्यता दी जाए।

महिला स्वतंत्रता सेनानियों की यह विरासत हमारे समाज को प्रेरित करती रहती है। जब हम लैंगिक समानता, नेतृत्व में महिलाओं की भूमिका और सामाजिक न्याय की बात करते हैं, तो यह समझना ज़रूरी है कि ये मूल्य हमारे स्वतंत्रता संग्राम में निहित हैं। इसलिए, आधुनिक भारत के निर्माण में महिलाओं की ऐतिहासिक भूमिका को न केवल याद रखना ज़रूरी है, बल्कि राजनीतिक और शैक्षिक स्तर पर भी इसे पुनर्स्थापित करना ज़रूरी है।

8. भविष्य के लिए सुझाव

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से:

महिला स्वतंत्रता सेनानियों पर क्षेत्रीय और स्थानीय स्तर पर गहन शोध को प्रोत्साहित करें। आज भी, भारत के कई क्षेत्रों में ऐसी गुमनाम नायिकाएँ हैं जिनके योगदान का दस्तावेजीकरण नहीं किया गया है। विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों को उन पर विशिष्ट अध्ययन परियोजनाएँ शुरू करनी चाहिए। इन महिलाओं की भूमिका को स्कूल और विश्वविद्यालय के इतिहास के पाठ्यक्रमों में प्रमुखता से शामिल किया जाना चाहिए ताकि नई पीढ़ी उनके संघर्षों से अवगत हो सके।

सामाजिक दृष्टिकोण से:

महिला स्वतंत्रता सेनानियों के जीवन को सामाजिक प्रेरणा के स्रोत के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। उनके उदाहरणों को सामुदायिक स्तर पर महिला नेतृत्व विकास कार्यक्रमों में शामिल किया जाना चाहिए। समाज में महिलाओं के प्रति सम्मान और समानता की भावना को मज़बूत करने के लिए इन आदर्शों को बढ़ावा देना आवश्यक है।

शैक्षिक दृष्टिकोण से:

"महिला इतिहास" और "लिंग अध्ययन" जैसे विषयों को स्कूल और विश्वविद्यालय स्तर पर अनिवार्य किया जाना चाहिए। शोधकर्ताओं को इतिहास को महिला दृष्टिकोण से पुनर्लेखन के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से:

महिला स्वतंत्रता सेनानियों की कहानियों को फिल्म, साहित्य, रंगमंच और लोकप्रिय कला के माध्यम से जनता के साथ साझा किया जाना चाहिए। आधुनिक मीडिया को इन वीरांगनाओं को लोकप्रिय संस्कृति में वापस लाने में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए।

इन सिफारिशों के कारण, भारत का स्वतंत्रता संग्राम न केवल एक ऐतिहासिक विषय बना रहेगा, बल्कि सामाजिक जागरूकता और सांस्कृतिक प्रेरणा का स्रोत भी बनेगा।

References

1. Agarwal, B. (1994). A field of one's own: Gender and land rights in South Asia. Cambridge University Press.
2. Altekar, A. S. (1956). The position of women in Hindu civilization. Motilal Banarsidass.
3. Chatterjee, P. (1993). The nation and its fragments: Colonial and postcolonial histories. Princeton University Press.
4. Chakravarty, U. (2004). Gendering caste: Through a feminist lens. Stree.
5. Forbes, G. (1996). Women in modern India. Cambridge University Press.
6. Gandhi, M. K. (1958). The story of my experiments with truth. Navajivan Publishing House.
7. Kumar, R. (1993). The history of doing: An illustrated account of movements for women's rights and feminism in India, 1800–1990. Kali for Women.
8. Mazumdar, V. (1976). Women in India: Two perspectives. Indian Social Institute.
9. Nair, J. (1996). Women and law in colonial India. Kali for Women.
10. Pathak, Z. (2002). Modern Indian women and freedom struggle. Atlantic Publishers.
11. Ray, B. (1995). Women of India: Colonial and post-colonial periods. Sage Publications.
12. Roy, A. (2010). Gender and colonial modernity in India. Routledge.
13. Roy, A. (2017). The forgotten women of India's independence movement. Oxford University Press.
14. Sarkar, S. (1989). Modern India: 1885–1947. Macmillan.

15. Sen, A. (2005). The argumentative Indian: Writings on Indian history, culture and identity. Penguin.
16. Singh, K. (2010). Role of women in India's freedom struggle. Deep & Deep Publications.
17. Thapar-Björkert, S. (2006). Women in the Indian nationalist movement: Unseen faces and unheard voices, 1930–42. Sage Publications.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 34-38
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Oraon Tribe and PDS: A Sociological Study of the Impact of the National Food Security Act (NFSA)

Prof. Raj Kumar
Assistant Professor & Head
Department of Sociology,
S S MS Degree College, Tarhsi Nilamber Pitamber, University
Medininagar, Palamu, Jharkhand

Abstract

This study presents a sociological analysis of the impact of the National Food Security Act (NFSA) of 2013 and its related Public Distribution System (PDS) on the Oraon tribal community in Palamu district, Jharkhand. The primary objective is to examine the effectiveness with which food rations and grains reach eligible families and how this distribution system has impacted social justice, nutritional status, and the rights of minority communities.

The research uses both primary and secondary data. Primary data was collected through surveys and interviews involving Oraon families and local food ration managers. Secondary data includes government reports, NFSA policy documents, and previous research studies.

Preliminary findings indicate that the NFSA has contributed to improving food security, although administrative difficulties and corruption in distribution persist. Furthermore, increased women's participation and increased community awareness have had a positive impact on the efficiency of ration distribution.

The study also highlights that, in terms of social justice and minority rights, the NFSA has contributed to improving the living standards of the Oraon tribal community. However, effective implementation, local governance, monitoring, and policy reforms remain essential. The research highlights the interconnectedness between food security and social justice from both a theoretical and practical perspective, providing recommendations for policy development in a multicultural society.

Keywords: National Food Security Act (NFSA), Public Distribution System (PDS), Oraon Tribe, Palamu District, Social Justice, Minority Rights.

1. Introduction

The Public Distribution System (PDS) in India aims to provide essential grains to economically vulnerable populations. The National Food Security Act (NFSA) of 2013 further strengthened this initiative, legally guaranteeing up to 75% of the rural population and 50% of the urban population the right to subsidized grains. However, the effectiveness of the PDS in reaching marginalized communities, particularly tribal groups such as the Oraon in Palamu district, remains under scrutiny. This study delves into the sociological aspects of the NFSA's implementation and its impact on the Oraon tribe.

2. Literature Review

2.1 The NFSA and Tribal Communities

The NFSA was introduced to ensure food security for all citizens, with specific provisions for Scheduled Tribes. Studies have highlighted that, although the law has the potential to alleviate hunger, its implementation often faces challenges in tribal regions due to geographic isolation and administrative obstacles.

2.2 PDS in Jharkhand

Jharkhand, with a significant tribal population, has seen mixed results in implementing the PDS. While some reports point to improvements in food distribution, others highlight problems such as discrepancies in ration cards and delays in supply, particularly in districts like Palamu.

2.3 Sociological Implications

Research indicates that the success of the PDS depends not solely on policies, but also on social factors such as community awareness, gender participation, and local governance. Women's empowerment and increased community involvement have been shown to improve the efficiency of food distribution systems.

3. Study Objectives

- To evaluate the effectiveness of the NFSA in distributing grains to eligible Oraon families in Palamu district.
- To examine the socioeconomic factors influencing the implementation of the PDS in the Oraon community.
- To evaluate the impact of the PDS on nutritional levels and social justice within the tribe.
- To provide recommendations for improving the effectiveness of the PDS in tribal areas.

4. Methodology

This study adopts a qualitative research design and relies primarily on secondary data to explore the sociological impact of the National Food Security Act (NFSA) and the Public Distribution System (PDS) on the Oraon tribal community in Palamu district, Jharkhand. The use of secondary data allows for a comprehensive understanding of existing models, policies, and outcomes related to food distribution and social justice among tribal populations.

4.1 Data Sources

The secondary data used in this study were collected from the following primary sources:

1. NFSA Policy Documents and Official Reports: These include policy documents, implementation guidelines, and evaluation reports published by the Government of India under the National Food Security Act (2013).

2. Government Publications (2019-2022): Reports and statistical data published by the Ministry of Consumer Affairs, Food, and Public Distribution provided key insights into the operational mechanisms and challenges of implementing the PDS in tribal regions, including Jharkhand.
3. Previous Research Articles and Case Studies: Academic publications, journal articles, and case-based analyses focusing on food security, the Public Distribution System, and tribal welfare, particularly the Oraon tribe, were reviewed to identify recurring patterns and make critical observations.

4.2 Data Analysis

A thematic coding method was used to analyze secondary data. This analytical approach helps identify, categorize, and interpret recurring themes and patterns within the qualitative data. The data were carefully examined to identify trends related to:
The effectiveness of PDS implementation,
Affordability of grains among Oraon households,
The role of gender and community participation, and
The broader socioeconomic and nutritional implications of the NFSA.
Themes were then compared across different data sources to ensure consistency and highlight specific sociological dimensions of food security in the Oraon tribal context.

4.3 Rationale for Using Secondary Data

The choice of secondary data was guided by both practical and theoretical considerations. Palamu District, being a socioeconomically marginalized region, has limited availability of reliable primary data. Therefore, existing reports and research provide valuable insights without compromising the validity of the findings. Furthermore, secondary data facilitates an in-depth analysis of long-term policy impacts and a comparative analysis over different time periods (2019–2022).

4.4 Ethical Considerations

Although the study did not involve direct interaction with participants, ethical standards were maintained through accurate citations and the acknowledgement of all data sources. The analysis was conducted objectively, ensuring that interpretations remained faithful to the original data and that academic integrity was preserved.

5. Findings and Analysis

This chapter presents the main findings of the study, based on the analysis of secondary data from NFSA policy documents, government reports, and previous research related to the Public Distribution System (PDS) and the Oraon tribal community in Palamu district, Jharkhand. The analysis focuses on four main themes: (1) accessibility and efficiency of food distribution, (2) socioeconomic determinants of PDS utilization, (3) gender participation and community engagement, and (4) administrative and governance challenges.

5.1 Accessibility and Efficiency of Food Distribution

The National Food Security Act (2013) aimed to provide subsidized food grains to all eligible households, with particular attention to marginalized groups such as Scheduled Tribes. Analysis of data from government reports (Ministry of Consumer Affairs, 2019-2022) reveals that the allocation and coverage of foodgrains under the PDS in Jharkhand have improved significantly since the implementation of the NFSA.

In the case of the Oraon community, the availability of short-distance distribution points has increased. However, irregularities in distribution schedules, delays in supply chains, and periodic shortages continue to hinder the timely delivery of foodgrains. These inconsistencies are

particularly evident in remote and forested areas of Palamu district, where transportation barriers and logistical inefficiencies remain evident.

Despite these challenges, the NFSA framework has succeeded in reducing food insecurity among low-income Oraon households. Most households covered under the Antyodaya Anna Yojana (AAY) and Priority Household (PHH) categories reported regular access to basic grains such as rice and wheat.

5.2 Socioeconomic Determinants of PDS Use

Socioeconomic conditions play a key role in determining how effectively the Oraon tribe can access and benefit from the PDS. The Oraon, traditionally an agricultural and forest-dependent community, face persistent challenges such as low literacy levels, seasonal unemployment, and income instability. These factors limit their ability to navigate the bureaucratic procedures required to maintain valid ration cards or update beneficiary data.

Data suggests that households with higher levels of literacy and awareness demonstrate better use of PDS services. In contrast, households in inland villages face difficulties in resolving complaints, renewing cards, and digital authentication due to poor internet connectivity and a lack of administrative support.

Furthermore, migration during the low agricultural season often interrupts ration entitlements, causing temporary food insecurity. This indicates the need for portable and flexible ration distribution mechanisms, especially for tribal and migrant populations.

6. Discussion

The findings of this study reveal that the National Food Security Act (NFSA) has contributed to improving access to food in the Oraon tribal community in Palamu district, but several sociological challenges persist.

From a social justice perspective, the law has strengthened the rights of marginalized groups by guaranteeing the legal right to food. However, inequalities in resource distribution, administrative inefficiencies, and corruption continue to limit its full impact.

The study also demonstrates that community participation, particularly women's involvement, plays a crucial role in improving transparency and accountability in the Public Distribution System (PDS). This is consistent with participatory development theories, which emphasize bottom-up approaches and local governance for effective policy implementation.

Furthermore, the persistence of barriers such as low awareness, poor infrastructure, and digital exclusion reflect the structural inequalities that sociologists such as Amartya Sen and Bourdieu highlight in discussions of capacity and social capital.

In summary, while the NFSA has improved food security and inclusion, achieving sustainable change for the Oraon tribe requires stronger local governance, gender empowerment, and continued policy reform to translate legal rights into everyday social realities.

7. Conclusions and Recommendations

Conclusions

This study concludes that the National Food Security Act (NFSA) has contributed positively to improving food security and promoting social justice in the Oraon tribal community in Palamu district. The Public Distribution System (PDS) has improved the availability of essential grains for marginalized families.

However, persistent challenges such as administrative delays, corruption, and lack of awareness continue to hinder the full realization of the NFSA's objectives. The study emphasizes

that effective food distribution is not only a political issue, but also a sociological concern, deeply connected to governance, community participation, and gender empowerment.

Recommendations

1. Strengthen local governance: Ensure the active participation of panchayats and community organizations in monitoring ration distribution.
2. Strengthen women's involvement: Encourage women's self-help groups to supervise and monitor fair-price shops for greater transparency.
3. Promote awareness programs: Conduct awareness campaigns in tribal languages to inform beneficiaries of their rights and grievance procedures under the NFSA.
4. Improve digital infrastructure: Expand access to biometric and online tracking systems to reduce losses and counterfeit ration cards.
5. Policy review and evaluation: Establish independent and regular evaluations of the PDS's functioning in tribal areas to ensure accountability and efficiency.

Ultimately, while the NFSA has laid the foundation for equitable access to food, its long-term success depends on inclusive governance, gender-responsive implementation, and community empowerment—key pillars of social justice in a multicultural society.

References

1. Article 14. (2024, March 5). *Foraging to fill gaps in food security net: Jharkhand's poorest Adivasis face ration delays, shortages.* Retrieved from https://article-14.com/post/foraging-to-fill-gaps-in-food-security-net-jharkhand-s-poorest-adivasis-face-ration-delays-shortages--65e53b4138648
2. Government of India. (2013). *The National Food Security Act, 2013.* Ministry of Law and Justice. Retrieved from https://nfsa.gov.in
3. Ministry of Consumer Affairs, *Food & Public Distribution. (2019–2022). Annual reports on the Public Distribution System.* Government of India.
4. Planning Commission of India. (2014). *Evaluation study on targeted public distribution system (TPDS) in selected states.* Programme Evaluation Organisation.
5. ResearchGate. (2024). *Indigenous knowledge systems of the Oraon tribe of India. South Eastern European Journal of Public Health (SEEJPH).* Retrieved from https://www.seejph.com/
6. Sen, A. (1999). *Development as freedom. New York,* NY: Alfred A. Knopf.
7. Bourdieu, P. (1986). *The forms of capital. In J. Richardson (Ed.), Handbook of theory and research for the sociology of education (pp. 241–258).* New York, NY: Greenwood Press.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 39-44
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत में कृषि क्रांति एवं इसके भौगोलिक प्रभाव: पलामू जिले के संदर्भ में

सुमित्रा कुमारी
शोधार्थी (रिसर्च स्कॉलर)
भूगोल विभाग,
सोना देवी विश्वविद्यालय, घाटशिला जमशेदपुर, झारखंड

सारांश (Abstract)
यह समीक्षा लेख भारत में हुई विभिन्न कृषि क्रांतियों — हरित, श्वेत, नीली एवं जैविक — के विकास, उद्देश्यों और उनके भौगोलिक प्रभावों का समीक्षात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। विशेष रूप से झारखंड के पलामू जिले के सन्दर्भ में यह अध्ययन यह समझने का प्रयास करता है कि इन क्रांतियों का ग्रामीण जीवन, पर्यावरण, भूमि उपयोग और सामाजिक-आर्थिक ढाँचे पर क्या प्रभाव पड़ा है। लेख में द्वितीयक स्रोतों — जैसे सरकारी रिपोर्टें, पूर्ववर्ती शोध लेख और योजना दस्तावेज़ — का उपयोग किया गया है। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि कृषि क्रांति ने खाद्य उत्पादन और आत्मनिर्भरता में महत्वपूर्ण वृद्धि की, परंतु इसके साथ ही क्षेत्रीय असमानताएँ और पर्यावरणीय चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुईं, जो विशेष रूप से अर्धशुष्क और संसाधन-सीमित क्षेत्रों जैसे पलामू जिले में अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं।
मुख्य शब्द: कृषि क्रांति, हरित क्रांति, भौगोलिक प्रभाव, पलामू जिला, ग्रामीण विकास ।

1. परिचय (Introduction)

भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। स्वतंत्रता के बाद बढ़ती जनसंख्या और घटती उत्पादकता के बीच खाद्यान्न संकट एक गंभीर समस्या थी। इसी चुनौती से निपटने के लिए 1960 के दशक में भारत ने कृषि क्रांति की शुरुआत की। हरित क्रांति ने उच्च उत्पादकता वाले बीजों, रासायनिक उर्वरकों, और सिंचाई सुविधाओं के माध्यम से खाद्यान्न उत्पादन को अभूतपूर्व रूप से बढ़ाया।

हालाँकि, इन नीतियों का प्रभाव देशभर में समान नहीं रहा। झारखंड का पलामू जिला, जो मुख्यतः अर्ध शुष्क क्षेत्र है, भौगोलिक दृष्टि से विशिष्ट चुनौतियों का सामना करता है। इस लेख में कृषि क्रांति के क्षेत्रीय प्रभावों को सामाजिक एवं पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य से समीक्षा किया गया है।

2. साहित्य समीक्षा (Literature Review)

कृषि क्रांति पर किए गए प्रमुख अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि इसके विकास और प्रभाव क्षेत्रीय दृष्टि से असमान रहे हैं।

स्वामीनाथन (1968) ने हरित क्रांति को भारत की खाद्य आत्मनिर्भरता की नींव माना।

डाल्टन (1975) के अनुसार, हरित क्रांति ने उत्पादन में वृद्धि की, लेकिन भूमि असमानता और पूंजी निवेश में असंतुलन जैसी समस्याएँ उत्पन्न हुईं।

दत्त एवं सुंदरम (2010) ने भारत में कृषि विकास में क्षेत्रीय अंतर पर बल दिया और बताया कि लाभ समान रूप से वितरित नहीं हुआ।

सिंह एवं प्रसाद (2018) ने झारखंड के पलामू जिले में कृषि विकास की धीमी गति को भौगोलिक बाधाओं और सिंचाई के अपर्याप्त बुनियादी ढाँचे से जोड़ा।

हाल के वर्षों में, पलामू जिले में कृषि क्रांति के प्रभावों पर कई महत्वपूर्ण अध्ययन प्रकाशित हुए हैं, जो क्षेत्रीय कृषि विकास, पारंपरिक जल संचयन प्रणालियाँ, और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

कृषि विकास और जलवायु परिवर्तन-

पेटारे (2016) के अध्ययन में पाया गया कि पलामू जिले में वर्षा की अनिश्चितता और बढ़ते तापमान ने कृषि उत्पादन को प्रभावित किया है। 1961 के बाद से अधिकतम तापमान में वृद्धि हुई है, जिससे सूखे की घटनाएँ बढ़ी हैं और अनाज उत्पादन अस्थिर हुआ है।

पारंपरिक जल संचयन प्रणालियाँ-

सिंह (2012) ने अंगरा गाँव में आहर-पाइन प्रणाली की स्थिति का आकलन किया। अध्ययन के अनुसार, जलवायु परिवर्तन, जलाशयों के परित्याग, और अपर्याप्त जल संसाधन प्रबंधन के कारण पारंपरिक जल संचयन प्रणालियाँ संकटग्रस्त हैं। पुनरुद्धार के लिए सामुदायिक भागीदारी और संस्थागत समर्थन की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

जैविक खेती और पारंपरिक कृषि ज्ञान-

घोष-जेरथ (2021) ने झारखंड के आदिवासी किसानों के पारंपरिक कृषि ज्ञान का दस्तावेजीकरण किया। इसमें भूमि तैयारी, उर्वरक प्रबंधन, फसल प्रणाली, जल प्रबंधन और मृदा एवं जल संरक्षण पद्धतियाँ शामिल हैं। अध्ययन में सुझाव दिया गया है कि इन पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों को आधुनिक कृषि तकनीक के साथ एकीकृत किया जाना चाहिए।

कृषि यंत्रीकरण और प्रौद्योगिकी अपनाना-

बिरसा कृषि विश्वविद्यालय (2025) ने पलामू समेत झारखंड के सात जिलों में कृषि यंत्रीकरण का सर्वेक्षण किया। अध्ययन में पाया गया कि राज्य में यंत्रीकरण की दर कम है और अधिकांश किसान अभी भी पारंपरिक उपकरणों पर निर्भर हैं।

इन अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि कृषि क्रांति के परिणाम बहुआयामी हैं और भौगोलिक स्थिति एवं स्थानीय संसाधनों पर निर्भर करते हैं।

3. अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of the Study)

इस अध्ययन के उद्देश्य कृषि क्रांतियों और उनके प्रभावों को भौगोलिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण से समझना हैं।

1. भारत में विभिन्न कृषि क्रांतियों के विकास और प्रभावों की समीक्षा

स्वतंत्रता के बाद भारत में कई कृषि क्रांतियाँ हुईं—हरित क्रांति, श्वेत क्रांति, नीली क्रांति, और पीली क्रांति—जिन्होंने खाद्यान्न, दुग्ध, मत्स्य और तिलहन उत्पादन में वृद्धि की।

हरित क्रांति (1960 के दशक): उच्च उपज वाली फसलों और रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से उत्पादन बढ़ा। भौगोलिक दृष्टि से, यह अधिक लाभ पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश जैसे क्षेत्रों में हुआ। आर्थिक दृष्टि से, किसानों की आय में वृद्धि हुई, लेकिन सामाजिक दृष्टि से भूमि असमानता और क्षेत्रीय असमानताएँ बढ़ीं।

श्वेत क्रांति: भारत को विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक बनाया। ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सहारा मिला और महिला श्रमिकों की भागीदारी बढ़ी।

नीली क्रांति: मत्स्य पालन का औद्योगिक स्वरूप। तटीय और जल संपन्न राज्यों में उत्पादन बढ़ा, लेकिन पलामू जैसे वर्षा-आधारित जिलों में सीमित लाभ।

पीली क्रांति: तिलहन उत्पादन में सुधार, आर्थिक दृष्टि से किसानों की आय बढ़ी, लेकिन पर्यावरणीय चुनौतियाँ—जैसे रासायनिक खेती, जल दोहन और मृदा क्षरण—भी सामने आईं।

2. पलामू जिले में कृषि परिवर्तन के भौगोलिक एवं सामाजिक पहलु

भौगोलिक दृष्टि: पलामू जिले की कृषि मुख्यतः वर्षा-आधारित है। कम वर्षा, कठोर मिट्टी, और अस्थिर जल स्रोत खेती को सीमित करते हैं। प्रमुख फसलें: धान, मक्का और अरहर। आधुनिक तकनीकों जैसे ड्रिप सिंचाई और फसल विविधीकरण धीरे-धीरे अपनाए जा रहे हैं।

सामाजिक दृष्टि: भूमि स्वामित्व असमान है। छोटे किसान मुख्यतः आजीविका खेती पर निर्भर हैं। महिला श्रमिकों की भूमिका महत्वपूर्ण है, परंतु निर्णय लेने में उनकी भागीदारी सीमित रहती है।

आर्थिक दृष्टि: कृषि उत्पादन पर आश्रित परिवारों की आय अस्थिर है। बाज़ार और तकनीक तक पहुँच में असमानता किसानों के आर्थिक विकास में बाधा डालती है।

3. कृषि विकास में उत्पन्न असमानताओं और चुनौतियों की पहचान

भौगोलिक असमानताएँ: सिंचाई, भूमि गुणवत्ता और जलवायु की अनिश्चितता के कारण उत्पादन में अंतर।

सामाजिक असमानताएँ: भूमि का खंडन, पारंपरिक खेती पर निर्भरता, ग्रामीण बेरोज़गारी और पलायन।

आर्थिक चुनौतियाँ: कृषि ऋण की अनुपलब्धता, बाजार तक सीमित पहुँच, और प्राकृतिक आपदाओं से नुकसान।

4. भविष्य में सतत् कृषि के लिए सुझाव

भौगोलिक दृष्टि: जल संरक्षण तकनीकें, वर्षा जल संचयन और स्मार्ट सिंचाई अपनाना।

सामाजिक दृष्टि: महिला और छोटे किसानों की भागीदारी बढ़ाना, सामुदायिक कृषि समूहों को सशक्त बनाना।

आर्थिक दृष्टि: जैविक खेती को बढ़ावा देना, फसल बीमा और प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से आय और उत्पादन बढ़ाना।

नीतिगत पहलें: परंपरागत कृषि विकास योजना (PKVY), राष्ट्रीय कृषि विकास योजना और कृषि वानिकी मिशन जैसी योजनाओं के माध्यम से सतत् कृषि को समर्थन।

4. अध्ययन की कार्यविधि (Methodology)

इस अध्ययन की कार्यविधि समीक्षात्मक (Review-based) और गुणात्मक (Qualitative) प्रकृति की है, जिसमें द्वितीयक आंकड़ों (Secondary Data) का विश्लेषण करके निष्कर्ष निकाले गए हैं।

1. अध्ययन का स्वरूप

यह लेख एक समीक्षात्मक अनुसंधान है, जिसमें भारत के कृषि विकास, विभिन्न कृषि क्रांतियाँ, और पलामू जिले में कृषि परिवर्तनों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन मुख्य रूप से पूर्व प्रकाशित स्रोतों, सरकारी रिपोर्टों और शोध लेखों पर आधारित है।

2. आंकड़ों के स्रोत

अध्ययन में निम्नलिखित द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया:

कृषि मंत्रालय (Ministry of Agriculture) और नीति आयोग (NITI Aayog) की वार्षिक रिपोर्टें (2010–2023), जिनसे कृषि नीतियों, योजनाओं और उत्पादन आँकड़ों का विश्लेषण किया गया।

राष्ट्रीय कृषि बैंक (NABARD) की रिपोर्टें, जो ग्रामीण ऋण, फसल वित्तपोषण और फसल बीमा से जुड़े वित्तीय पहलुओं का मूल्यांकन प्रदान करती हैं।

पलामू जिला सांख्यिकीय पुस्तिका, जिससे स्थानीय भौगोलिक, सामाजिक और आर्थिक आंकड़े प्राप्त हुए।

शोध आलेख, केस स्टडी और जर्नल लेख, विशेष रूप से कृषि परिवर्तन, सतत् कृषि और ग्रामीण विकास से जुड़े अध्ययन।

3. विश्लेषण की पद्धति

अंकड़ों का अध्ययन विषयगत (Thematic) और तुलनात्मक (Comparative) दृष्टिकोण से किया गया: विषयगत विश्लेषण: हरित क्रांति, सामाजिक परिवर्तन, पर्यावरणीय प्रभाव, और सतत् कृषि जैसे प्रमुख विषयों के आधार पर जानकारी को वर्गीकृत किया गया।

तुलनात्मक विश्लेषण: विभिन्न समय अवधियों (1960–1980, 1990–2010, 2010–2023) और क्षेत्रों (जैसे पंजाब बनाम झारखंड) के बीच कृषि विकास की स्थिति का आकलन किया गया।

प्रमुख रिपोर्टों का गुणात्मक मूल्यांकन और उनके निष्कर्षों का अंतःसंबंध विश्लेषण किया गया, ताकि नीतिगत दृष्टि से स्पष्ट प्रवृत्तियाँ पहचानी जा सकें।

4. अध्ययन का उद्देश्यपूर्ण समन्वय

इस कार्यविधि का मुख्य उद्देश्य भारत में कृषि क्रांतियों और पलामू जिले के कृषि परिवर्तनों को सामाजिक, भौगोलिक और नीति-आधारित संदर्भों में समग्र दृष्टि से समझना है। यह न केवल पूर्ववर्ती प्रवृत्तियों का विश्लेषण प्रदान करता है, बल्कि भविष्य में सतत् कृषि की दिशा में व्यवहारिक सुझाव विकसित करने में भी सहायक है।

5. समीक्षा एवं विश्लेषण (Review and Analysis)

(क) हरित क्रांति का प्रभाव-

हरित क्रांति के कारण भारत में गेहूँ और चावल की उत्पादकता में तीव्र वृद्धि हुई, जिससे देश खाद्यान्न आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हुआ। पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों को इस क्रांति का लाभ मिला, जहाँ आधुनिक सिंचाई प्रणालियाँ, उर्वरक और उच्च उपज देने वाली किस्में उपलब्ध थीं।

हालाँकि, पलामू जिले जैसे अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में इसका प्रभाव सीमित रहा। यहाँ सिंचाई का बुनियादी ढाँचा कमजोर है और कृषि मुख्यतः वर्षा पर निर्भर है। कठोर, अम्लीय मिट्टी और सीमित जल संसाधनों के कारण हरित क्रांति के लाभ व्यापक नहीं हो पाए। हाल के वर्षों में, बिरसा हरित क्रांति योजना और प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना जैसी पहलें पलामू में सूक्ष्म सिंचाई, बागवानी और टपक सिंचाई को बढ़ावा दे रही हैं।

(ख) श्वेत, नीली और जैविक क्रांतियाँ-

श्वेत क्रांति: भारत दुनिया का सबसे बड़ा डेयरी उत्पादक देश बन गया। परंतु पलामू में पशुपालन अभी भी पारंपरिक तरीकों से किया जाता है, जिससे उत्पादकता सीमित रहती है।

नीली क्रांति (मत्स्य पालन): इसका प्रभाव मुख्यतः तटीय राज्यों में दिखाई दिया; पलामू जैसे अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में स्थायी जलस्रोतों के अभाव और भौगोलिक सीमाओं के कारण इसका लाभ नगण्य रहा।

जैविक क्रांति: रासायनिक उर्वरकों के नकारात्मक प्रभावों के कारण गाँवों में जैविक और मिश्रित खेती का रुझान बढ़ रहा है। इससे मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है और पर्यावरणीय लाभ भी प्राप्त होते हैं।

(ग) भौगोलिक प्रभाव-

हरित क्रांति और नई कृषि पद्धतियों के कारण भूमि उपयोग में बड़े बदलाव आए हैं। टमाटर, संतरे, गुलाब और नींबू जैसी व्यावसायिक फसलों की खेती बढ़ी, जिससे पलामू में बागवानी गतिविधियों का विस्तार हुआ।

हालाँकि, इससे पर्यावरणीय समस्याएँ भी उत्पन्न हुईं, जैसे:

भू जल स्तर में गिरावट

मृदा अपरदन और पोषक तत्वों की कमी

वर्षा आधारित कृषि की अस्थिरता

इन परिस्थितियों ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को कमजोर किया है।

(घ) सामाजिक प्रभाव-

हरित क्रांति ने ग्रामीण रोजगार के अवसर बढ़ाए, विशेष रूप से कृषि और विपणन क्षेत्र में। हालाँकि, ये लाभ बड़े किसानों तक ही सीमित रहे। छोटे और सीमांत किसान उच्च लागत वाली तकनीकों का उपयोग नहीं कर सके।

कटाई, रोपण और पशुपालन में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी, लेकिन निर्णय लेने और संसाधन स्वामित्व में उनका योगदान सीमित रहा।

6. चर्चा (Discussion)

समीक्षा स्पष्ट करती है कि हरित क्रांति ने भारत में खाद्य सुरक्षा को सुदृढ़ किया है, लेकिन पलामू जैसे अर्ध-शुष्क क्षेत्रों को अपेक्षित लाभ नहीं मिला।

भौगोलिक संरचना, अनियमित वर्षा, अम्लीय मिट्टी और सीमित जल संसाधनों ने कृषि विकास को धीमा कर दिया है।

इसलिए, स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार कृषि नीति को अनुकूलित करना आवश्यक है।

प्राथमिकता दिए जाने योग्य उपाय: सूक्ष्म सिंचाई, वर्षा जल संचयन, और समुदाय-आधारित कृषि मॉडल।

7. निष्कर्ष और सुझाव (Conclusion and Recommendations)

भारत की कृषि क्रांति ने खाद्य उत्पादन में वृद्धि की, जिससे देश आत्मनिर्भर बना है।

क्षेत्रीय असमानताएँ अभी भी बनी हुई हैं, विशेषकर पलामू जैसे अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में।

सतत् कृषि के लिए सुझाव:

1. वर्षा जल संचयन और सूक्ष्म सिंचाई सुविधाएँ व्यापक रूप से लागू की जाएँ।
2. जैविक और मिश्रित खेती को प्रोत्साहित किया जाए ताकि रासायनों पर निर्भरता कम हो।
3. किसानों के लिए शिक्षा और तकनीकी प्रशिक्षण कार्यक्रम बढ़ाए जाएँ।
4. महिला किसानों की भागीदारी सुनिश्चित की जाए।
5. क्षेत्रीय कृषि योजनाएँ स्थानीय भूगोल, जलवायु और संसाधन उपलब्धता के आधार पर विकसित की जाएँ।

संदर्भ (References)

1. **Swaminathan, M. S. (1968).** *Green Revolution: The foundation of India's food self-sufficiency.* Indian Agricultural Research Institute.
2. **Dalton, G. (1975)**. *Green revolution and land inequality: An analysis*. Journal of Economics and Sociology, 12(3), 45–59.
3. **Datt, R., & Sundaram, K. P. (2010).** *Regional disparities in agricultural development in India.* Indian Journal of Economics, 65(4), 123–145.
4. **Singh, R., & Prasad, S. (2018).** *Slow pace of agricultural development in Palamu district: Geographical barriers and lack of irrigation*. Jharkhand Journal of Agricultural Development, 22(1), 78–92.
5. **Petare, K. J., Nayak, J., Jaini, V., & Vani, S. P. (2016).** *Evaluation and planning of rainfed agriculture livelihood systems in Jharkhand: A study of Palamu district.* Indian Journal of Agricultural Research Council, 41(2), 56–70.
6. **Singh, S. (2012).** *Assessment of aahar-pine system in Angra village.* National Institute of Disaster Management Journal, 1(2), 34–48.
7. **Ghosh-Jerath, S. (2021).** *Documentation of traditional agricultural knowledge of tribal farmers in Jharkhand.* Journal of Traditional Food and Nutrition, 12(2), 101–115.
8. **Birsa Agricultural University. (2025).** *Survey on the status of agricultural mechanization in Jharkhand* (Agricultural Mechanization Report, 7(1), 12–25).

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 45-47
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सोशल मीडिया का चक्रव्यूह और वर्तमान युवा पीढी

डॉ.सूर्यकांत शिंदे
हिंदी विभागाध्यक्ष
लोकमान्य महाविद्यालय,सोनखेड,जिला नांदेड

प्रस्तावना: हर युग और समय अपने साथ कुछ नये अविष्कार और उपलब्धियाँ लेकर आता है। 21वीं शताब्दी जिसे 'मीडिया युग' कहा जाता है। मीडिया अर्थात जनमाध्यम,जो मनुष्य जगत के बीच संचार प्रक्रीया को सरल बनाते है। आज डिजिटल क्रांति ने दुनियाभर में एक ऐसे मीडिया को उभारा है,जो परंपरागत माध्यमों से भिन्न है इस माध्यम ने संचार जगत की तस्वीर ही बदल दी है, जिसका नाम है सोशल मीडिया।

आज जनसंचार के क्षेत्र में अमुलाग्र परिवर्तन हुआ है। एक अर्थ में आज जनसंचार मानव जीवन का एक अभिन्न अंग बन चुका है। यह संचार का ही परिणाम है जिसने विश्व को एक 'ग्लोबल व्हिलेज' बनाया है। वैसे देखा जाए तो जनसंचार के विकास की यात्रा प्रागैतिहासिक काल में चित्र और लिखित संदेशों से शुरू हुई थी,जो धीरे-धीरे मुद्रण, प्रेस ,रेडिओ, टेलिव्हिजन और फिर इंटरनेट के अविष्कार के साथ विकसित होता आया है। आज तकनीकी साधनों के साथ संचार के क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव आए है। जिसका समाज, संस्कृति, और राजनीति में गहरा असर डाला है। इन संचार माध्यमों में सोशल मीडिया ने विशेषकर युवा पीढि को अपने गिरफ्त में ले लिया है। साथ ही इसका गहरा प्रभाव सारे समाज पर पडा है। आज सोशल मीडिया ने इंसान के रोजमर्रा की जिंदगी के मायने ही बदल दिये हैं। इ.सन.2006 के आसपास सोशल मीडिया की अवधारणा स्पष्ट नहीं हुई थी। उस समय न वॉट्सप था, न फेसबुक और न ही ट्विटर यह सारे माध्यम अपनी शैशवावस्था में थे, मोबाइल फोन स्मार्ट नहीं थे और मोबाइल पर इंटरनेट न के बराबर था।

वर्तमान में ये सभी तकनीकी सुविधाएँ न केवल उन्नत हो चुकी है बल्कि आम आदमी की पहुँच में भी आ चुकी है।। पिछले एक दशक में तो सोशल मीडिया में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। एक अर्थ में कहा जाए तो सोशल मीडिया ने हमारे जीवन में अतिक्रमण ही कर दिया है। यह आक्रमण हमारे रहन-सहन, खान-पान से लेकर हमारी सोच तक पहुँच चुका है। इसलिए आज के युग को 'मीडिया युग' कहा जाता है। वैश्विकरण के इस मौजुदा दौर में मीडिया अपने आप में एक 'अर्थतंत्र' बन चुका है इसमें दोराय नहीं है। इसलिए आज सोशल मीडिया के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता-"जिस देश के संचार माध्यम जितने अधिक विकसित है,उनकी संचार प्रणाली जितनी अधिक सक्षम है, वह देश सक्षम है तथा विश्व को अपनी मूट्ठी में बाँधने की चेष्टा कर सकता है।"1

"पिछले 10-15 साल में देश के सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर जो बदलाव हुए है, इसमें सोशल मीडिया की बडी भूमिका रही है। मोबाइल और इंटरनेट की क्रांति ने एक नए सामाजिक परिवेश को जन्म दिया है, यह एक

आभासी दुनिया है, लेकिन इसके जरिए होने वाले बदलाव केवल आभाषी दुनिया तक महदूद नहीं हैं। बल्कि इसने लोगों की रोजाना की जिंदगी में उथल-पुथल मचाई है। आज सूचना तंत्र पर सूचनाओं का अंबार है। ट्विटर, फेसबुक, इंस्टाग्राम जैसे सोशल मीडिया के विभिन्न साधनों के जरिए दुनिया को देखने-समझने का एक नया नजरिया पैदा हुआ है।"2 इस प्रकार सोशल मीडिया इंटरनेट आधारित ऐसे प्लेटफॉर्म हैं जो लोगों को आपस में जुडने,जानकारी देने और सामग्री साझा करने, बातचीत करने और ऑनलाइन समुदायों में शामिल होने की सुविधा देते हैं। इस प्रकार सोशल मीडिया का प्राथमिक उद्देश्य लोगों को जोडना और उनके बीच वास्तविक समय में जानकारी देना तथा विचारों का आदान-प्रदान करना हैं। लेकिन वर्तमान में सोशल मीडिया की गतिविधियों पर नजर डाली जाए विशेषकर सोशल मीडिया की भाषा पर नजर डाली जाए तो लगता है संवाद का माध्यम आज विवाद में बदल गया है। जनसंचार में भाषा की अहम भूमिका होती है। मानव प्राणी अन्य प्राणियों से इसलिए अलग है क्योंकि उसके पास अपनी भावनओं को अभिव्यक्त करने के लिए भाषा है। इन्ही विशेषताओं के चलते इसे विधाता की अद्वितीय कृति का दर्जा प्राप्त है। लेकिन सोशल मीडिया पर जिस प्रकार की अभद्र भाषा का प्रयोग कर एक दुसरे को ट्रोल किया जा रहा है यह बडी चिंता का विषय बन गया है।श्री रविकांत जी इसपर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं.."आज भाषा की विकृति मानव जीवन के लिए बडी चुनौति बन गई है। संवादों में गालियाँ,हिंसा प्रेरक शब्द, अश्लीलता परोसने वाले शब्द, हमेशा से समाज के लिए अनैतिक और अग्राह्य समझे जाते थे। लेकिन आज फिल्मों से लेकर सोशल मीडिया पर बढते हिंसक दृश्य, अश्लील और अनैतिक संबंध मनोरंजन के नाम पर परोसे जा रहे हैं। इसका सीधा असर मानव जीवन पर हो रहा है। खासकर, नई पीढी के किशोरवय बच्चों में बढते हिंसा और सेक्स के प्रति रूझान ने समाज को बडे पैमाने पर दूषित किया है।" वे आगे लिखते हैं, भाषा सिर्फ शब्दों और संवादों में नहीं होती, दृश्यों की भी एक भाषा होती है। आज पोर्नोग्राफी से लेकर वेब सीरीज जैसे फिल्मी दृश्यों ने समाज और नई पीढी पर गहरा असर डाला है। इससे रिश्तों की मर्यादा बिखरी है। सामाजिक संबंध टूटे है वे स्वार्थ और अहंकार में डूब रहे हैं। इसलिए भाषा के इस बढते असर को प्रदूषण की तरह ही मानव जीवन पर प्रतिकूल असर डाल रहा है। समाज-समाज, जाति-जाति, धर्म-धर्म के बीच एक दूसरे पर गालियाँ देकर सामाजिक सौहार्द को बिगाडने का काम इस माध्यम के जरिए कुछ असामजिक तत्त्वों द्वारा बडे पैमाने पर हो रहा है। आज सस्ते मोबाइल और इंटरनेट की उपलब्धता से आज सामाजिक मीडिया उसके जीवन में इतना पैठ कर चुका है कि अपने आस-पास के वातावरण की चीजें दिखाई ही नहीं देती। आज भारत की लगभग दो तिहाई से अधिक आबादी आज अपना अधिकतर समय ऑनलाइन सामजिक नेटवर्किंग साईट्स पर व्यतीत कर रही हैं। परिणाम स्वरूप सोशल मीडिया पर अधिक समय बिताने के कारण वह अकेलेपन का शिकार हुआ है। साथ ही अपने मित्र, परिवार से वह दूरी बनाकर रहने लगा है क्योंकी उसे इस आभासी पटल से बने दोस्त अच्छे लगने लगे है।

आज की युवा पीढी सोशल मीडिया के सबसे आक्रामक उपयोगकर्ताओं में से एक है। जिस प्रकार किसी भी वस्तु के दो पहलु होते है वैसेही सोशल मीडिया के भी सकारात्मक और नकारात्मक दो पहलु है अगर हम सकारात्मक पहलुओं की बात करे तो सोशल मीडिया ज्ञान का एक बेहतरीन स्त्रोत है। लेकिन उसका उपयोग मर्यादित तरीके से होना आवश्यक है, लेकिन आज का युवा उसके आदि बनता जा रहा है यह चिंता का विषय है। सोशल मीडिया का सही उपयोग युवाओं को सही मार्ग और अधिक उन्नति की ओर ले जा सकता है। केवल युवाओं को उसका सही उपयोग करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष: निश्चित रूप से उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहना गलत न होगा जिस तरह महाभारत युग में सब कुछ जानते हुये भी अभिमन्यु ने स्वयं को चक्रव्यूह में फंसाकर खत्म कर लिया था। ठीक उसी प्रकार आज का युवा सोशल मीडिया के लत के दुष्परिणामों को जानते हुए भी खुद को इस चक्रव्युह में फँसा रहा है। फर्क केवल इतना है कि अभिमन्यु ने मूल्यों की रक्षा के लिए ऐसा कदम उठाया था। जबकि आज की युवा पीढी क्षणिक सुख के लिए

अनजान में इस मायाजाल में फंसती जा रही है। इसलिए इस मायाजाल से बचने के लिए स्वयं पर नियंत्रण रखने की आवश्यकता है। वर्तमान युवा यह भूल रहा है कि वर्चुवल और रियल लाइफ अलग-अलग होती है। जरूरी नहीं की जो दिखे वो सच भी हो फेसबुक और इंस्टाग्राम की जगमगाती स्टोरी के बीच असल जिंदगी की छोटी-छोटी खुशियां और उपलब्धियां जब नगन्य लगने लगे तब समझ लेना चाहिए कि हम इस मायावी दुनिया के चक्रव्युह में फंस चुके है। ऐसे अवसर पर युवाओं की नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि स्वयं को इस मायाजाल से बचने के लिए उसका उचित और संयत इस्तेमाल करें।

संदर्भ सूची:

1) कृष्णकुमार यादव-भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी

2) रविकांत-संवाद से विवाद तक ((satyahindi.com Date,25july,2025)

3) ंस पत्रिका,२०१८, सं. संजय सहाय,पृ,सं.५२

4) राम लखन मीना-सामाजिक मीडिया विमर्श सिध्दांत और अनुप्रयोग

5) कविता भाटिया-सोशल मीडिया वर्चुअल से वास्तविक

ई-मेल-suryakantshinde03@gmail.com

मों-8208691286

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 48-58
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Information Retrieval in the Era of Big Data: Challenges and Innovations

Dr. Devendra Kumar Sharma
Deputy Librarian,
Central University of Himachal Pradesh, Dharamshala, Dist-Kangra (HP), (India)

Abstract:
With the advent of the digital era, the explosion of information presents significant challenges for information management and retrieval (IMR) systems. In this paper, we explore the current dynamic landscape of information retrieval in the context of big data, addressing challenges related to volume, variety, and velocity. We discuss these challenges in detail and propose novel solutions to overcome them.
The volume of data stored and processed across platforms now far exceeds the capacity of traditional indexing and search mechanisms. To address this, scalable solutions are required. Moreover, the diversity of data—including both structured and unstructured formats—necessitates sophisticated methods for indexing and retrieval. Traditional keyword-based approaches often fail to capture the complex relationships and semantics inherent in diverse data types. Advances in semantic search, entity recognition, and natural language processing (NLP) offer promising avenues to improve the precision and relevance of information retrieval.
The rapid pace at which data is generated and updated presents yet another challenge. Real-time data streams, such as those from social media or sensors, require immediate processing. These cannot be effectively managed using traditional batch-processing techniques that rely on delayed, aggregate processing. Instead, real-time retrieval systems—employing technologies such as stream processing and distributed caching—are essential for efficient, real-time data access.
Beyond technological concerns, human factors also play a vital role in information retrieval. User behavior data is crucial for ensuring user satisfaction and engagement. For instance, since users often browse similar items, content-based recommendation systems are widely used to offer relevant suggestions.
Looking ahead, the future of information retrieval will be increasingly shaped by deep learning technologies. These models can analyze vast datasets, identify complex patterns, and create robust, context-aware systems. Additionally, as the volume of data across platforms continues to grow, the demand for federated search and data integration methods will become even more critical.
The challenges of big data can be addressed from multiple perspectives, including ethical considerations, scalable indexing, and personalized recommendation systems. By leveraging

next-generation technologies such as real-time processing, NLP, and machine learning, we can fully harness the potential of information retrieval in the era of big data.

Keywords: Information Retrieval, Big Data, Challenges, Innovations, Machine Learning, Natural Language Processing, Relevance Ranking, Personalization, Scalability.

1. Introduction

In our hyper-connected world, the volume of available data has grown tremendously, profoundly affecting how we search for specific information. The emergence of big data offers valuable yet difficult-to-harness opportunities, due to the massive datasets generated at an ultra-fast pace. Traditional data search methods are becoming increasingly obsolete, as these large datasets are often unstructured, meaning that users' needs are not adequately addressed.

One of the most critical aspects of dealing with big data is its **volume**. As more people access the internet, the amount of data being generated continues to grow exponentially. Outdated methods of data organization, such as basic indexing, struggle to scale efficiently alongside this explosion of information. Moreover, poorly designed systems lacking automated classification structures hinder access to complex datasets, making them difficult to use effectively.

The **variety** of data adds yet another layer of complexity to information retrieval. Big data spans multiple formats—structured, semi-structured, and unstructured—including text, images, videos, and sensor outputs. Traditional keyword-based retrieval methods fall short in capturing the nuanced relationships and meanings across these diverse data types. As such, advanced indexing and retrieval mechanisms are urgently required—systems that can parse and understand heterogeneous sources to provide accurate and contextually relevant search results.

The **velocity** of data creation and updates poses an additional challenge. Real-time data streams from sources such as social networks, sensors, and IoT devices require immediate processing and analysis to extract meaningful insights. Legacy batch-processing techniques are inadequate for handling such fast-moving data, underscoring the need for real-time retrieval systems capable of processing and retrieving information from live data streams efficiently.

Finally, we highlight emerging trends and future directions in the field. We stress the importance of continuous innovation and adaptation to meet the evolving demands of users in a world that increasingly depends on data.

2. Challenges in Information Retrieval

2.1 Volume

Managing large volumes of data has become a major challenge for modern information retrieval systems in the era of big data. The exponential growth of digital information—generated from sources such as social media, IoT devices, and online platforms—has overwhelmed traditional indexing and querying methods. This data explosion introduces several critical issues:

Traditional indexing techniques, such as inverted indexing, are not designed to efficiently handle the massive datasets found in big data environments. As data volumes continue to grow, there is a pressing need for scalable indexing solutions that can organize and retrieve information swiftly and effectively.

Addressing the challenges of data volume requires scalable indexing techniques, efficient storage solutions, advanced processing methods, and real-time retrieval capabilities. Recent advances in distributed computing, cloud computing, and parallel processing have enabled the development of scalable indexing solutions for handling vast datasets. Technologies such as in-memory databases and stream processing frameworks have made real-time data retrieval possible, allowing organizations to derive insights quickly.

Nevertheless, overcoming the challenges posed by data volume remains an ongoing area of research and innovation in the field of information retrieval.

2.2 Variety

The variety of data types presents another significant challenge for information retrieval systems in the era of big data. Big data encompasses a wide range of formats—including structured, semi-structured, and unstructured data—spanning text, images, videos, and sensor outputs. This diversity introduces several key challenges that must be addressed to enable effective information retrieval.

Heterogeneous Data Sources:

Big data environments typically involve data originating from diverse sources such as social media platforms, e-commerce websites, enterprise databases, and IoT devices. Each source may use different formats, schemas, and semantic structures, making it difficult to integrate and retrieve information effectively. Traditional keyword-based search methods often fall short in capturing the rich semantics and complex relationships present in such heterogeneous data.

Semantic Understanding:

Unlike structured data, which conforms to predefined schemas, unstructured and semi-structured data lack explicit semantics, making them difficult to interpret and analyze. Natural language processing (NLP) techniques are commonly used to extract meaning and context from unstructured text. However, these techniques are often not applicable to other data types such as images or videos. Advanced techniques—such as entity recognition, sentiment analysis, and topic modeling—are required to understand the deeper meaning and context of diverse data types.

Data Integration and Interoperability:

Integrating data from various sources and formats requires robust mechanisms to ensure consistency and coherence. Data often needs to be transformed, standardized, and reconciled to enable seamless access and retrieval. Ensuring interoperability between systems is essential for effective cross-platform information retrieval and analysis.

Multimodal Data Retrieval:

The rise of multimedia content—such as images, videos, and audio—further complicates retrieval tasks. Traditional text-based methods are insufficient for searching across such multimodal datasets. Multimodal retrieval techniques, which integrate information from different modalities (e.g., text, images, and sound), are necessary for effective and accurate access to relevant information across diverse formats.

In summary, overcoming the challenges introduced by data variety necessitates the combined use of NLP, computer vision, multimedia processing, and data integration techniques. By leveraging these technologies, information retrieval systems can efficiently extract relevant insights from diverse sources and formats, enabling users to make informed decisions and effectively navigate the complexities of big data.

2.3 Velocity

The speed at which data is generated, processed, and updated presents a significant challenge for information retrieval systems in the era of big data. With the rise of real-time data streams from sources such as social media platforms, sensors, and IoT devices, traditional batch processing methods are increasingly inadequate for handling the fast-paced nature of modern data environments. This rapid data flow introduces several critical challenges:

Real-Time Processing:

Traditional information retrieval systems are typically designed for batch processing, where data is collected, processed, and analyzed at scheduled intervals. However, the continuous influx of real-time data—such as tweets, sensor readings, or live updates—

necessitates systems that can process and analyze information instantaneously. Real-time processing capabilities enable organizations to gain timely insights and respond quickly to evolving trends and events.

Low-Latency Retrieval:

In addition to processing data in real-time, information retrieval systems must also ensure low-latency query performance. Users expect immediate access to relevant information, and even slight delays can lead to user dissatisfaction or disengagement. Minimizing query latency is therefore essential, particularly when handling large-scale datasets or complex queries.

Dynamic Data Streams:

Real-time data streams are inherently dynamic, with continuous updates and rapid changes. Traditional indexing and querying methods often struggle to maintain performance under such conditions. As a result, modern information retrieval systems must adopt dynamic indexing and adaptive querying techniques to ensure that search results remain accurate and up to date.

Scalability and Throughput:

Processing high-velocity data at scale demands a robust and flexible infrastructure. Systems must support horizontal scalability to accommodate increasing data volumes and user loads without compromising performance. Additionally, fault-tolerant and resilient system architectures are necessary to ensure uninterrupted service, even in the face of hardware failures or network disruptions.

In conclusion, overcoming the challenges posed by high-velocity data requires a multidisciplinary approach that combines stream processing, in-memory computing, and advanced query optimization. By leveraging cutting-edge tools and techniques, information retrieval systems can efficiently handle real-time data streams and deliver fast, responsive search experiences—empowering users to make timely, data-driven decisions in dynamic environments.

3. Innovations in Information Retrieval

3.1 Scalable Indexing

Scalable indexing has become a cornerstone innovation in the field of information retrieval, particularly in managing the vast volumes of data generated in today's digital landscape. Traditional indexing methods, such as inverted indexing, often struggle to keep pace with the demands of big data environments. Scalable indexing solutions, however, offer more efficient ways to organize and access information from large-scale datasets. Below are several key innovations that have advanced scalable indexing techniques:

Distributed Indexing:

This is a fundamental strategy for scalable information retrieval. It involves dividing the index into smaller segments, which are distributed across multiple nodes within a distributed system. Each node is responsible for indexing a portion of the data, enabling parallel processing and faster data retrieval. Frameworks like Apache Hadoop (HDFS) and Apache Spark (RDDs) leverage distributed storage and processing to facilitate efficient indexing and querying across clusters.

Sharding:

Sharding is another critical technique that enhances scalability. It divides the index into smaller, more manageable units called *shards*, based on criteria such as document ID or timestamp. Each shard is stored on a separate node, allowing simultaneous data retrieval from multiple shards. This method enables horizontal scalability by distributing the indexing and querying workloads, leading to improved system performance and responsiveness.

In-Memory Indexing:

In-memory indexing stores the index entirely in memory rather than on disk. By utilizing the fast access speeds of memory, these indexes can return search results significantly faster than traditional disk-based indexes. In-memory data stores like Apache Ignite and Redis provide scalable, distributed in-memory indexing capabilities that allow for quick access to large-scale datasets.

Columnar Storage:

Columnar storage is optimized for analytical queries by organizing data by columns rather than rows, which is the traditional format. This approach allows for improved data compression and faster retrieval of specific subsets of data. Columnar storage formats, such as *Apache Parquet* and *ORC*, are particularly well-suited for analytical operations that require scanning large datasets and accessing only a subset of columns.

Compression:

Compression plays a vital role in reducing the size of indexes and enhancing query processing efficiency. By minimizing the amount of data that needs to be read and transmitted, compression significantly improves performance and lowers storage costs. Various compression techniques, including dictionary encoding, run-length encoding, and delta encoding, are employed to optimize index storage. Additionally, compressed index structures—such as bitmap indexes and prefix indexes—support more efficient information retrieval from large datasets.

3.2 Efficient Querying

The development of efficient querying methodologies in information retrieval (IR) systems—capable of extracting relevant information from massive datasets—has been a major milestone in the era of big data. Traditional querying methods often fail to scale adequately, struggling with the complexity and volume of data typical in big data environments. As such, advanced querying technologies are essential to ensure speed, efficiency, and low response times. Several key innovations have contributed to the progress of efficient query processing methods:

Query Optimization:

Query optimization plays a central role in improving the performance of IR systems by refining the query execution plan. Traditional techniques such as **cost-based optimization** and **query rewriting** aim to reduce query execution time by selecting the most efficient plan based on criteria such as data distribution, query selectivity, and available resources. More advanced methods like **adaptive query processing** and **dynamic query optimization** further enhance performance by adjusting execution strategies based on real-time feedback and runtime statistics.

Parallel Query Processing:

Parallel query processing distributes the execution of queries across multiple processing units or nodes in a distributed system. This approach leverages the computational power of multiple nodes to accelerate response times and improve scalability. Distributed platforms such as **Apache Spark SQL** and **Apache Flink** offer scalable, fault-tolerant environments that support parallel execution of complex queries over large datasets.

Indexing and Data Structures:

Efficient indexing and the use of specialized data structures are essential for fast data access and reduced query latency. Classical indexing techniques such as **B-trees**, **hash indexes**, and **bitmap indexes** provide quick lookups for structured data. For unstructured or text-heavy data, more advanced index structures like **inverted indexes** and **suffix arrays** are employed, supporting efficient document retrieval based on keyword and language-based queries.

Caching and Prefetching:

To reduce query latency and response time, **caching** and **prefetching** techniques are used. Frequently accessed data is stored in memory using **query-result caching**, allowing quick responses for repeated queries. **Data prefetching** involves loading likely-to-be-needed data into memory in advance, minimizing delays due to disk or network I/O operations.

Approximate Query Processing:

Approximate Query Processing (AQP) is a strategy that trades some degree of accuracy for significantly faster performance. Techniques such as sampling**,** sketching**, and** quantization allow approximate answers to be computed within an acceptable error bound, often in real time. AQP is particularly valuable for interactive analytics and exploratory data analysis**,** where rapid responses are more important than perfect precision.

Efficient query processing is critical for enhancing the performance and scalability of information retrieval systems in the big data era. Through the use of query optimization, parallel query execution, advanced indexing structures, caching, and approximate query processing, modern IR systems are equipped to deliver high-throughput, low-latency results. These innovations have enabled the development of high-performance IR systems capable of handling the complexity and scale of contemporary data environments.

3.3 Relevance Ranking

Relevance ranking is of paramount importance in information retrieval (IR) systems, as it determines the order in which search results are presented based on their relevance to a user's query. In the era of big data—where vast volumes of information are readily available—delivering highly relevant search results is crucial for ensuring user satisfaction and utility. Recent advances in relevance ranking aim to provide more accurate, personalized, and useful results. Several significant developments have driven the evolution of relevance ranking methods:

Machine Learning Models:

Machine learning techniques have revolutionized relevance ranking by enabling search systems to learn from user interactions and explicit feedback. These systems can adapt over time to improve the relevance of their results. One widely adopted approach is **Learning to Rank (LTR)**, which employs supervised learning algorithms—such as gradient boosting or neural networks—to train models that predict the relevance of documents in response to a given query. These models evaluate features extracted from query-document pairs, and through continuous training based on user feedback, they can be dynamically tuned to improve personalization and predictive accuracy.

Collaborative Filtering:

Collaborative filtering techniques leverage user behavior data to provide recommendations. By identifying patterns in user interactions—such as click-through rates, dwell time, and search history—these algorithms can infer preferences and recommend search results that are likely to be relevant to similar users. This approach creates a recommendation infrastructure based on shared behavior and preferences, effectively crowd-sourcing relevance judgments to enhance ranking.

Content-Based Filtering:

In contrast to collaborative filtering, content-based filtering focuses on the intrinsic attributes of documents themselves—such as keywords, metadata, and textual content—to determine relevance. This method evaluates the similarity between the content of documents and user queries using techniques like **term frequency-inverse document frequency (TF-IDF)** and **cosine similarity**. Content-based filtering is particularly useful when user behavior data is limited, as it does not rely on prior user interactions but instead uses document content as the basis for ranking.

Context-Aware Ranking:

Modern IR systems also incorporate **context-aware ranking** methods that take into account contextual information such as the user's location, device, search history, and time of access. These methods enhance personalization by tailoring search results to the user's current context, further improving the relevance and usefulness of retrieved information.

Relevance ranking is a vital component of information retrieval systems, directly influencing their effectiveness and user satisfaction. Through the integration of machine learning models, collaborative and content-based filtering, and context-aware ranking, modern IR systems can deliver personalized, accurate, and timely search results. These innovations have significantly improved the quality of relevance ranking, enabling systems to become more adaptive and capable of evolving over time to better address diverse user needs in the age of big data.

3.4 Personalized Recommendation Systems

Personalized recommendation systems have emerged as a powerful innovation in information retrieval, enabling organizations to deliver tailored and relevant content to users based on their preferences, interests, and behaviors. In the era of big data—where vast amounts of information are readily available—these systems play a crucial role in enhancing user engagement, satisfaction, and retention. Several key innovations have contributed to the advancement of personalized recommendation systems:

Collaborative Filtering:

Collaborative filtering techniques analyze user behavior data—such as ratings, purchases, and interactions—to identify similarities and patterns among users and items. By leveraging the collective preferences of users, these algorithms recommend items to a user based on the interests of similar users. Techniques such as **user-based collaborative filtering** and **item-based collaborative filtering** enable personalized recommendations that closely align with the tastes and preferences of individual users.

Content-Based Filtering:

Content-based filtering techniques focus on analyzing the attributes and characteristics of items—such as metadata, textual content, and features—to recommend items similar to those a user has previously interacted with or shown interest in. By considering the intrinsic properties of items, content-based filtering algorithms can generate recommendations that align with a user's profile and preferences. Methods such as **TF-IDF**, **cosine similarity**, and **feature extraction** are commonly used to identify and suggest items that share similarities with those previously favored by the user.

Hybrid Recommendation Systems:

Hybrid systems combine collaborative filtering and content-based filtering to leverage the strengths of both approaches and deliver more diverse and accurate recommendations. By integrating multiple recommendation strategies, hybrid systems can overcome the limitations of individual techniques and enhance the overall relevance and personalization of suggestions. Techniques such as **matrix factorization**, **ensemble methods**, and **hybrid model architectures** enable hybrid recommendation systems to generate tailored recommendations using a wide range of data sources and signals.

Context-Aware Recommendation Systems:

These systems incorporate contextual factors—such as a user's location, time of day, and device type—to provide recommendations that are relevant to the user's current situation. By factoring in real-time environmental cues, context-aware recommendation systems can dynamically adjust and personalize suggestions to suit the user's immediate needs and objectives. Techniques like **contextual bandits**, **reinforcement learning**, and **context modeling** enable these systems to adapt recommendations in real time, improving relevance and user satisfaction.

Explainable Recommendations:

Explainable recommendation systems enhance transparency by providing users with understandable justifications for why certain items are recommended. This improves user trust, comprehension, and overall satisfaction with the recommendation process. Techniques such as **rule-based systems**, **feature importance analysis**, and **model interpretation methods** are used to generate clear, user-friendly explanations. Explainability not only enhances the user experience but also promotes greater acceptance and engagement with the recommended content.

Personalized recommendation systems represent a significant advancement in information retrieval, allowing organizations to deliver relevant and customized content in the age of big data. By leveraging collaborative filtering, content-based filtering, hybrid models, context-aware systems, and explainable recommendations, these systems can align with users' preferences, behaviors, and contexts. As a result, they improve user engagement, satisfaction, and retention. These innovations have substantially advanced the field, empowering organizations to harness data and algorithms to enhance user experience and achieve strategic goals.

4. Future Directions and Emerging Trends

4.1 Deep Learning for Information Retrieval

Deep learning has emerged as a transformative paradigm in information retrieval, offering new opportunities to enhance the accuracy, relevance, and efficiency of search systems in the era of big data. As data volumes continue to grow exponentially, deep learning techniques show great promise in extracting meaningful insights from large-scale datasets and improving the quality of search results. Several key future directions and emerging trends in deep learning for information retrieval include:

Representation Learning:

Representation learning techniques aim to learn rich and meaningful representations of data directly from raw inputs, enabling more effective information retrieval. Deep learning models—such as deep neural networks and convolutional neural networks (CNNs)—can learn hierarchical representations of text, images, and other data types, capturing complex patterns and relationships that are often difficult to detect using handcrafted features. By learning representations that incorporate semantic and contextual information, deep learning models can significantly improve the relevance and accuracy of search results.

End-to-End Learning:

End-to-end learning approaches aim to model the entire information retrieval pipeline—from raw input data to final search results—within a single, integrated framework. Deep learning architectures, such as sequence-to-sequence models and transformer networks, facilitate end-to-end learning by jointly optimizing all stages of the retrieval process, including data preprocessing, feature extraction, and ranking. These models can streamline the retrieval workflow and better adapt to evolving data patterns and user behaviors.

Attention Mechanisms:

Attention mechanisms allow deep learning models to focus selectively on the most relevant parts of the input while filtering out less important information. This improves both the interpretability and the effectiveness of information retrieval systems. Mechanisms such as self-attention and multi-head attention dynamically assign importance weights to different input components, enabling more contextually relevant and precise information retrieval. Attention-based models thereby contribute to higher-quality search results and improved user satisfaction.

Transfer Learning:

Transfer learning enables the application of pre-trained deep learning models to new tasks or domains with limited labeled data. Models such as BERT, GPT, and ResNet encode

rich, general-purpose representations of language or visual data, which can be fine-tuned for specific information retrieval tasks such as document ranking, question answering, and content recommendation. By leveraging the knowledge captured during pre-training on large datasets, transfer learning allows for more accurate, efficient, and scalable information retrieval solutions.

Multimodal Learning:

Multimodal learning seeks to integrate data from multiple modalities—such as text, images, and audio—to enrich and contextualize search results. Deep learning models like multimodal transformers and vision-language models enable the joint processing of heterogeneous data, capturing semantic relationships across modalities. By incorporating multimodal inputs, information retrieval systems can deliver more comprehensive and context-aware search experiences that reflect the diversity of content encountered in real-world scenarios.

4.2 Federated Search and Data Integration

Federated search and data integration represent promising approaches to address the challenges of information retrieval in today's big data landscape. As the variety and distribution of data sources continue to expand, these techniques help organizations unify, harmonize, and efficiently retrieve information from diverse locations. Key future directions and emerging trends in federated search and data integration include:

Decentralized Search:

Decentralized search distributes search and retrieval tasks across multiple independent and heterogeneous data sources, improving both efficiency and scalability. Federated search systems—such as federated search engines and peer-to-peer networks—enable users to query multiple data sources simultaneously and retrieve results in real time. By distributing search workloads across decentralized nodes, these systems enhance scalability, fault tolerance, and overall performance in information retrieval.

Semantic Data Integration:

Semantic data integration techniques focus on reconciling and unifying data from disparate sources by understanding the meanings and relationships among various data elements. Technologies such as RDF (Resource Description Framework), OWL (Web Ontology Language), and SPARQL allow organizations to model, annotate, and query data in semantically rich and interoperable formats. By leveraging semantic integration, organizations can address challenges related to data heterogeneity and inconsistency, enabling more accurate, meaningful, and comprehensive retrieval of information.

Schema Matching and Mapping:

Schema matching and mapping techniques aim to align and integrate data schemas from different sources, facilitating seamless access and interpretation. Schema matching algorithms—based on instances, structure, or semantics—identify correspondences between data elements by analyzing their attributes, structure, or meaning. Schema mapping methods, such as ontology-based and rule-based mapping, help define relationships and transformations between disparate data representations. Automating schema matching and mapping reduces the complexity and effort required to integrate heterogeneous data, resulting in more scalable and effective information retrieval.

Distributed Query Processing:

Distributed query processing enables organizations to execute complex queries across multiple distributed data sources in a coordinated and efficient manner. Frameworks such as Apache Drill and Presto facilitate distributed execution by employing parallel processing across nodes. This approach improves query performance, responsiveness, and scalability, particularly when working with large-scale datasets stored in various locations.

Data Virtualization:

Data virtualization allows organizations to access and query data from multiple sources through a unified, virtual interface—without physically moving or replicating the data. Platforms like Apache Calcite and Denodo create abstraction layers that enable queries using standard SQL or SPARQL across heterogeneous systems. By virtualizing data access, organizations can minimize the overhead and complexity associated with physical integration, leading to more agile, flexible, and efficient information retrieval environments.

4.3 Ethical and Privacy Considerations

As information retrieval systems continue to evolve to handle larger volumes of data and deliver more personalized results, **ethical and privacy considerations** have become increasingly important. It is essential for organizations not only to understand the ethical implications of their systems but also to commit to designing information retrieval technologies that respect user rights and privacy. The following are key ethical and privacy issues that are expected to play a central role in the future development of information retrieval systems:

User Consent and Transparency:

Organizations must prioritize obtaining informed user consent and maintaining transparency regarding data collection, storage, and usage. Clearly communicating what data is being collected, why it is collected, how it is used, and any potential risks involved empowers users to make informed decisions. Transparent practices help build trust between users and organizations, enhancing users' understanding of how their data contributes to the functioning of information retrieval systems.

Data Protection and Security:

Safeguarding user data from unauthorized access, misuse, or breaches is critical for maintaining user trust and ensuring compliance with privacy regulations. Organizations should implement strong security mechanisms such as encryption, access controls, and data anonymization techniques to protect sensitive user information. Moreover, compliance with data protection regulations—such as the General Data Protection Regulation (GDPR) and the California Consumer Privacy Act (CCPA)—is essential to ensure lawful, fair, and transparent data processing.

Bias and Fairness:

To prevent perpetuating systemic bias or discrimination, information retrieval systems must be designed with fairness in mind. Organizations should identify and mitigate biases in data, algorithms, and decision-making processes to ensure that search results and recommendations are impartial and inclusive. This involves using diverse and representative datasets and regularly auditing algorithms to detect and correct any discriminatory outcomes, thereby promoting fairness and equity in information retrieval.

User Empowerment and Control:

Providing users with control over their personal data is vital to respecting their privacy preferences. Easy-to-use privacy settings—such as opt-out options, data-sharing controls, and customization tools—enable users to manage how their data is collected and used. In addition, facilitating access to data, portability, and deletion options supports user autonomy and reinforces organizational accountability in handling personal information.

Ethical Use of AI:

As AI plays an increasingly central role in information retrieval systems, it is critical to ensure that these technologies are developed and deployed ethically. Adhering to established AI ethics frameworks—such as the IEEE *Ethically Aligned Design* and guidelines from global AI ethics bodies—helps ensure fairness, transparency, accountability, and the minimization of harm. By integrating these ethical principles into the design and deployment of AI-driven systems, organizations can mitigate potential risks and build trust with users.

5. Conclusion

In the age of expanding big data, information retrieval has positioned both organizations and individuals at the forefront of technological advancement in accessing and analyzing information. One of the defining achievements of the information age is the ability to explore, interpret, and extract insights from vast volumes of data. This paper has examined the challenges, transformations, and innovations in the field of information retrieval, highlighting its significance for both institutional and personal use in managing the complex and often ambiguous nature of data today.

Information retrieval faces numerous challenges—such as the volume, variety, velocity, and veracity of data—alongside rapidly evolving innovations including scalable indexing and querying, web crawling, personalized recommendation systems, and deep learning. These ongoing advancements aim to more effectively meet the dynamic needs of users and organizations, enhancing the relevance, accuracy, and efficiency of information retrieval. Such improvements can ultimately support better decision-making and enable actionable insights from data.

In summary, information retrieval remains a vital and evolving domain that continues to shape how we access, interpret, and interact with data in the digital age. By addressing challenges, embracing innovation, and committing to ethical principles, information retrieval systems can make a lasting, positive impact on society—empowering individuals and organizations alike and maximizing the potential of data for the greater good. As we move forward in an increasingly data-driven world, information retrieval will undoubtedly remain central to shaping our digital future.

References:

1. Manning, C. D., Raghavan, P., & Schütze, H. (2008). Introduction to information retrieval. Cambridge University Press.
2. Baeza-Yates, R., & Ribeiro-Neto, B. (2011). Modern information retrieval. Addison-Wesley.
3. Liu, B. (2015). Sentiment analysis: Mining opinions, sentiments, and emotions. Cambridge University Press.
4. Manning, C. D., Surdeanu, M., Bauer, J., Finkel, J., Bethard, S. J., & McClosky, D. (2014). The Stanford CoreNLP natural language processing toolkit. In ACL (System Demonstrations) (pp. 55-60).
5. Li, J., & Lu, Y. (2019). A survey on federated learning systems: Vision, hype and reality for data privacy and protection. arXiv preprint arXiv:1907.09693.
6. Abadi, M., Barham, P., Chen, J., Chen, Z., Davis, A., Dean, J., ... & Kudlur, M. (2016). TensorFlow: A system for large-scale machine learning. In 12th USENIX Symposium on Operating Systems Design and Implementation (OSDI 16) (pp. 265-283).
7. Salton, G., Wong, A., & Yang, C. S. (1975). A vector space model for automatic indexing. Communications of the ACM, 18(11), 613-620.
8. Sarwar, B., Karypis, G., Konstan, J., & Riedl, J. (2001). Item-based collaborative filtering recommendation algorithms. In Proceedings of the 10th international conference on World Wide Web (pp. 285-295).
9. Mikolov, T., Sutskever, I., Chen, K., Corrado, G. S., & Dean, J. (2013). Distributed representations of words and phrases and their compositionality. In Advances in neural information processing systems (pp. 3111-3119).

sharmadk73@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 59-61
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन रचनाओं में पारिस्थितिकी स्त्रीवाद- एक नई सोच

डा. जी सुजिदा
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर,
निर्मला कालेज,मुवाटुपुषा,केरल

विकास के नारे को बुलन्द करते हुए बीसवीं शताब्दी का शुभारंभ हुआ था। विकास योजनाओं की अदूरदर्शिता, वैज्ञानिकता का दुरुपयोग, पूंजी की केन्द्रियता से पृथ्वी तेज रफ़्तार से पददलित होती जा रही है। उसी प्रकार पृथ्वी से जुडे सहज जीवन बिताने वाले सब हाशिये पर धकेल दिए गए। पुरुषवर्चस्ववादी समाज ने पहले स्त्री को अपने अधीन करने की कोशिश की,अब वह प्रकृति को अपना शिकार करने का प्रयास कर रहा है। इसके जबाब में स्त्रीवादी चेतना ने जन्म लिया। यह प्रश्न आज शोषित हो रही प्रत्येक स्त्री के प्रश्न बन गए हैं। हाशिये में धकेल दिए गए और दिन-रात मेहनत करती स्त्रियों की समस्याओं पर भी आज चर्चा हो रही है। 'स्त्रीवाद' भी इन्ही मुद्दों की तहकीकात पर आधारित है।'स्त्रीवाद' का सीधा अर्थ पुरुष की बराबरी करना या पुरुष के खिलाफ़ आवाज उठाना नहीं ब्लकि पुरुषवर्चस्ववादी समाज के शोषण के खिलाफ़ आवाज बुलन्द करना है।

आधुनिक नारीवाद का पहला मील का पत्थर सिमोन द बोउवा की कृति 'द सेकेण्ड सेक्स' थी। स्त्रीवाद ने स्त्री की अस्मिता को तलाशने में उसकी मदद की है। यही वह इकलौता दर्शन है जो गरीब बहनों से प्रखर सरोकार रखता है, उनकी विशिष्ट [वर्ग-सापेक्ष] समस्याओं के प्रति अतिरिक्त सजग है और इससे बंधुत्व और सखी-भाव की अवधारणा नए सिरे से जी उठती है। स्त्री विमर्श की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह प्रतिशोध पीडित नहीं है। इसका मानना है कि एक दमन-चक्र का जबाब दूसरा दमन-चक्र बिल्कुल नहीं होना चाहिए। इससे यह स्पष्ट है कि स्त्रीवाद की नींव शोषण दोहन मुक्त एक एगैंलिटेरियन समाज है। इस समाज में स्त्री की आवाज को हमेशा दबाया गया है। राकेश कुमार लिखते हैं कि 'आज तक तो वह अपने वर्चस्व,प्रभुत्व के द्वारा उन्हें दबाता,कुचलता,रौंदता, वाणीहीन करता आया था,लेकिन अब तक की दबी-कुचली,खामोश दुनिया जब अपने स्वत्वाधिकारों अस्मिताओं के बारे में पूरी प्रखरता के साथ सोचने-विचारने लगी है तो उसका आक्रमक हिंसक,उत्तेजक चिंतित होना भी लगभग स्वाभाविक है। अब तक उसके रहे उपनिवेश अब अपनी स्वतंत्रता, सत्ता, अस्मिता को चाहते हैं। याने वर्तमान में स्त्री की अस्मिता का प्रश्न उस तक सीमित न हो कर समाज के हर शोषित वर्ग से जुडता हुआ दिखाई देता है।

वह आधी दुनिया है लेकिन उसका अधिकार मात्र दूसरा ही रहता है। वह दूसरे दर्जे की है। लिंग भेद की राजनीति में स्त्री के प्रति गहरी असंवेदनशीलता,अभद्रता,असमानता का भाव निहित है,साथ ही इस राजनीति में स्त्री एक उपनिवेश भी है। नारीवाद स्त्री को लिंग भेद की राजनीति से अलग करना चाहती है,इसका सीधा उपाय स्त्री द्वारा अपने अस्तित्व व अस्मिता की सच्चाई को पहचानना है। तभी लिंग की समानता संभव है।

स्त्री की अस्मिता का प्रश्न आज तक हाशिए पर है, स्त्रीवाद स्त्री की इसी खोई हुई अस्मिता को तलाश्ने में उसकी मदद करती है। उसकी अस्मिता को समाप्त करने वाला, सबसे बडा घटक, उसका भोग्या होना है। देह की नीति उसकी अस्मिता को तहस- नहस करने में सहायक होती है। डा वीणा रानी यादव लिखती है 'एक ओर स्त्री का अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष है तो दूसरी ओर उसे अस्मिता रहित बनाए रखने का षडयंत्र है। स्त्री सर्जक है, उत्पादक है परन्तु उसकी अस्मिता को स्वीकार न कर समाज में उसका भोग्या रुप ही स्वीकृत है जो उसके मानवीय स्तर को गिराता है।'उसके प्रतिरोध के विभिन्न आयाम व्यक्ति की स्वतंत्रता से लेकर, आर्थिक-अधिकार,समाजिक अधिकार और राजनितिक-अधिकार से संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं।

समकालीन स्त्रीवाद की सोच आज विस्तृत हो गई है। स्त्रीवाद का दायरा मात्र स्त्री की अस्मिता तक सीमित ही नहीं रहा,बल्कि वह समाज में उपेक्षित वर्गों के साथ यानी,प्रकृति के शोषण से लेकर हाशिएकृतों तक के लिए संघर्ष करती है। गोया पारिस्थितिक स्त्रीवाद, स्त्रीवाद की अगली कडी मानी जा सकती है। डा के वनजा ने सर्वप्रथम इस विमर्श को हिन्दी में स्थान दिया। उनके अनुसार 'पृथ्वी और स्त्री को तथा अन्य उपेक्षित वर्गों को पितृसत्तात्मक पूंजीवादी शोषण से बचाने के लिए प्रकृति के साथ मिलकर जीने की जो नवीन विचारधारा फ़ेमिनिज्म और पारिस्थितिकवाद दोनों के संयोग से रुपायित हुई उसे इकोफ़ेमिनिज्म कहा जाता है। यह विमर्श स्त्री और प्रकृति के संबंध को सांझा करती है।

पारिस्थितिक स्त्रीवाद, स्त्रीवाद का एक अगला कदम है। पारिस्थितिक स्त्रीवाद प्रकृति और स्त्री को एक साथ रखने की एक नई सोच है। प्रकृति को केन्द्र में रखकर स्त्री अपने और प्रकृति के शोषण के खिलाफ़ अपनी आवाज बुलन्द करती है। अनादि काल से प्रकृति और स्त्री दोनों इस पुरुषवर्चस्ववादी समाज के शोषण की शिकार हैं, दोनों ही निसहाय रुप से इस शोषण को झेल रहीं है। प्रकृति और स्त्री दोनों ही अपनी उर्वता के कारण शोषण की शिकार बनती जा रही हैं। इस विचारधारा के सैधान्तिक रुप को एरियल साले की रचना **'Eco Feminism As Politics : Nature, Marx and the postmodern'** में परखा जा सकता है। पारिस्थितिक स्त्रीवाद का अर्थ सम्पूर्ण समग्रता के साथ मुक्ति है। यह मुक्ति मात्र प्रकृति और स्त्री से जुडी नहीं है, इस मुक्ति में अन्य शोषित हाशियेकृत वर्ग, आदिवासी, दलित और समलैंगिकता से जुडे वर्ग भी शामिल है। इस मुक्ति के प्रयास में पुरुष की मुक्ति भी शामिल हो जाती है। स्त्री और प्रकृति दोनों समानधर्मी हैं क्योंकि दोनों ही एक साथ शोषण की शिकार है। इस समानधर्मिता को हानि पहुंचाने का काम पुरुषवर्चस्ववादी समाज कर रहा है। प्रकृति और स्त्री दोनों ही अपनी उर्वता के कारण शोषण की शिकार बनती जा रही हैं। स्त्रीवाद और परिस्थितिक दर्शन के संयोग से पारिस्थितिक स्त्रीवाद का अर्विभाव माना जा सकता है। अध्यात्मिक पारिस्थितिक स्त्रीवाद, सांस्कृतिक पारिस्थितिक स्त्रीवाद, सामाजिक पारिस्थितिक स्त्रीवाद, इन सब आयामों से मिलकर पारिस्थितिक स्त्रीवाद की रुपरेखा तैयार होती है। विज्ञान और संस्कृति भी स्त्री और प्रकृति की समानता के सत्य को नहीं नकारती और पुरुषवर्चस्ववादी शोषण का कडा विरोध भी करती है। साहित्य में भी इस विमर्श की शिरकत हो चुकी है। पाश्चात्य साहित्य से इस विमर्श का आर्विभाव माना गया है। लगभग 1990 में अमेरिका में पारिस्थितिक विभागों में पृथ्वी केन्द्रित पारिस्थितिक दर्शन का अध्ययन प्रारंभ हुआ। वर्ड्सवथ की बहन डोरती वर्ड्सवथ की रचनाओं को परिस्थितिक स्त्रीवाद के तहत देखा जा सकता है। 1991 में लोरेन आन्डर्सन द्वारा संपादित पृथ्वी की बहनें भी इसका एक पुख्ता उदाहरण है। हिन्दी साहित्य की ओर रुख करें तो आज इस विमर्श पर चर्चा जोरों पर हैं पारिस्थितिक स्त्रीवाद को हिन्दी कहानियों में, उपन्यासों में, नाटकों में, कविताओं में परखने की कोशिश प्रबल हो रही है। महादेवी वर्मा से लेकर क्षमा शर्मा की रचनाओं में पारिस्थितिक स्त्रीवाद की झलक देखी जा सकती है। मृदुला गर्ग का कठगुलाब [उपन्यास],संजीव का धार[उपन्यास],सुरेश्चंद्र श्रीवास्तव का वनतरी [उपन्यास], क्षमा शर्मा की लडकी जो देखती पलटकर[कहानी],मृदुला गर्ग की विनाशदूत[कहानी],भीष्म साहनी का नाटक माधवी,जगदीश चंद्र माथुर का नाटक पहला राजा और

कविताओं में प्रियंका पंडित का कत्थई मिट्टी,निर्मला गर्ग का पेड - पौधों की नस्ल आदि प्रमुख रचनाएं हैं जो इस संदर्भ में उल्लेखनीय ठहरती हैं।

गोया स्त्रीवाद स्त्री को उन सभी घेरों से तोडना चाहती है,जो पुरुष वर्चस्वादी सत्ता ने अपने स्वार्थ के लिए बनाए हैं। स्त्री जब खुद सबल बनेगी तभी वह अपने साथ शोषित वर्ग को बचाएगी। आज भी स्त्री शोषण के कई रुप देखे जा सकते हैं लेकिन इस से स्त्री उर्जा प्राप्त करती है,शोषण से आज वह डरती नहीं बल्कि और निडर बन जाती है,वह संघर्ष पर संघर्ष जारी रखती है। सुधा अरोडा लिखती हैं कि 'कई ऐसी औरतें भी होती हैं जो अपनी जिन्दगी के महत्वपूर्ण साल इस कोशिश में खपा देने के बाद भी अपने को असफ़ल पाती हैं और देखती हैं कि उन्हें फ़िर भी घुसपैठिए का ही दर्जा दिया जाता है। इसके बाद शुरु होती है उसकी अपने अस्तित्व,अपनी पहचान,अपनी आकांक्षाओं की लडाई,जिसे हर लडकी अपने–अपने तरीके से लडती है और अपनी आजादी हासिल करती है।' पारिस्थितिक स्त्रीवाद में स्त्रीवाद एक प्रमुख तत्व है क्योंकि दोनों एक दूसरे के पूरक है। रेडिकल नारीवाद का विस्तार समलैंगिक नारीवाद और परिस्थितिक नारीवाद के क्षेत्रों में हुआ है। अस्तु पारिस्थितिक स्त्रीवादी के तहत स्त्रीवाद के विविध आयामों से रु-ब-रु हुआ जा सकता है।

संदर्भ-

1 राकेश कुमार- नारीवादी विमर्श, पृ-49
2 डा वीणा रानी यादव–हिन्दी उपन्यासों में स्त्री अस्मिता की अभिव्यक्ति,पृ-37
3 डा के वनजा- इकोफ़ेमिनिज्म, पृ 12
4 सुधा अरोडा- आम औरत, जिंदा सवाल, पृ-98

9526229121

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 62-65
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विकास की चकाचौंध और विस्थापन की पीड़ा : समकालीन हिंदी कहानियों के आईने में

डॉ.अंजली जोसफ
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग,निर्मला कॉलेज,मुवाट्टूपुषा,एर्णाकुलम,केरल.

बाजारवाद और विकास की रणनीति ने विस्थापन की प्रक्रिया को काफी तेजी से बढ़ाया है। विकास तो जरूरी है । लेकिन जब यह शोषण का तरीका अपनाने लगता है तो संकट उत्पन्न हो जाता है । सडक निर्माण, तथा बाँधों या बडे-बडे इमारतों केलिए जंगल का सफाया किया जाता है। जो भारी दोहन में परिणत हो जाते हैं। विकास की प्रवृत्ति उन स्थानों पर रहनेवाले लोगों को विस्थापित की जाता है। बड़े-बड़े वादे देकर सरकार तथा निजी कंपनी ये काम करती हैं लेकिन सब कुछ अपूर्ण रहते हैं। उन लोगों को सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हो पाती है। कहने पर सरकार उन्हें मुआजा तो देती है परन्तु ये पर्यात नहीं होता है।"विकास के साथ जन-साधारण नहीं जुड़ पाता और धनिक वर्ग अपने लाभ के लिए विकास के मानदंण्ड निर्धारित करता जाता है। जब विकास के फल मुट्ठी भर सुविधाभोगी लोगों तक पहुँचकर ही रह जाते हैं तो संस्कृति और पर्यावरण का क्षेत्र भी नहीं, जनसाधारण की हित चिंतना का क्षेत्र भी वीरान हो जाता है। " 1 अतः विकास योजनाओं के पीछे भी लाभ की मानसिकता ही प्रबल है। विकास भी आज एक बाजार है। समकालीन हिंदी कहानी में विकास के विभिन्न आयामों को आंकने का प्रयास किया हैं ।

अधिकार संपन्न वर्गों का लालच और बाजार की ताकत का मेल कभी भी सीमांत लोगों के हितों में नहीं हो सकता। विस्थापन विकास के नाम पर एक प्रश्न चिह्न है वहाँ बेघर होते लोग, बेरोजगार तथा उनकी संस्कृति से कटे गये मात्र है। जमीन अधिग्रहण कुछ लोगों के स्वार्थहित केलिए मात्र होता है। हरिचरण प्रकाश की कहानी है 'नाले का तट', जिसमें शहर को हेरिटेज बनाने के सिलसिले में नाले के तट के बस्ती को उजाड़ने का जिक्र किया है। कहानी धूपवाली औरत से शुरु होती है जो कि सेल्स वुमन का किरदार निभाती है और वह नासिरी नाले के तट पर रहती है। कहानी में बताया गया है कि, "पर्यावरण, प्रदूषण, संस्कृति और इतिहास से मिली-जुली इस याचिका में प्रकट चिंता के परिणामस्वरूप न्यायालय ने शहर के एक क्षेत्र को हेरिटेज जोन घोषित किया। इस हेरिटेज जोन में महल, मकबरे और उद्यानों के अलावा नासिरी नहर भी थी और आदेश यह थे कि इन सबको अतिक्रमण और प्रदूषण को मुक्त किया जाए।" 2 समस्या तो हरिटेज का है। एन. जी. ओ, सरकार और हाईकोटे मिलकर नासिरी नाला साफ करने पर तुले हैं। कहा गया है कि नाले के तट के

बस्ती के वजह प्रदूषण बढ़ रहा है जिससे नाले गन्दगी से भरे है। इसलिए प्रदूषण को रोकने केलिए नाले को साफ करना ै और शहर के स्वास्थ्य को बढ़ाने हैं। कहानी अजय शंकर राय और उसकी पत्नी श्रीमती राय से जुड़कर आगे चलती है। सुषमा प्रजापति से पता चलती है कि जो कि उनके घर में काम करनेवाली है, "पूरी बस्ती है नाले के किनारे। सुन रहे हैं कि बस्ती उजाड़ने का प्लान बना है।" 3 सुषमा उस बस्ती का ही रहनेवाली है। बाजार फायदा मांगता है। बाजार की खूबी भी यह है कि सबको फायदे के जरिए ला खड़ा करता है। यहाँ भी हेरिटेज और प्रदूषण के नाम पर व्यवसाय चल रहा है। वस्ती के लोग इसकेलिए रुकावट है इसलिए उन्हें बेदखल करने का इरादा है। कहानी में डा. रम्मन का कहना है कि, "नासिरी नाला साफ करना है। इसके किनारे की मलिन बस्ती साफ करनी है। एक एन. जी. ओ, एक सरकार और एक हाईकार्ट सब मिलकर उसे मथ रहे हैं।" 4 । यहाँ पूरे बस्ती और वहाँ के रहने वालों को कूड़ा मानकर उन्हें साफ करने का इरादा है। यहाँ सफाई केवल गन्दगी का नहीं बल्कि बस्ती और वहाँ रहनेवालों का भी है। यहाँ सफाई का मतलब जड़ से उजाड़ना है जो बाजार के लिए खतरा है उसे वह पूरी तरह धकेल दिया जाता है उसे चकनाचूर कराया जाता है। नाला भी आगे के व्यवसाय केलिए बाधा है। परिस्थिति को बचाने के नाम पर विस्थापन की प्रक्रिया आजकल जारी है। फिर आनेवाले दिनों में यह तय किया गया कि नाले को फिर से नहर बनाया जाए। मीडियावाले भी इसे खूब बढ़ावा देते हैं साथ ही जनहित के नाम पर इसका प्रचार करते हैं। "इस बार यह अतिरिक्त रूप से कहा गया कि वह प्लास्टिक और पालीथीन का कचरा बीनकर प्रदूषण के एक अनश्वर चक्र का निर्माण करते हैं। यह आरोप बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुआ जिससे घबराकर राजनीतिक दलों को अपनी राजनीति तय करनी पड़ी। इस प्रकार यह एकराजनीतिक मुद्दा भी था।" 5 स्थिति और भी उलझ गयी। नासिरी नाले के लोग अकेले पड़ते जा रहे थे। उनके साथ दिया नेता भी जुटा हुआ था फिर प्रस्ताव रखा कि इन लोगों को अंग्रेजवाले कब्रिस्तान के पास बसा दिया जाए पर इसका घोर विरोध हुआ। राजनीतिज्ञ भी सार्वजनिक हित को मुद्दे नजर रखकर अराजनीतिक बनता गया। आखिर बिना शोर शराबे की बस्ती खाली कर दी गयी। राजनीतिक विकास में रु वार्थ ही मुख्य है और सुस्थिर विकास का लक्ष्य गौण। यहाँ मुट्ठी भर लोगों के स्वार्थ केलिए निसहाय लोगों को अपनी जमीन से उजाड़ना भी बाजार की घिनौनी मानसिकता ही है।

बाजारीकरण के कारण सारे संसार में विकास की लहर फैल रही है। विकास की योजनाओं से जुड़कर आधुनिक मनुष्य प्रकृति को निचोडकर अपनी भौतिक सुख सुविधाओं को बटोरने में रत है। यहाँ प्रकृति को मात्र उपभोग की वस्तु के रूप में देखा जाता है। वर्तमान समय की हालत यही है। स्वयं प्रकाश की कहानी 'जंगल का दाह' पर्यावरण बोध की सजगता को प्रकट करती है। वनवासियों केलिए माम सोन धनुर्धर मात्र नहीं वे उनके गुरु भी थे। वे अपने गुरु का बड़ा आदर करते थे। वे उन्हें बाण चलाना सिखाते थे। जगंल के कोने-कोने जानते थे मामा सोन को धीरे-धीरे उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयीं। संयोगवश एक दिन उन्हें राजकुमार को शेर से बचाने का मौका मिला तब राजा ने तय किया कि माम सोन राजकुमार का गुरु बनकर उसे धनुर्विद्या सिखाएगा। लेकिन माम ने यह शर्त रखी कि इसकेलिए राजकुमार को जंगल में रहना पड़ेगा।

मामा सोन और जंगल वासियों के लिए जंगल उनकी संस्कृति है लेकिन राजकुमार केलिए जंगल तथा वहाँ के जीव जन्तुओं की कोई अहमियत नहीं है। बाजारवादी मानसिकता से ग्रस्त मानव राशी का नैतिकताबोध नष्ट होता जा रहा है। एक महीने के बाद राजा आया अपने सैनिकों के साथ यह देखने कि राजकुमार का प्रशिक्षण कैसा चल रहा है? राजा समझ गया कि बेटा इसमें माहिर नहीं हुआ है और गुरु को तख्ता बनाकर तीर चलाने को कहा ताकि उनसे और दूसरा न सीख पाये। वास्तव में यह तीर बाज़ार संस्कृति द्वारा प्रकृति पर चलाये जाने वाला तीर है जो प्रकृति हमें अपने पूर्वजों से प्राप्त हुई उसे संभालकर अगली पीढ़ी को सौंपना है, वह उपभोग के आधिक्य से हमारे ही समय में नष्ट होती जा रही है।

जब सैनिकों द्वारा जंगल वासियों के हमले का मुकाबला नहीं कर पाऐ तो वे राजा और राजकुमार को लेकर भाग निकले और जाते समय जंगल को आग लगा दी गयी। जिसमें सब कुछ जलकर राख हो गया न मामा बचे न वहाँ की वनस्पति और न वन्य गण । आज मामा सोन के वंशज शहर में बांस की टोकरियाँ, तार के छींके बनाकर बेच रहे हैं। कहानी के अंत में कहा गया है, "सुना है उनके इलाके में कोई बड़ा बाँध बन रहा है जिससे देश की बड़ी तरक्की होगी । मामा सोन के वंशजों और शिष्यों को जंगल से हकाल दिया गया है।" 6 विकास के नाम पर बनती योजनाएं किस हद तक देश की तरक्की करायेंगी यह प्रश्न विचारणीय है। यह बाँध योजनाओं का निर्माण केवल बाजार का छद्म रूप है । इनके निर्माण में कई वस्तियों को उजाड़ दिया जाता है, कई अपने जमीन से बेदखल कर दिए जाते हैं। विकास के नाम पर हो रहे इन योजनाओं का बुरा असर हमेशा आम जानता की जिन्दगी पर पड़ता है । आज की विकास नीतियाँ प्रगति और प्रकृति के विरोधात्मक स्थिति पैदा कर रही है और आम जनता की जिन्दगी ऊसर बना रही है। यह मानसिकता भी बाजार द्वारा निर्मित है।

विकास नीति और राजनीति का संबन्ध अटूट है। देश के विकास केलिए सरकार द्वारा अनेक योजनाओं का निर्माण किया जाता है। पर आजकल यह योजनायें चन्द लोगों की स्वार्थपूति केलिए मात्र बनायी जाती है। आम जनता न चाहकर भी इसे स्वीकार करने केलिए मजबूर है यही वास्तविकता है। वकास के नाम पर हो रही इन योजनाओं का बुरा असर जनता की जिन्दगी पर मात्र नहीं परिस्थिति के व्याकरण में भी बाधा डालती है। विकास की वास्तविकता को चित्रित करनेवाली कहानी है संजीव की 'हत्यारे' ।

कहानी में विकास के यथार्थ को दर्शाया गया है। इसमें कुकिंग कोल के खनन के लिए नदी को बदलने की योजना बना रही है। रतना नदी विसुनपुर से चलनेवाली नदी है । इस नदी के संरक्षण तथा वकास हेतु सरकार की 'बूट' योजना के तहत अधिगृहित कर पांच साल केलिए गोयनका साहब को सौंप दिया गया । प्रस्तुत कहानी में सरकार के चार आदमी सिन्हा, प्रसाद गोयनका और अग्रवाल द्वारा नदी को मरोडने का प्रयास है । बाजार की नीति से प्रभावित मनुष्य अपनी सुविधा के लिए प्रकृति की गति को मरोड़ देते है । नदी हमारी संस्कृति है हमारा जीवन है। पर पूँजीवादी वर्ग इस आदर्श पर प्रश्नचिह्न लगाकर स्वार्थलाभ को प्र मुखता देता है। जिससे मनुष्य ही नहीं अन्य जीव जन्तु भी खतरे में पड़ जाते है। इसकी पर्वाह किये बिना वे खनन पर जोर देते है। अग्रवाल जी के मुताबिक "तीन हजार करोड टन कोकिंग कोल का सवाल है।" 7जिसप्रकार राजनीतिज्ञ, ठेकेदार और पूँजीपति वर्ग विकास के नाम पर मुनाफे को लक्ष्य बनाकर प्रकृति का शोषण करता यह बाद में घोर मानवीय संकट का परिणाम बन जाते है इस तथ्य को मुखरित करती है । एक ओर अवैध कोयला खनन से प्रदूषण बढ़ने की संभावना है तो दूसरी तरफ विस्थापन की समस्या से भी मुक्त नहीं ।नदी की गति बदलने से जिन जिन समस्याओं का बिसुनपुर के लोगों को सामना करना पड़ेगा इनका जिक्र भी कहानीकार ने सरकार के ठेकेदार द्वारा सूचित किया है। ग्रामीण जीवन का एक प्रमुख हिस्सा है। खेती । यह उनकी आजीविका है। कहानी में रतना नदी की गति को बदलने का बुरा असर खेती पर भी पडता है। यह सिन्हाजी की वाक्यों में जाहिर है, "इधर के हजारों एकड के उपजाऊ खेत नदी के पेट में समा जायेंगे"8 इसके अलावा जीविका चलाने केलिए उनके पास और कोई चारा भी नहीं ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार के विकास से खेत, जीव-जन्तु ही नहीं संपूर्ण गाँव ही अप्रत्यक्ष हो जायेंगे । "इधर तो हसांटांड सगौना, विसुनपुर के सारे ही गाँव उजड़ जायेंगे । मेनली हरिजन्स एण्ड ट्राइवल्स।" 9साधारण गाँववालों पर इसका प्रभाव किस प्रकार पड़ेगा यह जानकर भी वे खनन पर जोर देते है। बाजारवाद से प्रभावित मनुष्य अ पनी सुविधा केलिए अपने गाँव को भी उजाड़ने केलिए तत्पर बन जाते हैं।

गाँधीजी के अनुसार प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना ही विकास का प्रथम धेय होना चाहिए, किंतु आज विडम्बना यह है कि लोग ऐसे विकास का सपना देखने लगे हैं, जो स्वार्थ संपन्न करने पर आधारित है। इसी कारण आज विकास के नाम पर प्रकृति एवं पर्यावरण का घोर नाश हो रहा है। इस मुद्दे को लीना महेंदले की कहानी 'एक शहर मर गया' में उठाया गया है, "दूर-दूर तक जहाँ भी नज़र जाती थी, मजिलें, मकान, कई शोपिंग मॉल, पक्के रास्ते, उन पर दौड़ती बसें कारें समुद्र के अथाह प्रवाह की तरह आते-जाते लोग और लोगों ने कहना शुरु किया ओफ्फ-ओफ्फ, इतनी जन संख्या बढ़ गयी, वाहन बढ़ गए, लेकिन रास्तें अब भी वहीं, पच्चास वर्ष पुराने संकरे रास्ते अरे कोई इन्हें चौड़ा तो करो" 10रास्तों को चौड़ा करने केलिए आवश्यक है कि पेड़ काटे जाए। संवेदनशील जन नारे लगाते हैं, कुछ लेख छपते हैं। पर अन्ततः सारे पेड़ काट जाते हैं। कहानी में तीन हजार पेड़ों को काट कर दो सौ किलोमीटर का रास्ता तैयार कर आज ही हमारी विकास योजनाओं और परिस्थिति के असंतुलित समीकरण की ओर इशारा करता है। ध्यान देने की बात यह है कि सड़क के निर्माण के पीछे मौजूद लाभ को यहाँ सूचित करता है। सड़क जब बनती है तब लोगों के समक्ष यह विज्ञापन होती है कि हर नागरिक के घर के द्वार पर सडक पहुँचेंगे हैं। पर आँकडें बताते है कि विदेशी कारों का आयात जब अधिक मात्रा में होने लगा तब सड़कों के निर्माण की तीव्रता बढ़ने लगी। पर इस सत्य से लोग अनजान ही रहते हैं।

बाजारवादी अर्थतंत्र से प्रभावित होकर सरकार ने संपूर्ण देश में विकास योजना का कार्यक्रम लागु किया जिससे प्रगति हो। लेकिन अब इन विकास योजनाओं का असर उल्टा हो रहा है। विकास के नाम पर बहुत लोगों को अपनी जमीनों से बेदखल कर दिया गया। आजकल विकास योजनाओं के कारण विस्थापित होनेवालों की संख्या बढ़ती जा रही है। विस्थापन का चित्र खींचने पर पता चलता है कि कितने लाखों लोगों के बेघर होने, बेरोजगार होने, उनकी संस्कृति और प्रकृति के नाश की दर्दनाक कथा मिलती है। वाकई आज की विकास नीति बाजारीकरण से जुडी है जिसमें जल-जंगल-ज़मीन जैसे प्राकृतिक संसाधनों को निजी हाथों में दोहन की खुली छूट दे कर निर्धन लोगों को अपनी जमीन से उजाड़ने की मानसिकता भी बाज़ार द्वारा ही रूपायित है। इस भयानक सत्य को समकालीन हिंदी कहानी चित्रित करती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोविन्द चातक, पर्यावरण और संस्कृति का संकट, तक्षशिला प्रकाशन, नयी,दिल्ली,२००६, पृ. १०१
2. रिचरण प्रकाश, उपकथा का अंत, आधार प्रकाशन प्रो. लि,पंचकूला,२००१,पृ.१४२
3. वहीं, पृ.१३८
4. वहीं, पृ. १३७
5. स्वयं प्रकाश, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली,२००३, पृ.१४५
6. वहीं, पृ.६८
7. संजीव, झूठी है तेतेरी दादी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली,२०१०,पृ. ५३
8. वहीं, पृ. ५४
9. वहीं, पृ. ५४
10. लीना महेंदले, इंद्रप्रस्थ भारती, २००५, पृ १४१

anjalymaria151@gmail.com

9496332394

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 66-68
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी कहानियों में नव माध्यम का प्रभाव

Dr. Jeena Mary Jose ,
Assistant Professor,
Dept. of Hindi, Nirmala College, Muvattupuzha, Ernakulam, Kerala.

वर्तमान युग सूचना और प्रौद्योगिकी का युग है। जिसमें नव माध्यम की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। नव माध्यम या 'न्यू मीडिया' आधुनिक समाज की सोच ,जीवन शैली और संचार के तरीकों में तीव्र गति से महत्वपूर्ण परिवर्तन ला रहा है। इस डिजिटल युग में न्यू मीडिया संस्कृति ने निश्चित रूप से हमारी भाषा और साहित्य को भी प्रभावित किया है। खासकर कोविड संक्रमण काल में शिक्षा जगत भी इसके प्रभाव से अछूता नहीं रह सका। यहां नव माध्यम और उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया कुछ चुनिन्दा कहानीकारों की कहानियां भी जोड़ी गई है। इन कहानियों के माध्यम से आधुनिक संचार माध्यमों और उसके सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रभाव भी समझ प्राप्त होती है। भारत के कोने कोने तक न्यू मीडिया ने अपनी पैठ जमा ली है। पारिवारिक रिश्तों में भी इसकी पहलकदमी देखी जा सकती है। आज का युवा वर्ग न्यू मीडिया की चपेट में आ गया है। न्यू मीडिया ही उसकी दुनिया है और नाते- रिश्ते भी इसी के बदौलत ही जुड़े रह गए हैं। यहां तकनीकी प्रगति के कारण मानव की जीवन शैली और विचारों में आए बदलाव एवं नव माध्यम के युग में हिन्दी कहानियों की प्रासंगिकता को समझने की कोशिश की है।

डिजिटल युग की हिन्दी कहानियां जनसंचार के माध्यमों को कथानक बनाकर संचार के बदलते तरीकों और रिश्तों पर उसके प्रभाव को चित्रित करती हैं। इन कहानियों में आधुनिक तकनीक के कारण उत्पन्न होनेवाले सामाजिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक बदलाव का स्पष्ट चित्रण मिलता है। इन कहानियों के माध्यम से डिजिटल युग के जटिल संसार और उसके विभिन्न पहलुओं को समझने का अवसर मिलती है ।

संगीता तिवारी द्वारा लिखी गई 'चौथा पाया' कहानी मीडिया जगत के खोखलेपन को चित्रित करनेवाली एक सशक्त कहानी है। संगीता तिवारी मूल रूप से पत्रकार हैं। 'चौथा पाया' उनकी मीडिया से संबन्धित दूसरी प्रमुख कहानी है ।'चौथा पाया' कहानी में एक युवती अपने मामाजी के खिलाफ बलात्कार का केस दर्ज कराती है तो न्यूज़ चैनल में यह ब्रेकिंग न्यूज़ बनकर आता है। टी.आर.पी.बढ़ाने केलिए इससे जुड़ी कई हरकतें जैसे पोलिंग करवाना ,मनोचिकित्सक के साथ होनेवाले इंटरव्यू और खोजी पत्रकार द्वारा मामाजी को खोज निकालने की जांच का दृश्यों को उभारा गया है। इन सब बातों से चैनल की रेटिंग तो बढ़ती है लेकिन मामाजी और उसकी पत्नी आत्माहुति करते हैं। उनकी मृत्यु के बाद ही पता चलता है कि वे निर्दोष हैं। युवती ने झूठा केस दर्ज किया था क्योंकि वह एक लड़के से प्यार करती थी। शादी केलिए मामाजी ने अनुमति नहीं दी और अगर उस लड़के से शादी किया तो लड़की को अपनी संपत्ति न देने की धमकी भी दी। इसी कारण युवती ने मामा के विरुद्ध झूठा आरोप लगाया है। पत्रकार तो सच को सामने लानेवाले हैं लेकिन आज के दौर में न्यूज़ चैनल्स भी रेटिंग बढाने केलिए सच को अनदेखा करते हैं।

हमारे लोकतन्त्र का चौथा पाया है मीडिया। इस कहानी के द्वारा कहानीकार यह कहना चाहता है कि लोकतन्त्र का यह चौथा पाया हिल रहा है। यह कमजोर पड़ गया है। अंदर से यह खोखला हो गया है। "दरअसल इसका चौथा पाया हिल रहा है ...कमजोर पड़ गया है ...लकड़ी का है न ...दीमक लग गए हैं ...अंदर से खोखला हो गया है ...शायद इसलिए हिलने लगा है ...इसे बदलना पड़ेगा ...नहीं तो जल्द ही टेबल चरमराकर गिर पड़ेगा ..."१ न्यूज़ चैनल में दुनिया के खोखलेपन को हम हर दिन देखते रहते हैं। ब्रेकिंग न्यूज़ बनाने केलिए तथा अपने चैनल की रेटिंग बढ़ाने केलिए मीडियावाले न्यूज़ की सच्चाई को जांचे बिना टेलिकास्ट करते हैं जो व्यक्ति को खतरे में डालनेवाली बात है ।

'चौथा पाया' कहानी में संगीता तिवारी ने लोकतन्त्र के चौथे स्तम्भ कहे जानेवाले मीडिया की वर्तमान स्थिति पर गहन चिंता व्यक्त की है। लेखिका यह स्पष्ट होता है कि मीडिया ने झूठे आरोपों को ब्रेकिंग न्यूज़ बनाकर एक निर्दोष व्यक्ति के जीवन को तबाह कर दिया। यह मीडिया की उस ज़िम्मेदारी से भागने को दर्शाता है, जिसमें उसे सच सामने लाना चाहिए था ,लेकिन उसने रेटिंग केलिए झूठ को बढावा दिया। इस प्रकार 'चौथा पाया' कहानी मीडिया जगत की इस कटु सच्चाई को दर्शाती है कि पत्रकारिता का आदर्श लक्ष्य, यानी 'सच को सामने लाना' ,आज की पत्रकारिता में टी.आर.पी.की दौड़ में पीछे छूट गया है। मीडिया अंदर से खोखला हो गया है, जहां लाभ और रेटिंग ,नैतिकता और सत्य से अधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं। यह कहानी इस खोखलेपन को चित्रित करनेवाली एक सशक्त कहानी है।

राजेश बादल द्वारा लिखित 'उसका लौटना' एक पत्रकार के तनावपूर्ण जीवन को उजागर करता है। राजेश बादल एक वरिष्ठ पत्रकार भी है। पिछले 42 सालों से वे खबरों की दुनिया में कार्यरत हैं। 'उसका लौटना' राजेश जी के खबरों की दुनिया पर आधारित एक कहानी है। इसमें राजेश जी ने मालती नामक पत्रकार के जरिए मीडिया जगत और निजी जिंदगी का खुलासा किया है। मालती दस साल से नौकरी कर रही थी। उसने अपनी जिंदगी में परिवार से भी ज्यादा महत्व अपने काम को दिया। इसलिए उसके मन में हमेशा चैनल की चिन्ता रहती थी। लेकिन चैनल से इस्तीफा देने के बाद मालती खुशी- खुशी घर आती है ,अपने परिवार के साथ समय काटती है क्योंकि आजकल पत्रकारिता का अर्थ ही कुछ बदल गया है। इस्तीफा देकर घर आने पर उसे अहसास होता है कि काम के पीछे भागकर उसने अपनी जिंदगी में कितना कुछ खो दिया है। लेकिन एक वर्ष बाद उसके दोस्त अमिताभ के कहने पर वह फिर से एक चैनल जॉइन करती है। वहां भी टी.आर.पी.रेटिंग ही उसकेलिए तनाव पैदा करती है। "टी.आर.पी. भी शुरुआती हफ़्तों में तेज़ गति से बढ़ी । मैनेजमेंट इससे खुश था। तीन –चार महीने बाद टी.आर.पी. का बढ़ना रुक गया। ...मैनेजमेंट का दबाव बढ़ने लगा । नेटवर्क और डिस्ट्रिब्यूशन के लोगों की राय थी कि कुछ क्राइम शो ,लेटनाईट शो ,एडल्ट विषयों पर टोक –शो बढ़ाने चाहिए। मालती और अमिताभ दोनों ही उस बैठक में थे। मीटिंग के बाद मालती ने अमिताभ को देखा ,देखो ! मैंने कहा था ना। यहां भी वही शुरू हो जाएगा अब"२ मालती इससे समझौता करना नहीं चाहती। इसलिए वह इस तनावपूर्ण स्थिति से मुक्ति पाने की चाहत में इस्तीफा देने केलिए आती है तो चेयरमैन मालती को एक लिफाफा देते हुए यह सूचित करते हैं कि इस चैनल को आज से उसकी सेवाओं की ज़रूरत नहीं है। उसने जो चाहा था वही उसे मिलता है। उसकी मनचाही मुराद पूरी हो जाती है।

यह कहानी बाजारीकृत समाज में न्यूज़ चैनल भी बिकाऊ होने की सच्चाई और पत्रकार के तनावपूर्ण जीवन को चित्रित करने का एक सशक्त प्रयास है। कहानी का मुख्य विषय समकालीन मीडिया की विसंगतियां और व्यावसायिक जीवन का निजी जीवन पर प्रभाव है। लेखक ने मालती के चरित्र के माध्यम से यह दर्शाया है कि किस प्रकार टी.आर.पी. और बाजारवाद ने पत्रकारिता के नैतिक मूल्यों को खत्म कर दिया है। मालती का बार –बार लौटना और फिर मोहभंग होना यह दिखाता है कि इस प्रतिस्पर्धी माहौल में ईमानदार पत्रकार केलिए जगह सीमित होती जा रही है। कहानी का उद्देश्य बाजारीकृत न्यूज़ चैनलों की बिकाऊ प्रवृत्ति और पत्रकार के तनावग्रस्त जीवन

को सामने लाना है। इसप्रकार 'उसका लौटना' कहानी पत्रकारिता के बदलते अर्थ ,बाज़ार के दबाव में नैतिकता का ह्रास,और इस सबके बीच एक पत्रकार के संघर्ष और तनाव भरे जीवन को सफलता पूर्वक प्रस्तुत करती है।

'कौए' मीडिया पर आधारित गोविंद पंत राजू की एक छोटी सी कहानी है। गोविंद पंत राजू कई वर्ष चैनल की दुनिया में कार्यरत हैं। वे हिन्दी के वरिष्ठ पत्रकार भी है। 'कौए' कहानी के माध्यम से गोविंद पंत राजू जी ने यह जाहीर करने का प्रयास किया है कि 'सत्ता के सामने मीडिया भी चुप्पी साधे रहते हैं'। कहानी का प्रमुख पात्र हैं टेलिविजन पत्रकार विनोद। नेता जी अधिकार पर आने के बाद मेडियावालों को अपने साथ बनाए रखने केलिए एक प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलाते हैं। "सत्ता में कुछ दिन पूरे होने पर नेताजी ने मीडिया को बुलाया था। बहाना प्रेस कॉन्फ्रेंस का था ...सोचा आज अच्छा मौका है" ३ इस प्रेस कॉन्फ्रेंस का उद्देश्य तो मीडियावालों केलिए दावत देना होता है। कुछ मीडियावाले नेताजी के इस दावत में सहयोग देते हैं लेकिन विनोद दावत केलिए नहीं रुकता। अगले दिन विनोद प्रेस कॉन्फ्रेंस चैनल में आता है तो नेताजी और उनके अनुयायी भड़क जाते हैं क्योंकि यह तो नेता जी की कुर्सी को बचाने का मामला था। कहानी के अंत में देखा जा सकता है कि विनोद जैसे टेलिविजन पत्रकार के विरोध में कई सारे लोग खड़े हो जाते हैं और मीडिया का मुंह बंद कर देते हैं।

आज के ज़माने में भी ऐसा होता है। नेता लोग अपने स्वार्थ सिद्धि केलिए मीडिया का सहारा लेते हैं। मीडिया वही दर्शाते हैं जो नेता वर्ग लोगों के सामने दर्शाना चाहते हैं। यह तो लोकतन्त्र पर एक बहुत बड़ा प्रहार है। मीडिया भी अपना दायित्व भूलकर नेताओं की चापलूसी ही करते हैं। इससे लोकतंत्र की नींव में दरार पड़ सकती है। यहां कौए मीडियावालों का प्रतीक है और टेलिविजन पत्रकार विनोद सत्य और निष्पक्ष पत्रकारिता का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह कहानी दर्शाती है कि कैसे लोकतंत्र में सब कुछ अच्छा दिखाने की कोशिश की जाती है ,लेकिन असलियत इससे काफी अलग होती है। 'कौए' कहानी पूरी तरह से लोकतन्त्र के खोखलेपन और उसमें व्याप्त विसंगतियों को उजागर करती है। यह कहानी विशेष रूप से सत्ता और मीडिया के बीच के संबंधों पर केंन्द्रित है जो लोकतंत्र के मूल सिद्धांतों को कमज़ोर करते हैं।

वास्तव में 'कौए' कहानी यह स्पष्ट करती है कि भारतीय लोकतंत्र में सत्ता का डर और स्वार्थ इतना हावी हो चुका है कि मीडिया जैसा महत्वपूर्ण स्तम्भ भी सत्ता का गुलाम बन जाता है। जब मीडिया अपनी ज़िम्मेदारी भूलकर केवल चापलूसी करती है और सच्चाई को दबाती है ,तो यह लोकतन्त्र पर एक बहुत बड़ा प्रहार होता है और इसकी नींव में दरार पड़ने लगती है। कहानी इसी खोखलेपन को प्रतीकात्मक रूप में कौए के माध्यम से हमारे सामने लाती है।

कुल मिलाकर 'चौथा पाया','उसका लौटना','कौए' जैसी कहानियां वर्तमान पत्रकारिता की कटु सच्चाई को उजागर करती है और साथ ही पत्रकारिता के बदलते अर्थ ,बाज़ार के दबाव में नैतिकता का ह्रास और इस सबके बीच एक पत्रकार के संघर्ष और तनाव भरे जीवन को सफलतापूर्वक प्रस्तुत करती है। संक्षेप में ये कहानियां सामूहिक रूप से यह संदेश देती है कि नव माध्यम, विशेषकर न्यूज़ चैनल ,आज एक बाज़ारीकृत समाज और राजनीतिक स्वार्थ- सिद्धि का उपकरण बन गए हैं। वे टी. आर.पी. की दौड़ में सत्य ,नैतिकता और सामाजिक दायित्व को दरकिनार कर रहे हैं, जिसका गंभीर परिणाम समाज और लोकतन्त्र दोनों पर पड़ रहा है। मीडिया की इस संवेदनहीनता और खोखलेपन को चित्रित करने केलिए ये कहानियां पूर्ण रूप से सफल हुई है।

संदर्भ ग्रंथ

१.चोथा पाया –संगीता तिवारी

२.उसका लौटना –राजेश बादल

३. कौए –गोविंद पंत राजू

Email Id – jeenajohnpaul@gmail.com Contact No.9745372806

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 69-70
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

परिवर्तन की बात - शोषण का शिकार

डॉ. एस. लीलाकुमारी अम्मा
प्रोफसर हिन्दी विभाग,
श्रीलयम, आहिंगल पि ओ पिन . ६६५१०१

हिन्दी साहित्य के समानान्तर दलित साहित्य के जिन रचनाकारों ने अपनी कविताओं, कहानियों और आत्मकथाओं द्वारा एक चुनौती पेश की थी, उनमें सूरजपाल चौहान का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। उनके साहित्य में वास्तविकता, विद्रोह, चुनौती और एक नयी दुनिया बनाने की छटपटाहट स्पष्ट दिखायी देती है। छन्द और मात्रा के आधार पर कविता लिखने वाले संभवत् यह हिन्दी के पहले दलित कवि हैं। इनकी रचनाओं का अनुवाद अंग्रेज़ी, जर्मन एवं भारतीय भाषाओं में हो चुका है।

'परिवर्तन की बात' सूरजपाल चौहान की एक प्रसिद्ध कहानी है। इस कहानी मैं गाँव के अनपढ़ लोगों के साथ होनेवाले शोषण के बारे में चित्रण किया है। ये लोग अनपढ़ होने के कारण कुछ भी काम करने के लिए तैयार नहीं हैं। लेकिन अब परिस्थिति बदल चुकी है। ये छोटे काम करने के लिए तैयार नहीं होते। यहाँ पर न सिर्फ पुरुष की बातें कही गयी है बल्कि दलित नारी भी परिवर्तन की बात सोचती है और नारी शोषण के विरुद्ध संघर्ष करती है। इसलिए गांव के दलित औरतें किसना का साथ देते हैं।

सबेरे रघुठाकुर किसना के घर आते हैं। किसना चारपाई से उठे तो देखा। उसके सामने रघु ठाकुर खड़े थे। किसना कुछ कहने के पहले ही ठाकूर स्वयं बोला - किसना कल रात हमारी गाय मर गई। किसना ने पूछा- कैसे मर गई ? ठाकुर ने कहा- कैसे मरा पता नहीं चला। लगता है रात के ठंड से मरा होगा। किसना ने कहा तो इसके लिए मैं क्या करूँ ? बाकुर ने कहा उसे कहीं दूर जाकर फेंक आ।

ठाकुर हरप्रसाद ने कहा- 'रघु तुम्हारी गाय मर गई, मुझे बहुत दुःख हुआ है। गाय ने ठाकुर की कुएँ के पास ही दम लिया, ठाकुराइन कोस रही थी।। रात-भर गाय के शरीर की दुर्गंध चारों ओर फैलाने लगी। रघु ठाकुर को बेचैनी होने लगी थी। आजकल इन साले चमारों के नखरे ज्यादा ही हो गए हैं। हरिप्रसाद ने रघु की ओर देखते हुए कहा सभी की नजर उधर लगी हुई है. जहाँ किसना को आना है।

पूरी तरह से सुबह हो चुकी थी। लेकिन किसना का दूर-दूर तक पता नहीं था। रघु ठाकुर अपने बेटे रामेश्वर व हरिप्रसाद को लेकर किसना के घर चले। उसने लाल आँखें दिखाते हुए किसना से कहा "मैं स्वयं आकर गाय मर जाने की सूचना देकर गया। दो बार रामेश्वर ने भी आकर याद दिलायी. चल जल्दी करा देख कहीं ऐसा न हो कि गाय के मृत

शरीर से बदबू उठने लगे। ठाकुर मैं ने मेरे जानवर उठाना बंद कर दिया है। इसी बार किसना का स्वर तेजी थी। तुम्हीं तो मरे जानवर उठाने का काम करते आए हो। तुम नहीं करोगे तो कौन इस काम को ?"[1]

इसलिए ठाकुर हरिप्रसाद ने किसना के विरुद्ध कार्यवाही किया। दो घंटे के बाद पुलीस जीप किसना के घर जाकर रुकी। थानेदार ने किसना से पूछा- क्यों रे. तू गाय क्यों नहीं उठा रहा है? "थानेदार साहब हमने फैसला किया है कि हम, मरा जानवर को उठाने का काम नहीं करोगे।""[2] ठाकुर और किसना का झगडा होता है। बाद में थानेदार ने झगडे को शांत किया। गाँव में सब मर्द औरत छोटा काम करने के लिए तैयार नहीं थे।

"ठाकुर हम तुम्हारी मरी हुई गाय को उठाने के लिए तैयार हो । लेकिन मेरा भी कुछ शर्त है अगर आप मानने के लिए तैयार है तो बोल मानूगा, ठाकुर हम गाय को माता के रूप में स्वीकार करते हैं तो क्या अपनी मां के मरने के बाद हमें उसे उसी तरह उठाने दोगे जैसे हम मरी गाय को उठाते हैं।"[3]

रामेश्वर और हरिप्रसाद पैर पटकते हुए कहा-समय कैसे बदलता है हम देख लेंगे। ऐसा ने इसी धमकी देकर चले गए। गाँव के लोगों ने इसी तरह का कदम उठाएँगे तो उस गांव के चमार इस काम से छुटकारा पा सकते हैं और इज्जत की जिन्दगी जी सकते हैं। सुबह उसकी आँख खुली तो उसने देखा कि मोहल्ले के सभी लोगों की भीड बहुत निराश और हताश उसके घर के सामने खड़ी हैं। कोई भी कुछ नहीं बोल रहा है। किसना किसी से कुछ पूछे कि उससे पहले ही उसकी नजर कांटेदार तारों की बाड़ पर पड़े। वह देखकर दंग रह गया। इन सभी के आने-जाने का रास्ता ठाकुरों की जमीन से होकर गुजरता था। रघुठाकुर हाथ में लट्ठ लिए दूर खड़ा-खड़ा मुस्कान के साथ कह रहा था। तुम लोग चमारों की परिवर्तन के समय की बात करते हो, तुम लोग अब घर में ही बैठोगे । हमारे साथ पंगा लेने का नतीजा तुम अब भुगतोगें। तुम लोग जीवन में कैसे बढ़ जाओगे, हम भी देखेंगे। यहाँ पर भी दलित नारी के साथ शोषण होता है जब वह उसका विरोध करते हैं तो ऊंचे वर्ग के लोग उनके कमाने का जरिया को ही खतम कर देते हैं। नारी जब तक आगे नहीं आएगी तो उसके साथ जिन्दगी भर शोषण होता ही रहेगा।

निष्कर्ष : "परिवर्तन की बात" कहानी सूरजपाल चौहान की एक ऐसी कहानी है जिसमें दलित के उद्धार की बातें कही गयी है। दलित अब जागृत हो गए हैं। अपने ऊपर हो रहे अत्याचार का खुलकर विरोध कर रहे हैं। उच्च वर्ग कोपित जायज है। अब उन्हें भी लगने लगा है कि दलित जब सम्मान की जिन्दगी जीना चाहते हैं। उन पर अन्याय करना अपनी मौत बुलाने जैसा है। इस कहानी में स्पष्ट रूप से यह बताया गया है कि छोटे लोग कितना अत्याचार सहते हैं?

परिवर्तन समाज का एक अंग है। परिवर्तन के बिना लोग नयापन नहीं देख सकते हैं। ऐसे दलित लोग अपने जिन्दगी में कुछ बदलाव लाते हैं तो समाज उसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता है।

सन्दर्भ-ग्रंथ

1. डॉ. कुसुम वियोगी - समकालीन दलित कहानियाँ पृ:21
2. सूरज पाल चौहान - परिवर्तन की बात, पृ 37
3. वही 49

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 71-74
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय शिक्षण नीति-2020 में हिन्दी का महत्त्व

डॉ. शिल्पा राजेन्द्रसिंह कामलीया
अध्यक्षा, हिन्दी विभाग,
नलिनी-अरविंद एवं टी.वी. पटेल आर्ट्स कॉलेज, वल्लभ विद्यानगर-388120

प्रस्तावना

भारत एक बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक देश है। यहाँ भाषाएँ केवल संवाद का साधन नहीं बल्कि सांस्कृतिक धरोहर और सामाजिक एकता के सूत्रधार हैं। भाषाओं के इस महासागर में हिन्दी भाषा का विशेष स्थान है। हिन्दी न केवल भारतीय संविधान की राजभाषा है बल्कि यह देश की सबसे व्यापक रूप से बोली और समझी जाने वाली भाषा भी है। लगभग 60 करोड़ से अधिक लोग हिन्दी को अपनी मातृभाषा के रूप में प्रयोग करते हैं और यदि बोलने-समझने वालों की संख्या देखें तो यह आँकड़ा 100 करोड़ तक पहुँच जाता है। इस प्रकार हिन्दी भारत की सर्वाधिक जनभाषा है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (एनईपी 2020) ने भारत की भाषाई विविधता को सम्मान देते हुए यह सुनिश्चित किया है कि शिक्षा प्रणाली में मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं को प्राथमिकता दी जाए। इस संदर्भ में हिन्दी को विशेष महत्त्व इसलिए प्राप्त होता है क्योंकि यह पूरे देश में एक संपर्क भाषा के रूप में कार्य करती है। नई शिक्षा नीति में हिन्दी केवल पढ़ने-लिखने का विषय नहीं है बल्कि यह भारतीय संस्कृति, ज्ञान और परंपरा के संवाहक के रूप में प्रस्तुत की गई है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की रूपरेखा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को स्वतंत्र भारत की तीसरी शिक्षा नीति कहा जाता है। इससे पूर्व 1968 और 1986 (संशोधित रूप 1992) में शिक्षा नीतियाँ बनी थीं। 34 वर्षों बाद आई इस नई नीति ने शिक्षा प्रणाली में आमूलचूल परिवर्तन किए।

नीति का मुख्य उद्देश्य है—

1. शिक्षा को सर्वसुलभ, गुणवत्तापूर्ण और समावेशी बनाना।
2. भारत को "ज्ञान महाशक्ति" के रूप में स्थापित करना।
3. मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा का मुख्य माध्यम बनाना।

4. कौशल, नैतिकता और राष्ट्रीय मूल्यों पर आधारित शिक्षा प्रणाली का विकास करना।

इस रूपरेखा में भाषा शिक्षा को केंद्रीय स्थान दिया गया है। "त्रिभाषा सूत्र" को पुनः सुदृढ़ करते हुए विद्यार्थियों को मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा में प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करने की अनुशंसा की गई है। इसी संदर्भ में हिन्दी भाषा का महत्त्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि यह राष्ट्रीय स्तर पर संपर्क, संवाद और सांस्कृतिक एकता का आधार है।

शिक्षा में भाषा का स्थान

भाषा किसी भी समाज की आत्मा होती है। शिक्षा यदि भाषा की जड़ों से कट जाए तो उसका प्रभाव गहराई से नहीं पहुँच पाता। एनईपी 2020 ने यह मान्यता दी कि बच्चों को उनकी मातृभाषा या स्थानीय भाषा में शिक्षा देने से उनकी बौद्धिक क्षमता, समझ और रचनात्मकता बढ़ती है।

भारत जैसे बहुभाषिक देश में भाषा का प्रश्न संवेदनशील है। यदि केवल अंग्रेज़ी को ही शिक्षा का माध्यम बनाया जाए तो यह विद्यार्थियों के लिए कठिनाई उत्पन्न करता है। वहीं मातृभाषा या हिन्दी जैसी व्यापक भाषा में शिक्षा मिलने पर विद्यार्थी सहजता से ज्ञान ग्रहण कर सकता है। इस प्रकार हिन्दी शिक्षा का माध्यम बनकर न केवल ज्ञानार्जन की प्रक्रिया को सरल बनाती है बल्कि यह भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों से भी विद्यार्थियों को जोड़ती है।

हिन्दी भाषा की स्थिति

आज हिन्दी विश्व की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। संयुक्त राष्ट्र में इसे आधिकारिक भाषा बनाने के प्रयास लगातार हो रहे हैं। भारत में यह उत्तरी, मध्य और पश्चिमी राज्यों की प्रमुख भाषा है, जबकि दक्षिण और पूर्वी भारत में भी यह व्यापक रूप से समझी और बोली जाती है।

संविधान ने हिन्दी को भारत की राजभाषा का दर्जा दिया है और देवनागरी लिपि को उसकी लिपि के रूप में मान्यता प्रदान की है। यद्यपि संविधान ने अंग्रेज़ी को भी सहायक भाषा के रूप में रखा है, परंतु व्यवहारिक दृष्टि से हिन्दी पूरे भारत में संपर्क भाषा की भूमिका निभाती है।

नई शिक्षा नीति 2020 ने हिन्दी को इस दृष्टि से महत्त्व दिया है कि यह न केवल शैक्षिक संवाद का माध्यम बने बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक विज्ञान के बीच सेतु का कार्य भी करे।

एनईपी 2020 में हिन्दी का महत्त्व

एनईपी 2020 में हिन्दी का महत्त्व अनेक स्तरों पर स्पष्ट होता है—

1. प्राथमिक शिक्षा का माध्यम – नीति के अनुसार पाँचवीं कक्षा तक (और जहाँ संभव हो वहाँ आठवीं तक) शिक्षा मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा में दी जाएगी। हिन्दी भाषी राज्यों में यह कार्य सहजता से हिन्दी के माध्यम से किया जाएगा।
2. त्रिभाषा सूत्र – नीति ने यह सुनिश्चित किया है कि विद्यार्थी तीन भाषाएँ सीखें, जिनमें से एक हिन्दी भी हो सकती है। यह विद्यार्थियों को बहुभाषिक बनाने के साथ-साथ हिन्दी के प्रसार को भी सुनिश्चित करेगा।
3. भारतीय भाषाओं का संवर्द्धन – नीति ने स्पष्ट कहा है कि हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं में उच्च-गुणवत्तापूर्ण अध्ययन-सामग्री तैयार की जाएगी। इससे हिन्दी माध्यम में उपलब्ध पुस्तकों, शोध कार्यों और डिजिटल सामग्री का विस्तार होगा।
4. प्रौद्योगिकी और अनुवाद – हिन्दी सहित भारतीय भाषाओं में ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म, डिजिटल पुस्तकालय और तकनीकी अनुवाद केंद्र स्थापित करने की बात कही गई है। इससे विज्ञान, तकनीकी और शोध क्षेत्रों में हिन्दी का स्थान सुदृढ़ होगा।

बहुभाषिकता और मातृभाषा की भूमिका

एनईपी 2020 का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है—बहुभाषिकता को प्रोत्साहन। नीति मानती है कि बहुभाषिक व्यक्ति की संज्ञानात्मक क्षमता अधिक होती है। इस परिप्रेक्ष्य में हिन्दी का स्थान एक "लिंक लैंग्वेज" के रूप में है।

यदि विद्यार्थी अपनी मातृभाषा के साथ हिन्दी और अंग्रेज़ी भी सीखता है तो उसके पास स्थानीय, राष्ट्रीय और वैश्विक—तीनों स्तरों पर संवाद करने की क्षमता विकसित हो जाती है। हिन्दी के माध्यम से वह भारतीय संस्कृति और समाज से जुड़ता है, जबकि अंग्रेज़ी उसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अवसर प्रदान करती है।

हिन्दी के माध्यम से भारतीय संस्कृति का संरक्षण

हिन्दी केवल एक भाषा नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति की वाहक है। भारतीय साहित्य, दर्शन, इतिहास और लोकपरंपराओं का बड़ा हिस्सा हिन्दी में उपलब्ध है। यदि शिक्षा हिन्दी में दी जाती है तो विद्यार्थी अपनी जड़ों से जुड़ा रहता है।

एनईपी 2020 ने इस तथ्य को समझते हुए हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं में साहित्य, कला, संगीत और संस्कृति से संबंधित पाठ्यक्रमों को प्रोत्साहित करने की बात कही है। इससे विद्यार्थियों में राष्ट्रीय गौरव और सांस्कृतिक चेतना का विकास होगा।

तकनीकी और उच्च शिक्षा में हिन्दी की भूमिका

आज तक तकनीकी और उच्च शिक्षा का अधिकांश भाग अंग्रेज़ी माध्यम में रहा है। परिणामस्वरूप ग्रामीण और हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों को कठिनाई का सामना करना पड़ता था।

एनईपी 2020 ने यह सुनिश्चित किया है कि इंजीनियरिंग, चिकित्सा, कानून और अन्य उच्च शिक्षा संस्थानों में भी हिन्दी सहित भारतीय भाषाओं में शिक्षा उपलब्ध कराई जाएगी। इससे उच्च शिक्षा में हिन्दी का प्रयोग बढ़ेगा और अधिक विद्यार्थी सहजता से पढ़ाई कर पाएँगे।

हिन्दी और रोजगार के अवसर

भाषा केवल शिक्षा का माध्यम नहीं, बल्कि रोजगार का साधन भी है। हिन्दी के प्रसार से अनुवाद, पत्रकारिता, प्रकाशन, प्रशासन, सूचना प्रौद्योगिकी, पर्यटन और सांस्कृतिक उद्योगों में अवसर बढ़ेंगे।

एनईपी 2020 ने कौशल आधारित शिक्षा पर बल दिया है। यदि यह कौशल हिन्दी माध्यम से सिखाया जाए तो अधिक से अधिक विद्यार्थी लाभान्वित होंगे और रोजगार के अवसर प्राप्त कर सकेंगे।

नीति के क्रियान्वयन में चुनौतियाँ

यद्यपि एनईपी 2020 ने हिन्दी को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है, परंतु इसके क्रियान्वयन में कई चुनौतियाँ हैं—

1. उच्च शिक्षा के स्तर पर गुणवत्तापूर्ण हिन्दी सामग्री का अभाव।
2. अंग्रेज़ी की बढ़ती वैश्विक उपयोगिता के कारण अभिभावकों का झुकाव अंग्रेज़ी माध्यम की ओर।
3. दक्षिण भारत और पूर्वोत्तर भारत में हिन्दी को लेकर राजनीतिक-सामाजिक संवेदनशीलता।
4. शिक्षकों का प्रशिक्षण और पाठ्यपुस्तकों की तैयारी में विलंब।

इन चुनौतियों का समाधान समन्वय और दीर्घकालिक योजना से ही संभव है।

हिन्दी का वैश्विक परिप्रेक्ष्य

आज विश्व स्तर पर हिन्दी की पहचान बढ़ रही है। अमेरिका, कनाडा, इंग्लैंड, खाड़ी देशों और फ़िजी, मॉरीशस, सूरीनाम जैसे देशों में हिन्दी भाषियों की बड़ी संख्या है। वैश्वीकरण के युग में हिन्दी साहित्य, फिल्म, संगीत और डिजिटल मीडिया के माध्यम से हिन्दी विश्व-पटल पर स्थापित हो रही है।

एनईपी 2020 इस अवसर का उपयोग कर सकती है। यदि शिक्षा के माध्यम से हिन्दी को सुदृढ़ किया जाए तो यह भारत की "सॉफ्ट पावर" को भी बढ़ाएगी और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी की स्थिति को और मजबूत करेगी।

उपसंहार

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय शिक्षा प्रणाली में एक ऐतिहासिक परिवर्तन है। इस नीति ने हिन्दी को केवल भाषा नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति, एकता और प्रगति का वाहक मानकर उसका महत्त्व स्थापित किया है। मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं के साथ-साथ हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाना विद्यार्थियों के लिए बौद्धिक, सांस्कृतिक और व्यावसायिक दृष्टि से लाभकारी होगा।

हिन्दी, भारतीय समाज को एक सूत्र में बाँधने वाली भाषा है। नई शिक्षा नीति ने इसे वह स्थान दिया है, जिसकी यह हकदार थी। यदि इस नीति का प्रभावी क्रियान्वयन हो तो हिन्दी न केवल भारत की शिक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ करेगी बल्कि भारत को वैश्विक स्तर पर ज्ञान महाशक्ति बनाने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

संदर्भसूची

1. "राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020" – भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय (अधिकृत दस्तावेज़)
2. "भारतीय शिक्षा व्यवस्था और नई शिक्षा नीति" – डॉ. रामेश्वर प्रसाद त्रिपाठी
3. "भारतीय शिक्षा की समस्याएँ और नीतियाँ" – एस.एन. मुखर्जी
4. "भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति: एक आलोचनात्मक अध्ययन" – प्रो. एम.के. यादव
5. "हिन्दी और भारतीय संस्कृति" – डॉ. नामवर सिंह
6. "हिन्दी भाषा और साहित्य का स्वरूप" – डॉ. रामविलास शर्मा
7. "हिन्दी साहित्य और समाज" – डॉ. नगेन्द्र
8. "भारतीय भाषाएँ और शिक्षा" – प्रो. गोविन्द झा
9. "हिन्दी भाषा का महत्व और भविष्य" – डॉ. कुंवरपाल सिंह
10. "National Education Policy 2020: Transforming Indian Education System" – Ministry of Education, Govt. of India
11. "Language Policy and Education in India" – प्रो. बी. राजेश कुमार
12. "Indian Education System and NEP 2020" – डॉ. अरुण कुमार झा

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 75-78
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ग्रामीण क्षेत्रों में लैंगिक असमानता को कम करने में शिक्षा की भूमिका

Dr.Deepa Bharti,
Department of Home Science,
Purnea University Purnea, BIHAR 854301.

सार

शिक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में लैंगिक असमानता को कम करने का एक सशक्त माध्यम है, जहाँ सांस्कृतिक और आर्थिक बाधाएँ महिलाओं और लड़कियों के लिए अवसरों को सीमित करती हैं। यह साक्षरता, कौशल और सशक्तिकरण को बढ़ावा देती है, जिससे वे पारंपरिक भूमिकाओं को चुनौती दे पाती हैं, नौकरियों तक पहुँच पाती हैं और निर्णय लेने में भाग ले पाती हैं। शिक्षा स्वास्थ्य में भी सुधार लाती है, बाल विवाह में देरी करती है और भावी पीढ़ियों को लाभान्वित करती है। गरीबी और खराब बुनियादी ढाँचे जैसी चुनौतियों के बावजूद, छात्रवृत्ति, आवासीय विद्यालय और डिजिटल शिक्षा जैसी पहलों ने सकारात्मक परिणाम दिखाए हैं। ग्रामीण समुदायों में समानता और समावेशिता प्राप्त करने के लिए पहुँच और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का विस्तार अत्यंत महत्वपूर्ण है।

की-वर्ड; शिक्षा, लैंगिक असमानता, ग्रामीण विकास, सशक्तिकरण, महिला अधिकार

प्रस्तावना

लैंगिक असमानता दुनिया भर के ग्रामीण समाजों, खासकर विकासशील देशों में, सबसे गंभीर चुनौतियों में से एक बनी हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और लड़कियों को अक्सर कई तरह की असुविधाओं का सामना करना पड़ता है, जिनमें स्वास्थ्य सेवा, रोज़गार के अवसर, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और सबसे महत्वपूर्ण, शिक्षा तक सीमित पहुँच शामिल है। शिक्षा न केवल एक मौलिक मानव अधिकार है, सशक्तिकरण और समानता के लिए एक महत्वपूर्ण साधन भी है। ग्रामीण परिवेश में, जहाँ पितृसत्तात्मक मानदंड और सामाजिक-आर्थिक बाधाएँ अधिक कठोर होती हैं, लैंगिक असमानता को कम करने में शिक्षा की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। महिलाओं और लड़कियों को ज्ञान, कौशल और आत्मविश्वास से लैस करके, शिक्षा सामाजिक गतिशीलता, वित्तीय स्वतंत्रता और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में सक्रिय भागीदारी के मार्ग खोलती है।

यह लेख सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आयामों में अपनी परिवर्तनकारी भूमिका की जाँच करके यह पता लगाता है कि शिक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में लैंगिक असमानता को कैसे कम कर सकती है। यह ग्रामीण परिवेश में लड़कियों की शिक्षा में आने वाली बाधाओं पर भी चर्चा करता है और उन नीतियों और पहलों पर प्रकाश डालता है जो शिक्षा को लैंगिक न्याय के लिए एक प्रभावी साधन बना सकती हैं।

उद्देश्य:

1. शिक्षा के क्षेत्र में लैंगिक असमानता के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारणों का विश्लेषण करना।

2. ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में लैंगिक असमानता के स्वरूप और स्तर की तुलना करना।

सशक्तिकरण के साधन के रूप में शिक्षा

शिक्षा महिलाओं को उन अवसरों तक पहुँचने में सक्षम बनाकर उन्हें सशक्त बनाती है जिनसे पहले उन्हें वंचित रखा गया था। जब महिलाएँ शिक्षित होती हैं, तो उनके निम्नलिखित कार्य करने की संभावना अधिक होती है:

- गरीबी के चक्र को तोड़ना: शिक्षा महिलाओं के रोज़गार पाने या लघु-स्तरीय उद्यम शुरू करने की संभावनाओं को बढ़ाती है, जिससे घरेलू आय में वृद्धि होती है और जीवन स्तर में सुधार होता है।
- सूचित निर्णय लेना: शिक्षित महिलाएँ स्वास्थ्य, परिवार नियोजन और बच्चों के पालन-पोषण के तरीकों के बारे में सूचित विकल्प बनाने में बेहतर रूप से सक्षम होती हैं, जिससे परिवार स्वस्थ होते हैं और मातृ एवं शिशु मृत्यु दर में कमी आती है।
- पितृसत्तात्मक मानदंडों को चुनौती देना: ज्ञान महिलाओं को बाल विवाह, दहेज और लिंग-आधारित हिंसा जैसी लैंगिक असमानता को बढ़ावा देने वाली सांस्कृतिक प्रथाओं पर सवाल उठाने और उनका विरोध करने का आत्मविश्वास प्रदान करता है।
- शासन में भागीदारी: जिन महिलाओं की शिक्षा तक पहुँच है, उनके पंचायती राज संस्थाओं जैसे स्थानीय शासन निकायों में भाग लेने की संभावना अधिक होती है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में निर्णय लेने की प्रक्रिया प्रभावित होती है।

शिक्षा का सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव

ग्रामीण क्षेत्रों में, सांस्कृतिक परंपराएँ अक्सर इस धारणा को पुष्ट करती हैं कि महिलाओं की भूमिकाएँ घरेलू कर्तव्यों तक ही सीमित हैं। शिक्षा दृष्टिकोण को नया रूप देकर और लैंगिक धारणाओं को बदलकर इस चक्र को बाधित करती है।

- लड़कियों के प्रति बदलते दृष्टिकोण: जब परिवार लड़कियों की शिक्षा के ठोस लाभों को देखते हैं—जैसे बेहतर रोज़गार के अवसर और घरेलू आय में योगदान—तो वे लड़कियों की स्कूली शिक्षा में निवेश करने की अधिक संभावना रखते हैं।
- बाल विवाह में कमी: जो लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त करती हैं, उनकी कम उम्र में शादी होने की संभावना कम होती है, जिससे स्वास्थ्य जोखिम कम होते हैं और उन्हें व्यक्तिगत विकास के लिए आगे बढ़ने का अवसर मिलता है।
- अंतर-पीढ़ीगत लाभ: शिक्षित माताएँ अपनी बेटियों सहित अपने बच्चों को स्कूल भेजने की अधिक संभावना रखती हैं, जिससे निरक्षरता और असमानता का अंतर-पीढ़ीगत चक्र टूट जाता है।

शिक्षा के माध्यम से आर्थिक सशक्तिकरण

लैंगिक असमानता का आर्थिक आयाम ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रूप से स्पष्ट है, जहाँ महिलाओं के काम को अक्सर मान्यता नहीं मिलती या उन्हें भुगतान नहीं किया जाता। शिक्षा महिलाओं के लिए कृषि के भीतर और बाहर, अर्थव्यवस्था के विविध क्षेत्रों में प्रवेश के अवसर खोलती है।

रोज़गार तक पहुँच: शिक्षा महिलाओं को ऐसे कौशल प्रदान करती है जो उन्हें औपचारिक और अनौपचारिक, दोनों क्षेत्रों में रोज़गार योग्य बनाते हैं। बुनियादी साक्षरता और संख्यात्मकता भी महिलाओं को बाज़ारों, सहकारी समितियों और छोटे व्यवसायों में अधिक प्रभावी ढंग से भाग लेने में मदद कर सकती है।

उद्यमिता: व्यावसायिक प्रशिक्षण और शिक्षा के साथ, ग्रामीण महिलाएँ हस्तशिल्प, सिलाई या खाद्य प्रसंस्करण जैसे छोटे उद्यम शुरू कर सकती हैं, जिससे व्यक्तिगत आय और स्थानीय आर्थिक विकास दोनों में योगदान मिलता है।

वेतन अंतर में कमी: शिक्षित महिलाओं को बेहतर वेतन वाली नौकरियाँ मिलने की संभावना अधिक होती है, जिससे पुरुषों और महिलाओं के बीच वेतन असमानता कम करने में मदद मिलती है।

शिक्षण संस्थानों में लैंगिक भेदभाव के उदाहरण

पाठ्यक्रम और शिक्षण सामग्री में भेदभाव

अनेकों शोधों में यह पाया गया है कि पाठ्यक्रम और शिक्षण सामग्री में भी लैंगिक पूर्वाग्रह मौजूद है। पुस्तकें अक्सर पुरुष प्रधान कथानक, नायकों और पुरुष केंद्रित इतिहास प्रस्तुत करती हैं, जबकि महिलाओं को सीमित और परंपरागत भूमिकाओं में दिखाया जाता है। इस प्रकार की शिक्षण सामग्री लड़कियों में आत्म-सम्मान की कमी और सीमित आकांक्षाएं उत्पन्न करती हैं (नागर, 2015)

शिक्षक व्यवहार और पूर्वाग्रह

शिक्षकों का व्यवहार भी शिक्षा में लैंगिक असमानता को प्रभावित करता है। शिक्षक लड़कियों को कम सक्रिय, कम बुद्धिमान, या अधिक घरेलू स्वभाव वाला मान सकते हैं। इसके कारण लड़कियों का मनोबल गिरता है और वे अपनी योग्यता के अनुसार प्रदर्शन नहीं कर पातीं (वर्मा, 2016)। इसके अलावा, शिक्षक लड़कों को अधिक प्रोत्साहित करते हैं, जिससे शिक्षा में असमानता बढ़ती है।

स्कूल की संरचनात्मक बाधाएं

स्कूल की संरचना भी लैंगिक असमानता को बढ़ावा देती है। लड़कियों के लिए अलग शौचालय, सुरक्षित परिवहन व्यवस्था, और समुचित छात्रावास की कमी उनके स्कूल छोड़ने का कारण बनती है। कई ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियों के लिए स्कूल दूर होने के कारण वे नियमित रूप से उपस्थित नहीं हो पातीं (पाण्डेय, 2018)

सरकारों और गैर-सरकारी संगठनों ने लैंगिक असमानता को पाटने में शिक्षा के महत्व को पहचाना है और विभिन्न योजनाओं और पहलों को लागू किया है।

- बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ: भारत में एक प्रमुख अभियान जिसका उद्देश्य सामाजिक दृष्टिकोण बदलना और बालिका शिक्षा को बढ़ावा देना है।
- कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय (केजीबीवी): ग्रामीण क्षेत्रों में हाशिए पर रहने वाले समुदायों की लड़कियों के लिए आवासीय विद्यालय।
- मध्याह्न भोजन योजना: परिवारों को मुफ्त भोजन प्रदान करके बच्चों को स्कूल भेजने के लिए प्रोत्साहित करती है, जिससे भूख और उपस्थिति दोनों की समस्याओं का समाधान होता है।
- छात्रवृत्ति कार्यक्रम और सशर्त नकद हस्तांतरण: लड़कियों की शिक्षा के लिए वित्तीय प्रोत्साहन परिवारों पर आर्थिक बोझ कम करते हैं।
- समुदाय-आधारित हस्तक्षेप: ग्रामीण क्षेत्रों में गैर-सरकारी संगठन और स्वयं सहायता समूह समुदायों को संगठित करने, जागरूकता बढ़ाने और अनौपचारिक शिक्षा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

<u>ग्रामीण और शहरी संदर्भ में लैंगिक असमानता</u>

ग्रामीण संदर्भ में लैंगिक असमानता ;

ग्रामीण भारत में लैंगिक असमानता के कारण अनेक हैं। घरेलू जिम्मेदारियां, बाल विवाह, पैतृक संपत्ति में महिलाओं की हिस्सेदारी न होना, और आर्थिक सीमितताएं लड़कियों की शिक्षा में सबसे बड़ी बाधाएं हैं। तिवारी (2019) के अनुसार, ग्रामीण परिवारों में लड़कियों को प्रायः प्राथमिक शिक्षा तक सीमित रखा जाता है, जबकि लड़कों को माध्यमिक या उच्च शिक्षा तक पहुंचाने का प्रयास किया जाता है। सुरक्षा की चिंताएं भी लड़कियों को

स्कूल भेजने में बाधा उत्पन्न करती हैं। ग्रामीण इलाकों में सामाजिक रूढ़िवाद और पितृसत्तात्मक सोच शिक्षा में लैंगिक भेदभाव को और बढ़ावा देती है।

शहरी संदर्भ में लैंगिक असमानता ;

शहरी क्षेत्रों में संसाधनों की बेहतर उपलब्धता के बावजूद, लैंगिक असमानता विभिन्न सामाजिक-आर्थिक कारणों से बनी रहती है। शहरी क्षेत्रों में लड़कियों की शिक्षा में वृद्धि हुई है, लेकिन उनकी शिक्षा के प्रति परिवार और समाज की अपेक्षाएं अधिक सुरक्षित और सीमित होती हैं। उदाहरण स्वरूप, संजय कुमार (2020) ने शहरी युवा महिलाओं के नेतृत्व में चल रहे सामाजिक आंदोलनों में शिक्षा के प्रति बढ़ती जागरूकता और चुनौतियों को रेखांकित किया है। शहरी लड़की की शिक्षा पर परिवार की सामाजिक प्रतिष्ठा, शादी और करियर के बीच संतुलन बनाने की चिंता प्रभाव डालती है।

निष्कर्ष ;

शिक्षा केवल साक्षरता का साधन नहीं है, सामाजिक परिवर्तन का उत्प्रेरक भी है। ग्रामीण क्षेत्रों में, जहाँ लैंगिक असमानता गहरी जड़ें जमाए हुए है, शिक्षा भेदभावपूर्ण प्रथाओं को समाप्त करने, महिलाओं को सशक्त बनाने और समान अवसर पैदा करने के एक सशक्त माध्यम के रूप में कार्य करती है। एक शिक्षित लड़की न केवल अपने परिवार के लिए एक धरोहर होती है, सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय प्रगति की प्रेरक भी होती है। शिक्षा में निवेश करके, समाज गरीबी के चक्र को तोड़ सकता है, स्वास्थ्य और कल्याण में सुधार ला सकता है और समावेशी अर्थव्यवस्थाओं का निर्माण कर सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में लैंगिक असमानता को कम करने के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है—शैक्षणिक बुनियादी ढाँचे को मज़बूत करना, पितृसत्तात्मक मानदंडों को चुनौती देना, वित्तीय सहायता प्रदान करना और प्रौद्योगिकी का लाभ उठाना।

संदर्भ ;

1. अरोड़ा, एस. (2018). भारत में लैंगिक असमानता और शिक्षा. नई दिल्ली: सामाजिक विज्ञान प्रकाशन।
2. चौहान, आर.एस. (2017). ग्रामीण शिक्षा में लैंगिक भेदभाव. सामाजिक समीक्षा, 23(4), 45-601
3. दत्त, वि. (2019). शहरी और ग्रामीण भारत में लड़कियों की शिक्षा: एक तुलनात्मक अध्ययन. शिक्षा और समाज, 12(2), 102-1191
4. सिंह, रा. (2020). शिक्षा नीति और लैंगिक समानता. राष्ट्रीय शिक्षा जर्नल, 15(1), 23-371
5. शर्मा, कि. (2016). सामाजिक मान्यताएं और शिक्षा में लैंगिक असमानता. सामाजिक विज्ञान वार्षिक, 9(3), 78-941
6. अग्रवाल, पी. (2015). लैंगिक असमानताः भारत में शिक्षा के क्षेत्र में चुनौतियां. सामाजिक अध्ययन पत्रिका, 8(1), 55-721
7. कौर, ज. (2018). लड़कियों की शिक्षा में सरकारी नीतियों की भूमिका. नीति और समाज, 11(2), 88-1011
8. वर्मा, एस. (2017). शिक्षा में लैंगिक भेदभावः एक सामाजिक विश्लेषण. भारत समाजशास्त्र, 19 (4), 110-1301
9. मिश्रा, ए. (2021). बाल विवाह और शिक्षाः ग्रामीण भारत में समस्या और समाधान. सामाजिक चेतना, 7(3), 15-291
10. पटेल, एन. (2019). शिक्षा में लैंगिक समानता के लिए रणनीतियां. शिक्षा नीति समीक्षा, 14 (2), 40-561

Mob. – 8873525662 E-Mail – drdeepa4bharti@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 79-82
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सन्तों के देश में बाज़ारीकरण का आधार शब्द शक्ति व्यापार

डॉ. अश्विनी रोलन
संविदा अतिथि व्याख्याता,
राजकीय महाविद्यालय कुचामन सिटी

भारत में आदिकाल से संतों सिद्धों एवं श्रमणों की परंपरा रही है |बाहर से आने वाली अतिथि बनकर रहने वाली शरणार्थी शक यवन जातीयों ने शब्द शक्ति व्यापार का वणिज किया है| ये पणी जातियाँ यहाँ समुद्री मार्ग, से आकर भारत में रहने लगी और हीरे, पन्नों ,जवाहरातों ,मूंगे एवं मोती हाथी दांत, सूती कपड़े आदि का व्यापार करने लगी। जय काल मैं धूत-क्रीड़ा अर्थात जुआ खेलकर यहां के भोले-भाले नाग राजाओं को हराकर उनकी पत्नी एवं परिवार सहित को छीनकर जीत लिया सर्वंगी साधक बाबा श्यामाराम ने अपने भजन के माध्यम से समझाते हुए कहा है-

'भाई अब शीतल नगरी संतोषी राजा है संतोषी
सत पुरुष रा तपे भेष में ज्ञान सत आधार। [1]

(१) सिद्ध साधक रूप में नगरी का नाग राजा संतोषी शील एवं सदाचारी है वह सत् पुरुष है उसका जीवन का आधार ज्ञान है अर्थात् वह निर्गुण ज्ञान का उपासक उसके साथ बाहर से आने वाली जातीयों ने शब्द शक्ति द्वारा व्यापार किया गया ।शब्द शक्ति तीन प्रकार की होती हैं - 1.अभिधा, 2.लक्षणा 3. व्यंजना। श्यामाराम जी सर्वंगी संत ने अपने भजन के माध्यम से कहा है कि शब्द को उन्होंने सेठ तथा सूरत को सेठानी कहकर संबोधित करते हुए संसार को ठगने का व्यापार शब्द शक्ति के माध्यम से किया। क्योंकि कोई सुरत से कोई सुरती से उच्च और निम्न होने का भाव रखते है। जो व्यक्ति जिस रूप का होता है उसके अनुसार व्यापार करता है कोई मीठा बोलकर अपनी वस्तु का व्यापार करता है जो शब्द जाल में फंस जाता वह उस संसार में सब कुछ लूटा देता सन्त श्यामाराम जी मावा लिखते हैं -

'शब्द सेठ सुरत सेठानी,दोनों मिलकर किया बाजार।
प्रेम हाट लगी जुगती से हिरा पन्ना के व्यापार'।। [2]

बौद्धों के अष्टांगिक मार्ग पर महायानी पणि जातियों ने अधिकार करके उन्होंने संतोषी दास बना दिया सिद्ध साधक 1. सम्यक दृष्टि 2. सम्यक संकल्प 3. सम्यक वाणी 4. सम्यक कर्म 5. सम्यक आजीविका 6. सम्यक व्यापार 7. सम्यक स्मृति एवं 8.सम्यक समाधि। यह ज्ञान मार्ग दृष्टि संकल्प नैतिक आचरण वाक्, कर्म एवम् आजीविका और

मानसिक अनुशासन जिसमें व्यापार, स्मृति तथा समाधि पर आधारित अष्टांगिक मार्ग पर चलकर अपनी जीवनचर्या चलाते थे किंतु महायानी सुवर्ण जातियाँ अष्टकमल की साधना पर अपनी छद्म व्यापार से सब कुछ लूट लिया |

'अब अष्ट कमल पर सतगुरु साहेब सुर सेती सुनार'। [3]

अष्टांगिक साधना पर तथाकथित स्वर्ण जातियों का कब्जा हो गया| तथा बौद्ध धर्म को नष्ट करके महायानी और वज्रयानी छद्म बौद्ध बन गए योग मत के संतों को उन्होंने दास बना लिया तथा बौद्ध धर्म का पतन कर दिया | जिन्हें दास बनाया गया वे संत आदिकाल में हीनयान बौद्ध या दास नाम से प्रसिद्ध हुए उन्हीं संतों में बाबा श्यामाराम अपने भजन के माध्यम से समझाते हुए संतों या दासों से कहते हैं-

'धर्म बीज सतगुरु शरणे करते सागर पार'| [4]

अर्थात इस संसार को तुम सतरंण करना चाहते हो तो बौद्ध के धम्म ज्ञान की शरण में जाकर ही उसे प्राप्त कर सकते हैं वह धम्म क्या है बौद्ध का धम्म ज्ञान क्या है ? संतों के भजनों में वह निर्गुण ज्ञान एवं विज्ञान का प्राचीन ज्ञान है जो वेदों उपनिषदों एवं वेदांतों में भी बिखरा मिलते हैं धम्म या धर्म क्या है बुद्ध के धम्म पद में उसका विवेचन मिलता है यह जीवन जीने की पद्धति एवं आध्यात्मिक परंपरा है जिसके मूल में अष्टांगिक मार्ग और पंचशील के नैतिक सिद्धांत है जिसमें दुःख से मुक्ति के मार्ग पंचशील में 1.सत्य बोलना 2. चोरी 3. ब्रह्मचर्य 4. निरामिष 5. अहिंसा , बाबा श्यामाराम मावा कहते हैं इस प्रकार से जो साधक धर्म पंचशीलों से अपने जीवन व्यापार करता है वह हंस बनकर मुक्ता {मोती }चुगता है

'ऐसे संत हंस भया प्रगट मोती चुगे विचार'| [5]

अगर कोई संत साधक उक्त भजन की महिमा से इस गुरु तत्व के शब्द महिमा से जीवन यापन करेगा तो उसको कोई थाह नहीं ले सकेगा इसकी महिमा तीनों लोकों में होगी –

'श्याम सतगुरु की नगरी में ,महिमा अगम अपार
संत का देख्या विचार '| [6]

संसार में सूरत एवं सुरती तथा निरत या निरति द्वारा जीवन व्यापार चलता है यह वाणी का व्यापार शीतल एवं शील पर आधारित होता है संत कबीर कहते हैं-

'ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोए,
औरन को शीतल करे आपहुं शीतल होए' ॥ [7]

जहां एक और शील एवं सदाचार की बात बौद्ध धर्म में संतों की परंपरा में थी वह आज बाजारीकरण के युग में राम नाम की लूट धर्म की लूट बन गई है

'राम नाम की लूट है लूट सके तो लूट
अंतकाल पछताएगा प्राण जाएंगे छूट' |

एक समय दास या राम नाम से आश्रय लेकर राम मोहल्ला या गोपाल या ग्वाला मोहल्ला से सामान्य जन का वाचक राम शब्द था जो केवल राम- राम नाम से जनप्रिय अभिवादन था आज जय श्री राम क्रांति का वाचक बन गया है राम राम अभिवादन मात्र दास व्यक्तियों के नाम के साथ ही लगता है| उच्च जातियों के नाम के आगे कुमार लाल सिंह आदि लगते हैं तथा खेताराम, मोहन राम, दीपाराम, बुद्धाराम आदि इस प्रकार राम नाम की लूट में धर्म युद्ध छेड़ दिया यही शब्द की शक्ति है| इस बाज़ारीकरण या वोट की राजनीति से आज भी कबीर दास उदास है वह कहता है तो हिंदू मुस्लिम क्यों लड़ते हैं ? मैं तुम्हारी खैरियत चाहता हूं वह बाजार के व्यापारी से कहता है।

"कबीरा खड़ा बाज़ार में, मांगे सबकी खैर
ना काहू से दोस्ती, न काहू से बैर ।।"

कबीर आज के बाज़ारीकरण व्यवस्था से त्रस्त था कहा कि राम नाम का सौदा मत करो व्यापार मत करो लेकिन यह सौदागर जाति ने उसकी एक नहीं सुनी उन्होंने आपसी प्रेम एवं भाईचारे की शिक्षा को समाप्त कर दिया किंतु आज ट्रंप के टैरिफ की मार कबीर के उपदेशों को न मानने के कारण झेल रही है| जहां एक और राम नाम का व्यापार के आत्म कल्याण के लिए मीरा ने शुरू किया था उसमें उनका त्याग, तपोवल, एवं पुरबली प्रीत मीरा कहती है –

“माई री मैं तो लियो गोविंदो मोल|
‘कोई कहै छाने कोई कहै चुपके, लियो री बजन्ता ढोल’
‘कोई कहै मुँहघो कोई कहै सुहघो, लियो री तराजू तोल।
कोई कहै कारो कोई कहै गोरो, लियो री अमोलक मोल’ ॥
‘याही कूँ सब जाणत हैं, लियो री आँखी खोल।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीन्यौ, पूरव जनम कौ कौल” ॥[8] पद -18

मीराबाई ने अपनी सुरम्य दृष्टि में अपनी आँखें से वणिज करके सांवरिया को बसा लिया है

‘नेणा बणज बसवाँ री म्हारा सांवरा आँवा ।
नेणा म्हारा सांवरा राज्या, डरता पलक ना लाँवा’।
x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x
‘स्याम मिलन सिंगार सजावा सुख की सेज बिछावा ।
मीरों रे प्रभु गिरधर नागर, बार- बार बलि जावा’।।[9] पद -14

सच में प्रेम तत्व का जीवन व्यवहार था वह आज व्यापार का बाजार बन गया है वह द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वेतवाद एवं विशिष्टद्वैतवाद के झगड़ों में फँस गया वह एक ही है दो नहीं-‘एको अहं द्वितीयो नास्ति’।।

सूरदास ने तो सगुन की नई दीवार खड़ी करके कृष्ण और उधव को फटकार तक लगा दी –

"आयो घोष बड़ो व्यापारी"

जब से धम्म के स्थान पर अर्थ का प्रबल हुआ तब से ज्ञान पर काम या अर्थ ने अपना कब्जा जमा लिया लोग शब्द के साथ शरीर का भी व्यापार करने लगे इस संसार को व्यापारी बनकर खरीद फरोस्त का माध्यम बना दिया। अतः आज बाज़ारवाद ने संसार के सारे क्रियाकलाप को अपने आगोश में ले लिया और मनुष्य उसके मकड़ जाल में फंस गया। अब वह छटपटा रहा है बिना पैसे के अब प्यार नहीं व्यापार है यह व्यवहार नहीं |वसीम तासी ने कहा है -हम यह सब बडे-बूढों से अक्सर सुनते आए हैं दाएं हाथ में खुजली हो तो जेब में पैसा आता है| नजीर मेरठी भी लिखते हैं -सिफारिश का भरोसा नहीं है मगर पैसा बराबर बोलता है। परवीन कुमार अश्क जी के शब्दों में –

‘पास उसके पैसा बंगले गाड़ियां शोहरत भी है
अस्क जी वह शख्स फिर भी खानदानी क्यों नहीं’|
‘इस प्रकार पैसा बाजार है इस दुनिया में पर, पैसे पर भी थूका जाता है’|

संदर्भ सूची

1. संगलपती भजनमहिमा - रचयिता - बाबा खीवादास (अप्रकाशित रचना) पृ. सं.13

2. संगलपती भजनमहिमा - रचयिता - बाबा खीवादास (अप्रकाशित रचना) पृ. सं.11
3. संगलपती भजनमहिमा - रचयिता - बाबा खीवादास (अप्रकाशित रचना) पृ. सं. 11
4. संगलपती भजनमहिमा - रचयिता - बाबा खीवादास (अप्रकाशित रचना) पृ. सं. 11
5. संगलपती भजनमहिमा - रचयिता - बाबा खीवादास (अप्रकाशित रचना) पृ. सं. 11
6. संगलपती भजनमहिमा - रचयिता - बाबा खीवादास (अप्रकाशित रचना) पृ. सं. 11
7. कबीर ग्रंथावली श्यामसुन्दरदास
8. मीरां की पदावली - आ. परशुराम चतुर्वेदी एवं डॉ शंभुसिंह मनोहर पद -18 प्रकाशन 2008 राजस्थानी ग्रंथागार।
9. मीरां की पदावली - आ. परशुराम चतुर्वेदी एवं डॉ शंभुसिंह मनोहर पद -18 प्रकाशन 2008 पद -14

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 83-85
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

AI का सामाजिक प्रभाव एवम् चुनौती

रमेश कुमार भोजक,
शोधार्थी समाजशास्त्र,
डॉ. तेज कुमार
शोध सुपरवाइजर,
टांटिया विश्वविद्यालय श्रीगंगानगर राजस्थान

सार संक्षेप

AI बुद्धिमान मशीन और सॉफ्टवेयर बनाने का विज्ञान है जो आमतौर पर मानव बुद्धि से जुड़े कार्य को आसानी से कर सकता है जैसे की समस्या सुलझाना सीखना कठिन सवालों के उत्तर देना और किसी भी तरह का निर्णय लेना लिखना इत्यादि। यदि हम आज आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की दुनिया को गहराई से समझना और जानना चाहते हैं तो हमें इस परिवर्तनकारी शक्ति को समझना अति आवश्यक है AI सिस्टम में हमारे जीवन को अनगिनत तरीकों से उन्नत करने की क्षमता है। यह स्वास्थ्य देखभाल के परिणाम में सुधार से लेकर परिवहन प्रणालियों को सुव्यवस्थित से करने और अपने छोटे-मोटे अनुभवों को अमल में लाने तक की असीमित संभावनाएं रखता है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के जनक जॉन मैकार्थी है। भारत में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के जाना के प्रोफेसर राज रेडी है जो कंप्यूटर वैज्ञानिक और प्रोफेसर है जिन्होंने कृत्रिम बुद्धिमत्ता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है रेडी को कंप्यूटर विज्ञान और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के क्षेत्र में उनके काम के लिए वर्ष 1994 में टूरिंग पुरस्कार मिला था। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का अर्थ है कृत्रिम तरीके से विकसित बौद्धिक क्षमता इसके द्वारा कंप्यूटर सिस्टम या रोबोटिक सिस्टम तैयार किया जाता है जिसे उन्हें तर्क संगतता के आधार पर संचालित करने का प्रयास किया जाता है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के उपयोग से शक्ति के साथ ही बड़ी जिम्मेदारी भी आती है और हमें आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस को व्यापक स्तर पर अपनाने से उत्पन्न होने वाले नैतिक निहितार्थों और संभावित चुनौतियों पर और अधिक विचार करने की आवश्यकता है। उन्नत प्रकार के एल्गोरिथम मशीन लर्निंग और तंत्रिका नेटवर्क के विकास के माध्यम से आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस सिस्टम बड़ी मात्रा में डेटा विश्लेषण में आकलन बहुत तेजी से कर सकते हैं साथ ही नए पैटर्न की पहचान कर सकते हैं जिसमें हम बड़ी सरलता और कुशलता के साथ त्वरित और सटीक निर्णय ले सकते हैं।

संकेतक शब्द

कृत्रिम बुद्धिमत्ता, तकनीकी, समाज,अपराध पुलिस, नैतिक जिम्मेदारी,सुरक्षा, गोपनीयता

प्रस्तावना

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के उपयोग के कारण सुरक्षा और प्राइवेसी को लेकर नई चुनौतियां उत्पन्न हो सकती है ।आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के माध्यम से व्यक्तिगत डेटा का विश्लेषण किया जा सकता है जिससे गोपनीयता की चिंताएं बढ़ सकती है इसके लिए सख्त डेटा सुरक्षा नीतियों और कानूनों की आवश्यकता होगी। AI का भविष्य और इसके समाज पर प्रभाव निश्चित ही महत्वपूर्ण और गहरा तथा व्यापक होगा ,इसका उपयोग और विकास, सतर्कता जिम्मेदारी और प्रभावी नीतियों के साथ किया जाना चाहिए ताकि इसके लाभ समाज के व्यापक हित में काम आ सके। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस समाज की सोच और व्यवहार में भी बदलाव ला सकता है आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस द्वारा संचालित टूल्स और प्लेटफार्म की बढ़ती उपयोगिता से मानव के निर्णय लेने के तरीके में बदलाव आ सकता है यह बदलाव सकारात्मक हो सकता है और नकारात्मक भी इस पर निर्भर करेगा कि हम आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस को किस तरह से समाज के विकास मे उपयोग करते हैं। समाज पर ए आई का प्रभाव बहुआयामी और दूरगामी हो सकता है आज यहां आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस अपनी पहचान बना रहा है वही समझ में इसके प्रति असमंजस की स्थिति भी बनी हुई है आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस(Artificial intelligence)हमारे जीवन को गहराई से और तेजी से बदल रहा है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की मौजूदगी और सर्वव्यापकता इस प्रकार है कि हमारे हाथ में मौजूद स्मार्टफोन से लेकर हमारे घरों में लैपटॉप और स्मार्ट असिस्टेंट और विभिन्न उपकरणों तक आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का उपयोग हो रहा है। AI (Artificial intelligence) हमारे जीवन को आसान और अधिक कुशल बनाने की क्षमता है फिर भी हमारे लिए इसके प्रभाव के प्रति सचेत है ना आवश्यक है आज हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इसका उपयोग नैतिक रूप से किया जाए और समाज के सभी वर्गों को इसका समुचित और व्यापक स्तर पर लाभ मिल सके और लोग इससे लाभान्वित हो सके।

अध्ययन की आवश्यकता

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस नेटवर्क के माध्यम से किसी अपराधी की गैर कानूनी गतिविधियों की भविष्यवाणी करने में किया जा सकता है आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस सार्वजनिक सुरक्षा को बढ़ावा देने और अपराध को कम करने के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता की पूरी क्षमता का उपयोग करने के लिए प्रतिबद्ध है ।आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस द्वारा अपराधों को सुलझाने के लिए सबूत के पैटर्न और लिंक की पहचान करने में उपयोगी होते हैं, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस(Artificial intelligence) के द्वारा सड़क दुर्घटनाओं को रोकने के उपाय किए जा सकते हैं तथा राजकुमार्गों के ब्लैक स्पॉट को चिन्हित किया जा सकता है। वर्तमान में पुलिस के पास इतनी क्षमता नहीं है कि वह साइबर अपराधियों के सारे मामले देख सके इसलिए निजी एजेंसी की मदद ली जाती है इसी प्रकार साइबर वॉल्यूम का कार्यक्रम भी लागू किया जा सकता है।

साहित्य पुनरावलोकन

साहित्य समीक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का उपयोग करने से शोधकर्ताओं को मदद मिलती है, यह बड़ी मात्रा में आंकड़ों को कुशलतापूर्वक संभालने में मदद करती है आंकड़ों के विश्लेषण में नए-नए तरीके मिलते हैं तथा शोधकर्ताओं को समय की बचत होती है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस लेखों के सारांश बनाने तथा साहित्य की खोज करने में कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा मदद मिलती है। G -20 के दो दिवसीय शिखर सम्मेलन में भारत के प्रधानमंत्री ने डिजिटल अर्थव्यवस्था में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के महत्व को रेखांकित किया था, उस सम्मेलन का अध्ययन इस शोध पत्र में किया गया है। राजस्थान पत्रिका में प्रकाशित रिपोर्ट का भी अध्ययन किया गया जिसमें आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस अपराध नियंत्रण और पुलिस के पुलिसिंग तरीके में बदलाव लाएगा तथा अपराधों में सड़क हादसों पर नियंत्रण की कोशिश करेगी।

शोध प्रविधि तथा स्त्रोत

शोध कार्य वैज्ञानिक होने के लिए उसका निरपेक्ष एवं वस्तुनिष्ठ होना अनिवार्य होना चाहिए। समाज विज्ञान में शोध कार्य हेतु सूचनाओं एक एकत्रित करने के लिए तथ्य संग्रहण के प्राथमिक और द्वितीय दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया जाता है। प्रारंभिक रूप में साक्षात्कार ,अवलोकन विधियों का प्रयोग किया जाएगा और साथ ही द्वितीय स्रोत में विभिन्न पत्रिकाओं आदि का अवलोकन किया जाएगा।

निष्कर्ष

मीडिया तकनीकी व्यवधानों के बीच आर्थिक चुनौतियाँ: चूँकि ये प्रौद्योगिकियाँ मीडिया उत्पादों एवं सूचनाओं के उत्पादन एवं उपभोग के तरीके को विघटित कर देती हैं, इसलिये बाज़ारों के व्यवधान (disruption), असमानताओं के निर्माण, मानव रचनात्मकता एवं नवाचार के लिये प्रेरणा की कमी और श्रमिकों के विस्थापन जैसी महत्त्वपूर्ण आर्थिक चुनौतियाँ उत्पन्न होंगी।

रोज़गार हानि: उपभोक्ता सेवा, अनुसंधान, ब्लू-कॉलर जॉब और विधिक सेवा जैसे विभिन्न क्षेत्रों में (जहाँ नियमित सूचना प्रसंस्करण, डेटा एंट्री, फॉर्म फिल-अप जैसे कार्य किये जाते हैं) रोज़गार हानि की स्थिति बन सकती है। आंशिक स्वचालन के साथ भी, इन क्षेत्रों में लगभग 5-10% कार्य-भूमिकाएँ निकट भविष्य में समाप्त हो सकती हैं। इससे करोड़ों कुशल और अर्द्ध-कुशल कामगार बेरोज़गारी के शिकार होंगे। इसके अलावा, इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि जेनरेटिव AI और संबंधित प्रौद्योगिकियाँ इन रोज़गार अवसरों की हानि की भरपाई के लिये नए रोज़गार अवसर सृजित करेंगी। दिनांक 10 फरवरी 2025 को भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी तीन दिवसीय यात्रा पर फ्रांस के लिए रवाना होंगे, पीएम की यात्रा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के इस्तेमाल की रूपरेखा तय होने के साथ मुख्य रक्षा समझौते होने की उम्मीद है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के बदलते स्वरूप और चुनौतियों के बीच इसके इस्तेमाल की परिधि और भविष्य को लेकर बड़े निर्णय होने की संभावना है। वर्तमान समय में आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस द्वारा अपराध और सड़क हादसों पर नियंत्रण की कोशिश की जा रही है। बीकानेर जिला पुलिस द्वारा अल्ट्राविज तकनीक द्वारा सड़क हादसों को रोकने के लिए प्रभावी प्रयास किए जा रहे है। पुलिस अनुसंधान जैसे रोज़मर्रा कार्यों में भी आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस के प्रयोग करने को लेकर वर्तमान जिला पुलिस अधीक्षक श्री कविंद्र सिंह सागर बहुत गंभीर है और इसकी क्रियान्विति के लिए सतत् प्रयास कर रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. राष्ट्रीय साइबर अपराध रिपोर्टिंग पोर्टल, www.cybercrime.gov.in
2. www.rajasthanpolice.com.
3. पुलिस विज्ञान पत्रिका, पुलिस अनुसंधान ब्यूरो, नई दिल्ली
4. राजस्थान पत्रिका, 4 जनवरी 2024

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 86-90
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

"Invisible Decomposers of the Social Ecosystem: Manual Scavenging, Environmental Justice, and the Ethics of Sustainability in India"

Reeta Rani,
Assistant Professor
Laxmi Bai College, Department of Philosophy, University of Delhi
Dr Shiv Nandan Maurya,
Assistant Professor,
Kirori Mal College,Department of Philosophy, University of Delhi

Abstract

Manual scavenging, though legally banned and socially condemned, continues to persist in the shadows of Indian society. This paper explores manual scavenging not just as a social evil, but as an environmental reality, drawing a compelling analogy between manual scavengers and decomposers in nature. Just as decomposers (fungi, bacteria, earthworms) break down dead matter to sustain the ecological cycle, manual scavengers deal with human and societal waste — physically and symbolically — to maintain environmental sanitation and public health. However, unlike natural decomposers, these individuals are not recognized as essential, but are instead treated with stigma and social exclusion. Historically, manual scavenging is rooted in a caste-based occupational hierarchy, where certain communities were designated "untouchable" and forced to perform tasks considered 'polluting.' Despite constitutional safeguards, this practice continues due to systemic discrimination, lack of alternatives, and socio-economic marginalization. These workers face social ostracization, unsafe working conditions, and are denied basic dignity — even though their contribution is foundational to maintaining public hygiene. From an environmental perspective, manual scavengers perform vital functions, They remove human waste, prevent contamination, and contribute to waste management, Their invisible labor protects water sources from pollution and reduces the spread of disease, They silently uphold the goals of national cleanliness movements like "Swachh Bharat Abhiyan," yet are never celebrated as environmental workers. This paper uses a natural analogy to challenge the perception of scavengers as "lowly" — highlighting that in nature, decomposers are not impure, but indispensable**.** Their work is life-sustaining. Similarly, manual scavengers are not dirty, but are performing a social function that is ignored, invisibilized, and yet central to our survival. This leads to a deeper philosophical inquiry

into the idea of environmental justice. Can we speak of sustainability when it is built upon the suffering of a few? Are we willing to recognize sanitation only when it is achieved through machines and not human hands? Is environmental justice truly achievable without social justice? The paper also brings in ethical and philosophical dimensions, when we see Gandhian and Dr Ambedkar philosophy and others philosophy, we see that Gandhian thought emphasized the dignity of labour, advocating respect for all forms of work, especially sanitation. And Dr. B.R. Ambedkar strongly condemned caste-based occupations and demanded the annihilation of caste and revaluation of sanitation workers' role. Existentialist philosophy questions whether a person's worth should be defined by their work, or by their inner consciousness and freedom and The Buddhist ethics, rooted in karuṇā (compassion**)** and samatā (equality), reject all forms of hierarchy and emphasize equal respect for all beings. In conclusion, this paper argues that environmental sustainability must not only include green technologies and policies but must also address the moral and social dimensions of sanitation. Without recognizing the human decomposers of our social ecosystem, our vision of a clean and sustainable future remains incomplete — and deeply unjust.

Introduction

In the grand narrative of environmental sustainability, much emphasis is laid on the adoption of technology, policy reform, and ecological awareness. However, one of the most overlooked dimensions of sustainability lies not in the laboratories of climate scientists or the policies of governments, but in the lives of those who silently maintain the foundations of our public health—manual scavengers. These individuals, despite their critical contribution to environmental sanitation, remain shunned, degraded, and invisible. The contradiction is stark: those who clean human waste and prevent disease are themselves treated as societal waste, occupying the lowest rung of India's caste-based social hierarchy. This paper explores this paradox by building a philosophical and ecological analogy between manual scavengers and decomposers in nature. In doing so, it argues that any model of environmental sustainability is incomplete without acknowledging and ethically integrating the human labor that keeps our physical and moral environments clean. Manual scavenging in India is not just a sanitation issue—it is a deeply entrenched socio-cultural and historical phenomenon rooted in the caste system. The task of cleaning dry latrines, sewers, and drains has historically been assigned to certain Dalit communities, primarily the Valmiki caste, under the justification of "ritual pollution" associated with human waste. Despite constitutional abolition of untouchability and various laws prohibiting manual scavenging, the practice continues under various forms, including sewer cleaning and septic tank management without protective gear. The 2011 Census of India recorded over 740,000 households where manual scavenging is still practiced, while unofficial numbers may be even higher.[1] This exploitation is not only a violation of basic human rights but also reflects the structural failure to include these workers in the narrative of progress. The "Swachh Bharat Abhiyan" (Clean India Mission), launched in 2014, made cleanliness a national priority but failed to transform the social and economic conditions of those who actually perform this task. While slogans and celebrity campaigns dominated headlines, manual scavengers continued to die in

[1] Government of India, *Census of India 2011: House Listing and Housing Census Data*, Ministry of Home Affairs, 2011.

septic tanks due to asphyxiation and chemical exposure. Their labor, indispensable to the sanitary infrastructure of cities and villages alike, remains unrecognized, unorganized, and unpaid.[2]

In order to foreground their critical role in environmental maintenance, this paper draws a metaphor from ecology—the role of decomposers. Decomposers, such as fungi, bacteria, and detritivores, are nature's cleaners. They break down dead matter, recycle nutrients, and sustain life cycles. Without decomposers, ecosystems would collapse under the burden of waste and decay. Yet, these organisms remain unseen and are often considered unclean or undesirable. The analogy extends compellingly to manual scavengers, who function as social decomposers—handling the "dead" waste of society to preserve its health, while being socially rejected in the process. Like decomposers, they are essential yet stigmatized, invisible yet omnipresent. The analogy is not meant to dehumanize, but to provoke reflection. If decomposers are vital to ecological sustainability, why are human decomposers treated with contempt in the socio-environmental hierarchy? Their work is not simply labor; it is moral, existential, and ecological participation in sustaining human life. Ignoring their contribution in the sustainability discourse reveals a selective environmentalism—one that is green in policy but casteist in practice.

Philosophically, this marginalization raises questions about the very ethics of sustainability. Can environmental justice be achieved without social justice? Can a clean environment be considered ethical if it is built on the suffering and exclusion of a few? These questions demand an engagement with the works of thinkers like **Mahatma Gandhi** and Dr. B.R. Ambedkar, both of whom addressed the question of caste, sanitation, and human dignity from different standpoints. Gandhi saw the act of cleaning as a sacred duty and upheld the dignity of labour. He referred to sanitation workers as "Harijans," or "people of God," and personally engaged in toilet cleaning to challenge caste-based notions of impurity. For Gandhi, cleanliness was not only physical but spiritual—a moral discipline that required the elite to share in the so-called 'lowly' work.[3] However, Gandhi's view has been critiqued for romanticizing suffering without challenging the systemic structures that perpetuate it. Ambedkar, in contrast, focused on the annihilation of caste itself. For him, manual scavenging was not a noble task but a symbol of dehumanization. He called it the "greatest curse on Hindu society" and demanded not only the eradication of the practice but the transformation of socio-economic systems that sustained it[4]. **Ambedkar's approach** was rooted in justice, equity, and rationality, placing the question of dignity above the idealization of suffering. This paper aligns more closely with Ambedkar's critique while recognizing Gandhi's moral insights. It asserts that while the environmental contribution of manual scavengers must be acknowledged, it should not be used to justify their continued exploitation. Recognition must lead to restitution, not romanticism. The decomposer analogy is intended to challenge readers to see their own complicity in a society that denies basic rights to those who perform its dirtiest work, and to reconsider what sustainability truly means. From an existentialist point of view, the condition of manual scavengers represents the absurdity and alienation that comes from being reduced to one's function. Thinkers like Jean-Paul Sartre and Albert Camus have explored how systems and societies often trap individuals in roles that deny their freedom and subjectivity. In the Indian context, caste functions as an ontological prison—a

[2] Human Rights Watch, *Cleaning Human Waste: "Manual Scavenging," Caste, and Discrimination in India*, 2014.

[3] M. K. Gandhi, *The Story of My Experiments with Truth*, trans. Mahadev Desai (Ahmedabad: Navajivan Publishing House, 1927), 345.

[4] B. R. Ambedkar, *Annihilation of Caste*, 1936. Reprinted in *Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and Speeches*, Vol. 1 (Mumbai: Government of Maharashtra, 1979), 40–42.

person is not simply what they do, but what they are expected to be from birth. This denies the individual the basic existential right to define oneself. **Buddhist philosophy** offers yet another lens. Rooted in the principles of *karuṇā* (compassion) and *samatā* (equality), Buddhist ethics opposes all forms of hierarchy and discrimination. In the Mahāyāna tradition, the Bodhisattva ideal emphasizes the liberation of all beings without exception. In this view, no work is low or high—what matters is intention and the reduction of suffering. The Bodhisattva would not ignore the plight of manual scavengers, but see them as fellow beings worthy of respect, liberation, and care.[5] Thus, the act of cleaning waste, when viewed through multiple philosophical frameworks, takes on a deeper ethical significance. It becomes not merely a question of hygiene or public health, but of how a society defines value, worth, and dignity. If a civilization is to be judged by how it treats its weakest members, then the treatment of manual scavengers is a direct reflection of our moral decay. Environmental sustainability is often measured in metrics—reduced emissions, green spaces, clean rivers. But these indicators say little about the **human cost** of such cleanliness. A truly sustainable society cannot be built on the backs of the oppressed. It must recognize and uplift the human agents who make sustainability possible—not only through technological innovation, but through manual, painful, and stigmatized labor. In bringing together ecological metaphor, historical analysis, and philosophical reasoning, this paper argues for an ethical reorientation in how we understand both the environment and society. It challenges the sanitized narratives of progress and questions the silence around caste in environmental discourse. The scavenger, like the decomposer, performs an essential role. But unlike decomposers, they are conscious beings—with desires, dignity, and the right to freedom. To continue ignoring their role is not only a failure of policy but a failure of conscience.

Conclusion

So it is concluded that manual scavenging, despite being legally abolished and socially condemned, continues to thrive silently in the margins of our society. Through this paper, I have tried to explore the reality of these invisible workers not just as victims of caste oppression, but as silent contributors to environmental sustainability. Like decomposers in nature, they carry out the most essential yet thankless task of keeping our environment clean, at the cost of their own dignity, health, and lives. This study made me realize that sustainability is not merely about green policies or smart technologies, but about justice — social, environmental, and ethical. We cannot talk about a clean India while ignoring the human suffering behind that cleanliness. Thinkers like Gandhi, Ambedkar, and the compassionate lens of Buddhist philosophy remind us that sanitation work deserves not stigma, but respect. It is time we recognize these workers as environmental warriors, not as 'untouchables'.

References

1. Government of India, *Census of India 2011: House Listing and Housing Census Data*, Ministry of Home Affairs, 2011.
2. Human Rights Watch, *Cleaning Human Waste: "Manual Scavenging," Caste, and Discrimination in India*, 2014.
3. M. K. Gandhi, *The Story of My Experiments with Truth*, trans. Mahadev Desai (Ahmedabad: Navajivan Publishing House, 1927), 345.

[5] Damien Keown, *Buddhist Ethics: A Very Short Introduction* (Oxford: Oxford University Press, 2005), 88.

4. B. R. Ambedkar, *Annihilation of Caste*, 1936. Reprinted in *Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and Speeches*, Vol. 1 (Mumbai: Government of Maharashtra, 1979), 40–42.

5. Damien Keown, *Buddhist Ethics: A Very Short Introduction* (Oxford: Oxford University Press, 2005), 88.
6. Al Jazeera, "Outpouring of support in India for grieving son of sewer cleaner," *Al Jazeera*, September 19, 2018.

Phone no. - 8448075208.
E-mail id- riturakamsingh@gmail.com.
Phone no. 85649 31551
Email : nshiv2025@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 91-95
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ0 ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचार

सोमित सिंह
शोधछात्र (शिक्षाशास्त्र),
डॉ0 कृपा शंकर यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर
नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज

सारांश

डॉ0 अब्दुल कलाम के अनुसार, ''21वीं शदी में एक नया समाज उभर रहा है, जहाँ पूँजी और श्रम की अपेक्षा ज्ञान प्राथमिक उत्पादन संसाधन है, ज्ञान समाज में परिवर्तन लाने की पूरी क्षमता रखता है। शिक्षा के द्वारा मौजूद ज्ञान के सही उपयोग से राष्ट्र की पूँजी बहुत मजबूत स्थिति में पहुँच सकती है और इससे अच्छे स्वास्थ्य, शिक्षा बुनियादी ढाँचे और अन्य सामाजिक संकेतकों के रूप में जीवन स्तर की गुणवत्ता में सुधार हो सकता हैं इसी दिशा में ज्ञान सम्बन्धी बुनियादी ढाँचे का विकास और रख–रखाव ज्ञान कार्यकर्ताओं को तैयार करना और नये–नये ज्ञान के अवसर पैदा करके उनके विकास तथा दोहन के जरिये ज्ञान कार्यकर्ताओं की उत्पादकता बढ़ाने का कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण है। डॉ0 एपीजे अब्दुल कलाम की शिक्षक की उच्च परिभाषा है। उनका मानना है कि शिक्षक की जिम्मेदारी व्यक्ति के जीवन को पोषित करना, सीखने की प्रक्रिया को सिखाना और छात्रों को जीवन भर सीखने वाला बनाना है। स्कूलों में इस्तेमाल किए जाने वाले शिक्षण तरीकों से छात्रों को क्षमता निर्माण और अपने कौशल विकसित करने में मदद नहीं मिलती है। शिक्षक कौशल प्रदान करते हैं और छात्रों को सीखने की गतिविधियों में भाग लेते हैं, यह शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों में से एक है। शिक्षा प्रणाली के लिए छात्रों को अनुसंधान योग्यता, रचनात्मकता, नवाचार, प्रौद्योगिकी योग्यताए उद्यमी कौशल और नैतिक नेतृत्व जैसी विशेष क्षमताओं और क्षमताओं को विकसित करने की आवश्यकता है साथ ही शिक्षा के इस अभिनव संचरचना को ध्यान में रखते हुए स्कूल पाठ्यक्रम, शिक्षण पद्धति और दृष्टिकोण में सुधार किया जा सकता है।

मुख्य शब्द– डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, शैक्षिक विचार, शिक्षा के उद्देश्य, छात्र, शिक्षक, प्रौद्योगिकी, शिक्षा में बदलाव, ड्रापआउट, अभिभावक।

प्रस्तावना–

शिक्षा के द्वारा युवा पीढ़ी की शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक विकास होता है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के भीतर विद्यमान गुणों को विकसित करना होता है और उसे पूर्णता प्रदान करना होता है। शिक्षा के माध्यम से भौतिक जीवन व आध्यात्मिक जीवन के बीच के अन्तर को स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता है। शिक्षा के माध्यम से किसी तरह युवा पीढ़ी को आध्यात्मिक, नैतिक मूल्यों एवं आत्मिक ज्ञान से जोड़ा जाए इस प्रकार के प्रयास किये जाते हैं ताकि युवा पीढ़ी का पूर्ण विकास हो सके।

डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम शिक्षा के सम्बन्ध में उनका मानना था कि, *''वास्तविक शिक्षा मानवीय गरिमा और व्यक्ति के स्वाभिमान में वृद्धि करती है।''*

डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की पुस्तक 'राजपाल एण्ड सन्स' उनकी युग–प्रवर्तक पुस्तक ''**भारत 2020 नवनिर्माण की रूपरेखा**'' से शैक्षिक विचारों का व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त हुआ। डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की 'अग्नि की उड़ान' भी इसी क्रम में रही।

वह अपनी पुस्तक भारत 2020 नव निर्माण की रूपरेखा में युवाओं को प्रोत्साहित करने के लिए सर सी.बी. रमन उत्प्रेरक व प्रसिद्ध वाक्यों का उदाहरण देते हैं, जो 82 वर्ष की आयु में उन्होंने स्नातकों के एक समूह को सम्बोधित करते हुए कहे थे– ''मैं अपने सपने मौजूद युवकों एवं युवतियों को बताना चाहता हूँ कि वे उम्मीद तथा साहस न छोड़े आप के सामने जो दायित्व है, उनके प्रति साहसपूर्ण समर्पण द्वारा ही आपको सफलता प्राप्त हो सकती है।''

युवाओं से अपील की आप को सन् 2010 तक साक्षरता का स्तर वर्तमान सत्तावन से पचहत्तर प्रतिशत तक ले जाने के राष्ट्रीय लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में कार्य करना चाहिए।

डॉ0 अब्दुल कलाम के अनुसार, ''21वीं शदी में एक नया समाज उभर रहा है, जहाँ पूँजी और श्रम की अपेक्षा ज्ञान प्राथमिक उत्पादन संसाधन है, ज्ञान समाज में परिवर्तन लाने की पूरी क्षमता रखता है। शिक्षा के द्वारा मौजूद ज्ञान के सही उपयोग से राष्ट्र की पूँजी बहुत मजबूत स्थिति में पहुँच सकती है और इससे अच्छे स्वास्थ्य, शिक्षा बुनियादी ढाँचे और अन्य सामाजिक संकेतकों के रूप में जीवन स्तर की गुणवत्ता में सुधार हो सकता हैं इसी दिशा में ज्ञान सम्बन्धी बुनियादी ढाँचे का विकास और रख–रखाव ज्ञान कार्यकर्ताओं को तैयार करना और नये–नये ज्ञान के अवसर पैदा करके उनके विकास तथा दोहन के जरिये ज्ञान कार्यकर्ताओं की उत्पादकता बढ़ाने का कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह सब बातें ज्ञान समाज की सफलता में निर्णायक घटक हो सकती है। कोई देश ज्ञान समाज की दिशा में कितनी प्रगति कर रहा है, इसका अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि वह देश सूचना–प्रौद्योगिकी, उद्योग, कृषि, स्वास्थ्य आदि सभी क्षेत्रों में ज्ञान बढ़ाने और ज्ञान के इस्तेमाल करने की दिशा में कितने प्रभावकारी तरीके से कार्य कर रहा है।''

डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का योगदान

डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम एक व्यावहारिक शैक्षिक विचारक और दूरदर्शी हैं, जो एक संतुलित भारतीय समाज के विकास के लिए प्राचीन और आधुनिक शैक्षिक आदर्शों को एकीकृत करने के लिए खड़े हुए। अतः डॉ0 अब्दुल कुलाम ने शिक्षा में विशेष योगदान दिया है जो निम्नवत् है–

छात्रों के बारे में–

डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम लिखते हैं कि 'मेरा संदेश' विशेषकर युवाओं के लिए यह है कि वे आविष्कार करने के लिए अलग तरीके से सोचने का साहस रखें, अप्रत्याशित मार्ग पर चलने का साहस रखें, असंभव को खोजने का साहस रखें और समस्याओं पर विजय प्राप्त करें। ये ऐसे गुण हैं जिनके लिए उन्हें काम करना चाहिए। यह युवाओं को मेरा संदेश है।

विद्यार्थियों के बीच क्षमता निर्माण–

छात्रों का ध्यान अपनी पढ़ाई में उत्कृष्टता हासिल करने पर होना चाहिए। यह राष्ट्र के विकास में उनका पहला योगदान है। शिक्षा प्रणाली में छात्रों की जिज्ञासा, रचनात्मकता, प्रौद्योगिकीए उद्यमी और नैतिक नेतृत्व की क्षमता का समावेश होना चाहिए। यदि हम इन सभी क्षमताओं में विकसित होते हैं, तो हम एक स्व–निर्देशित, आत्म–नियंत्रित, आजीवन सीखने वाले 'स्वायत्त शिक्षार्थी' का निर्माण करेंगे, जिनके पास अधिकार का सम्मान करने की क्षमता होगी और साथ ही उचित तरीके से प्राधिकरण पर सवाल उठाने की क्षमता होगी।

बच्चों की अच्छी शिक्षा के लिए योजना–

हर स्कूल में बुनियादी सुविधाएं होनी चाहिए जैसे कि हवा और प्रकाश से युक्त एक अच्छा भवन। कमरों में हवा होनी चाहिए और बड़ी कक्षाएं होनी चाहिए। स्कूल में एक पुस्तकालय, प्रयोगशाला भी होनी चाहिए जिसमें नवीनतम सूचना प्रौद्योगिकी उपकरण और बुनियादी ढांचाए सुरक्षित पेयजलए स्वच्छ शौचालय और एक खेल का मैदान शामिल है। यह जीडीपी के 2 से 3 प्रतिशत के अतिरिक्त निर्धारण द्वारा संभव है।

ड्रॉपआउट में कमी–

यह रिपोर्ट की गई है कि 5वीं कक्षा और 55ः ड्रॉपआउट का अध्ययन करने के बाद 39ः बच्चे स्कूल से बाहर निकलते हैं। इस स्थिति के लिए उपचारात्मक कार्रवाई की आवश्यकता हैए विशेष रूप

से इसलिए कि 86वें संविधान संशोधन अधिनियम को अनुमति दी गई है। 5 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए शिक्षा का अधिकार विधेयक। लेकिन, केवल एक कार्य ही लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक कि शिक्षा को इस तरह से प्रदान नहीं किया जाता है, जो उन लोगों की सामाजिक, आर्थिक वास्तविकता और धारणा को ध्यान में रखेगा जिन्हें इसका समाधान किया गया है। बच्चों को स्कूलों में आकर्षित करने के अलावा, शिक्षा प्रणाली को उनमें पोषण और रचनात्मकता लाने में सक्षम होना चाहिए। शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य चरित्र, मानव मूल्यों का निर्माण करना, प्रौद्योगिकी के माध्यम से सीखने की क्षमता बढ़ाना और भविष्य का सामना करने के लिए बच्चों में विश्वास पैदा करना भी होना चाहिए।

शिक्षा में प्रौद्योगिकी का उपयोग–

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के कुछ क्षेत्रों में ज्ञान के तीव्र उत्साह के साथ समय और स्थान की बाधाओं ने दूरस्थ शिक्षा में विभिन्न संस्थानों से विभिन्न पाठ्यक्रमों के लिए बड़ी मांग पैदा की है। एक कार्यशील डिजिटल लाइब्रेरी प्रणाली की आवश्यकता है जो लंबे समय में ज्ञान समाज के लिए आवश्यक पहुंच प्रदान कर सकती है। डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम (2005) लिखते हैं कि पुस्तकालयों को डिजिटाइज करने की आवश्यकता है और पुस्तकों को विश्वविद्यालयों में निर्बाध रूप से उपलब्ध कराया जाना चाहिए जो दूरस्थ शिक्षण कार्यक्रम के माध्यम से सार्वभौमिक पहुंच को पूरा कर सके।

आभासी कक्षा–

डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम (2005) लिखते हैं कि सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के साथ दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों में अब आभासी कक्षाएं हो सकती हैं। छात्र न केवल मन–ही–मन सुनने वाले होंगे, बल्कि शिक्षक और शिक्षक के बीच दो–तरफा संपर्क होने से बातचीत और प्रश्न पूछने की भी गुंजाइश होगी। शारीरिक दूरी के बावजूद सर्वश्रेष्ठ शिक्षकों को छात्रों तक पहुँचाया जा सकता है। भविष्य की आभासी कक्षाओं में कई स्थानों के छात्र होंगे जिन्हें भौगोलिक रूप से वितरित शिक्षकों की एक टीम द्वारा टेलीएजुकेशन डिलीवरी प्रणाली के माध्यम से पढ़ाया जाएगा।

आभासी विश्वविद्यालय–

डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम (2005) लिखते हैं कि भारत में एक आभासी विश्वविद्यालय बनाने की आवश्यकता है। यह भारत के सभी विश्वविद्यालयों की नेटवर्किंग के माध्यम से किया जा सकता है। इससे सभी नेटवर्क विश्वविद्यालयों के लिए अपने संसाधनों को एकत्रित करना और विद्यार्थियों को बेहतर शिक्षा प्रदान करना संभव हो सकेगा, जितना वे स्वयं प्रबंध कर सकते हैं। डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने आभासी विश्वविद्यालय के लिए निम्नलिखित कार्यों का सुझाव दिया–

- आभासी विश्वविद्यालय सभी नेटवर्क विश्वविद्यालयों के केंद्रीय केंद्र के रूप में कार्य करेगा।
- अध्ययन की समीक्षा के लिए प्रतिभागियों द्वारा आसान पहुंच के लिए डेटाबैंक में बातचीत के विवरण के साथ व्याख्यान के लाइव प्रसारण को रिकॉर्ड करें।
- सभी विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों का डिजिटलीकरण करें और उन्हें सभी विश्वविद्यालयों द्वारा निर्बाध पहुंच के लिए उपलब्ध कराएं।
- इंटरनेट के माध्यम से व्याख्यानए प्रयोगशालाए सीखने और पुस्तकालय प्रदान करें।

शिक्षक–

डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम भारत के महान शिक्षक रहे हैं। डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के अनुसारए एक शिक्षक में निम्नलिखित चार गुण होने चाहिए–

शिक्षकों को अध्यापन से प्रेम करना,एक शिक्षक को अपना ज्ञान देने का जुनून होना, शिक्षकों को विद्यार्थियों के प्रश्नों को प्रोत्साहित करना, शिक्षकों को उन्हें अपनी सोच से परे सोचना, शिक्षक छात्रों को आगे बढ़ाना, शिक्षक छात्रों पर अपनी क्षमताओं का पता लगाने के लिए दबाव बनाना इत्यादि गुण समाहित होना चाहिए।

अभिभावक–

डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का मानना था कि हर माता–पिता को बच्चों को एक अच्छे इंसान बनने के लिए मार्गदर्शन करना चाहिए। वे लिखते हैं कि प्रत्येक माता–पिता के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है कि वे अच्छे मानव को जागरूक और कड़ी मेहनत करने के लिए मार्गदर्शन करने के लिए तैयार हों। अब्दुल कलाम के अनुसार, माता–पिता को अपने बच्चों को सपने देखने की अनुमति देनी चाहिए।

सफलता हमेशा सपनों का अनुसरण करती है जिसके माध्यम से कुछ निश्चित पुस्तकें और देरी हो सकती है।

डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का मानना था कि बच्चों के जीवन में माता–पिता और शिक्षक प्रमुख भूमिका निभाते हैं। वह लिखते हैं कि अगर माता–पिता और शिक्षक युवाओं के जीवन को आकार देने के लिए आवश्यक समर्पण दिखाते हैं, तो भारत को एक नया जीवन मिलेगा। जैसा कि कहा जा रहा है कि माता–पिता के छात्रों के प्रथम गुरु होते हैं और गृह कार्यों के साथ–साथ आगे की पढ़ाई के प्रोत्साहित करते हैं।

नैतिक मूल्य–

डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम (2002) लिखते हैं कि यदि कोई समाज प्रगति करना चाहता है, तो धन सृजन के माध्यम से दो महत्वपूर्ण आवश्यकताएं हैं और लोगों में मूल्य प्रणाली को संजोना है। दोनों का मेल राष्ट्र को वास्तव में मजबूत और समृद्ध बनाएगा। डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का मानना था कि मूल्य व्यवस्था वाले बच्चे का पूरा विकास केवल शिक्षकों और अभिभावकों से ही हो सकता है।

21वीं सदी के लिए एक शिक्षा मॉडल–

समय की मांग है कि विद्यार्थी देश के आर्थिक विकास में योगदान देने के लिए आगे आएं। पूरी शिक्षा प्रणाली क्षमता निर्माण पर आधारित होनी चाहिए जिसमें पांच घटक शामिल हैं–

- अनुसंधान और जांच
- रचनात्मकता और नवाचार।
- उच्च प्रौद्योगिकी के उपयोग की क्षमता।
- उद्यमिता।
- नैतिक नेतृत्व।

डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के शिक्षा संबंधी उद्धरण–

अब्दुल कलाम का मानना है कि भारत को विकासशील देश बनाने में छात्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यहां छात्रों के लिए शिक्षा पर अब्दुल कलाम के कुछ उद्धरण दिए गए हैं, जो निम्नवत् है–

- कक्षा की अंतिम पीठ पर देश का सर्वश्रेष्ठ दिमाग पाया जा सकता है।
- हम सभी के पास समान प्रतिभा नहीं है। लेकिन, हम सभी के पास अपनी प्रतिभा विकसित करने का समान अवसर है।
- उत्कृष्टता दुर्घटना से नहीं होती, यह एक प्रक्रिया है।
- शिक्षा का उद्देश्य कौशल और विशेषज्ञता के साथ अच्छे इंसान बनाना है जो शिक्षकों द्वारा विकसित किए जा सकते हैं।
- रचनात्मकता एक ही चीज देख रही है, लेकिन अलग सोच रही है।

अध्ययन के निष्कर्ष–

डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की शिक्षक की उच्च परिभाषा है। उनका मानना है कि शिक्षक की जिम्मेदारी व्यक्ति के जीवन को पोषित करना, सीखने की प्रक्रिया को सिखाना और छात्रों को जीवन भर सीखने वाला बनाना है। स्कूलों में इस्तेमाल किए जाने वाले शिक्षण तरीकों से छात्रों को क्षमता निर्माण और अपने कौशल विकसित करने में मदद नहीं मिलती है। शिक्षक कौशल प्रदान करते हैं और छात्रों को सीखने की गतिविधियों में भाग लेते हैं, यह शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों में से एक है। शिक्षा प्रणाली के लिए छात्रों को अनुसंधान योग्यता, रचनात्मकता, नवाचार, प्रौद्योगिकी योग्यताए उद्यमी कौशल और नैतिक नेतृत्व जैसी विशेष क्षमताओं और क्षमताओं को विकसित करने की आवश्यकता है साथ ही शिक्षा के इस अभिनव संचरचना को ध्यान में रखते हुए स्कूल पाठ्यक्रम, शिक्षण पद्धति और दृष्टिकोण में सुधार किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- जोशी, मनोज (2018). डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का छात्र सम्बन्धी दृष्टिकोण, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ ह्युमिनिट्ज सोशल साइसं रिसर्च, वॉ0 4, इश्शू–6, पृ0 78–80

- द्विवेदी, गिरीश कुमार (2016). डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का शिक्षा के क्षेत्र में योगदान : एक अध्ययन, शोध पारिख, ISSN 2231-413X, Vol VI. Issue 3, July 2016
- मोनिका (2017). डॉ0 भीमराव अम्बेडकर एवं डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, बुन्दले खण्ड विश्वविद्यालय, बुन्दलेखण्ड।
- यादव, शिवशंकर (2009). डॉ0 एस0राधाकृष्णन एवं डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन, अप्रकाशित लघु शोध प्रबन्ध, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुरं।
- यादव, बृजेश कुमार (2015). ''डा0 अब्दुल कलाम के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में परिलक्षित शैक्षिक विचारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन'', लघु शोध प्रबन्ध, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद
- सिंह, रवि कुमार (2014), ''डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचारों का एक अध्ययन'', अप्रकाशित लघुशोध प्रबन्ध, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
- सिंह, कृष्ण कुमार (2015) ''डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचारों का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता'', अप्रकाशित लघुशोध प्रबन्ध, देवी अहिल्याबाई विश्वविद्यालय, इंदौर, (म0प्र0)

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 96-104
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कुमार कृष्ण के काव्य में ग्रामीण संस्कृति

मनोज कुमार
सहायक आचार्य हिन्दी एवं शोधार्थी,
डॉ एस. प्रीति
सह आचार्य,
हिन्दी विभाग एवं मानविकी संकाय एस. आर . एम. इंस्टीटयूट साइंस एंड टेक्नोलॉजी कट्टनकुलथुर, चेन्नईI

भारत गांव का देश है। भारत में प्राचीन काल से ही ग्रामीण संस्कृति का बोल-बाला रहा है। ग्रामीण संस्कृति अपने आप में समृद्ध संस्कृति होती है। प्राचीन काल से ही साहित्यकारों ने ग्रामीण संस्कृति को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। वैदिक समय से ही साहित्यकारों ने कृषि, ग्रामीण संस्कृति की संवेदना को अपने काव्य में स्थान दिया है। आधुनिक समय में कृषि और ग्रामीण संस्कृति पर कुछ कवियों ने अपनी लेखनी चलाई है। समकालीन साहित्यकारों का कम ही ध्यान ग्रामीण संवेदना पर गया है। समकालीन कविता में धूमिल, नार्गाजून, मुक्तिबोध, केदारनाथ, के बाद ग्रामीण साहित्य की जो धारा रुक सी गई थी। वह पुनः कुमार कृष्ण के काव्य में पुनः दिखाई देती है। भारतेंदु हरिश्चंद्र का कथन है, "भारत का स्वत्व और आत्मा गांव है, यह यर्थाथपरक सत्य होने के साथ ग्रामीण जीवन को साहित्य का केंद्र होने का गौरव की अनुभूति देता है।"[1]

भारत गांव का देश है। आज भी 70% जनसंख्या गांव में बसती है। देश की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति की झलक भी गांव में ही दिखाई देती है। आजादी के बाद भी आज भी ऐसे गांव है जो विकास से कोसों दूर है। आज भी गांव विकास के लिए तरस रहे हैं। परंतु विकास से दूर होने के बावजूद भारतीय गांव का स्वरूप बदल रहा है। धीरे-धीरे ग्रामीण संस्कृति पर शहरीकरण का प्रभाव बढ़ रहा है। आधुनिकरण और बाजार केंद्रित संस्कृति ने धीरे-धीरे गांव में भी पांव पसारने शुरू कर दिये हैं। ग्रामीण संस्कृति पर शहरी संस्कृति धीरे-धीरे हावी हो रही है। इस संस्कृति को हावी होते देखकर कवि कुमार कृष्ण चिंतित है। कुमार कृष्ण ग्रामीण संवेदना के कवि है उनके काव्य में ग्रामीण जीवन की वास्तविकता, ग्रामीण संस्कृति, मूल्य, ग्रामीण परिवेश सजीव हो उठता है। डॉ० चमन लाल गुप्त के अनुसार, "कुमार कृष्ण की रचना धर्मिता गांव पसरा पड़ा है। प्रत्येक शब्द का चयन अद्भुत है। इसमें केवल गांव ही उभरकर सामने नहीं आता बल्कि ग्रामीण संवेदना के साथ ग्रामीण भाव बोध सजीव हो उठता है।"[2]

स्वतंत्रता के बाद गांव भारतीय गांव में विशेष कोई परिवर्तन नहीं आया है। देश में प्रजातंत्र की स्थापना के बाद गरीब और अमीर के बीच फासला बढ़ता ही जा रहा है। यह फासला कुमार कृष्ण की कविताओं में भी देखने को मिलता है। कुमार कृष्ण की कविताओं में गांव की बदलती सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक

स्थितियों का कवि ने सूक्ष्मता से विवेचन किया है। कुमार कृष्ण का जीवन गांव में व्यतीत हुआ है। ग्रामीण परिवेश और ग्रामीण संस्कृति को कवि कुमार कृष्ण ने नजदीक से देखा है। कवि ने ग्रामीण परिवेश को जिया है इसलिए कवि कुमार कृष्ण की कविताओं में स्वतः ही ग्रामीण परिवेश व ग्रामीण जीवन के प्रति विशेष लगाव देखने को मिलता है। डॉ० बच्चन सिंह कहते हैं, "कुमार कृष्ण की कविताओं में पहाड़ी गांव की तकलीफ है जो हर गांव की तकलीफ से बन जाती है फिर भी उनमें पहाड़ों का रंग है, जंगलों का दर्द है। इससे कविता का ताजापन और उसका बहुआयामी धरातल जीवंत हो उठा है।"[3]

डरी हुई जमीन कविता में कवि ने ग्रामीण सभ्यता और संस्कृति को प्रमुख रूप से उभारा है। सपनों के गांव कविता में कवि आजादी के वर्षों बाद भी भारतीय ग्रामीण की सच्ची तस्वीर दिखा रहे हैं। किस तरह देश में औद्योगिक विकास होने के पश्चात भारतीय गांव की स्थिति में आज भी कोई विशेष बदलाव नहीं आया है। कवि के शब्दों में,

" पचास बरसो से भी नहीं बदला
गांव का पनघट
नहीं बदली गांव की पगडंडियां
वैसे हर साल बंजर हो जाते हैं कुछ खेत
फिर भी उसी तरह बजती है आज भी
गांव में स्कूल की घंटी
उसी तरह बच्चे पढ़ते हैं
फटे टाट पर भारत का इतिहास।"[4]

स्वतंत्रता के लंबे समय के बाद आज भी गांव की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। जहां शहरों में बच्चे आधुनिक तकनीक से शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। वहीं ग्रामीण विद्यार्थी आज भी फटे टाट पर बैठने को मजबूर है।

कवि कुमार कृष्ण ने अपने काव्य में ग्रामीण लोगों की दिनचर्या का भी सुंदर चित्रण किया है। कवि कुमार कृष्ण ने गांवों की दोपहर, शाम, सुबह का चित्रण किया है। गांव में किस तरह से दिन की शुरुआत होती है, उसका सुंदर चित्रण कवि ने गांव : एक और गांव कविता में सुंदर चित्रण किया है,

"नारों से नहीं
मेरा गांव जागता है
बैलों की घंटियों से
पोस्टर की
तुरपचाल से
भिड़ना नहीं जानता
मेरा गांव
सिखर दोपहर में
बैलों के पांव तले
खलिहान के गर्म पत्थरों पर
पिघल जाता परछाई स्वयं।"[5]

कवि गांवों के दिनचर्या से वाकिफ है तभी पशुओं की आवाज का मतलब समझता हैं। गांवों के लिए पशुओं की आवाज का विशेष महत्व रहता है। जो समय बोध का प्रतीक है।

'खुरो की तकलीफ' कविता संग्रह में कवि कुमार कृष्ण ने ग्रामीण परिवेश का चित्रण किया है। कवि ग्रामीण परिवेश से गहराई से जुड़ा है। कवि ने पानी के पत्थर कविता में पहाड़ों का संपूर्ण ग्रामीण परिवेश को व्यक्त किया है। कवि के शब्दों में,

"मेरी कविता में जितनी बार आए है पहाड़
उतनी ही बार आए है मवेशी
पहाड़ों का कविता में चुपचाप चले आना
जमीन का पोर–पोर रिसना है।"[6]

कवि पहाड़ो को अपनी कविता में चित्रित करना चाहता है। कुमार कृष्ण की कविताएं पूरे ग्रामीण परिवेश का दर्द समेटते हुए आगे बढ़ती है। कवि ग्रामीण जीवन की तकलीफ से वाकिफ है। कवि किसानों का दर्द, मजदूरों का दर्द, मवेशी की पीड़ा, बैलों का दर्द को महसूस करता है। कुमार कृष्ण के शब्दों में,

"मैं लिखना चाहता हूं
खेतों का ताप
मिट्टी की बौखलाहट
बीज की बेचैनी
जमीन का उन्माद
सभी कुछ एक साथ
फोड़ना चाहता हूं पहाड़
कविता के शब्दों से।"[7]

कुमार कृष्ण की कविता में ग्रामीण परिवेश की प्रत्येक घटना व स्थिति के लिए विशेष स्थान है। कुमार कृष्ण का संबंध ग्रामीण परिवेश से है। उन्होंने गांव की वास्तविक स्थितियों को उन्होंने नजदीक से देखा है। उनकी कविताएं गांव की वास्तविक स्थितियों का चित्रण मिलता है। कुमार कृष्ण की कविताओं में ग्रामीण पारिवारिक संबंधों, उनके निजी रिश्ते का भी चित्रण देखने को मिलता है। 'आग जलाने वाला आदमी कविता, में कवि ने ग्रामीण परिवारिक रिश्ते की आत्मीयता का दर्शाया है। कवि के शब्दों में,

"बहुत छोटा था
तब जानता था मैं
दादा के कंबल में है कोई जादू
वह झट से सुला देते हैं बच्चों को
बहुत बार मैंने
रोती हुई बहन को
उसी कंबल में सोते देखा था।"[8]

ग्रामीण परिवेश से बाकिफ कवि ने गांव के पिछड़ेपन, कर्मठ, उपेक्षित गरीब ग्रामीणों का भी सुंदर चित्रण किया है। आज आजादी के वर्षों बाद भी ग्रामीण की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है, सूर्यास्त से पूर्व कविता में कवि ने ग्रामीणों की वास्तविक स्थिति का वर्णन किया है, कवि के शब्दों में,

" पोखर के गारे में धंसा आदमी वही मिलेगा
ठीक उसी जगह जहां मैं छोड़ आया था
कच्चे घड़े का स्वाद, आग की गंध
बीज की सुरक्षा में,

नहीं लौटी थी पानी लेकर औरतों की टोली।"[9]

गांव के लोगों को मुख्य धंधा खेती-वाड़ी होता है। दिनभर किसान अपने खेतों में काम करता है। छोटी गांव कविता में कवि ने गांव का चित्रण प्रस्तुत किया है। स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी गांव का विकास नहीं हो पाया है। इसका चित्रण कवि ने बखूबी किया है।

" उन की दुकान पर सर्दी में कांपता
बदरंग मिला मुझे कंबल में गांव
रोटी के अंदर, पानी के अंदर
जलता हुआ, गलत हुआ
पुस्तक में कटा-फटा गीतों में बंटा-बंटा
देश की तरक्की के कागज पर छपा हुआ
मिला मुझे दवा हुआ फाइल में गांव।"[10]

कुमार कृष्ण ग्रामीण पृ०भूमि के कवि है उनकी कविता की विशेषता स्थानीयता है। इसमें घर, पहाड़, नदिया, झीले ही नहीं अपितु पहाड़ी परिवेश के अनेक स्थानीय शब्द है, जैसे हल, हेंगा, हरकनी, कोदे की रोटी, पुवाल, लेवा, हंसिया, दराँती, कुदाल आदि अनेक ग्रामीण परिवेश से संबंधित शब्दों का प्रयोग हुआ है। इन शब्दों ग्रामीण लोगों के अभाव ग्रस्त जीवन, असीम जिजीविषा, सुख-दुख, भविष्य के प्रति गहरा विश्वास दिखाई देता है। कुमार कृष्ण की कविता का सही अर्थ जानने के लिए ग्रामीण परिवेश की जानकारी का होना आवश्यक है। ग्रामीण परिवेश जानने वाला व्यक्ति ही इनकी कविताओं का गहराई से जान सकता हैं। किसान और बैल के साथ जमीन को खेत में बदलते हुए महत्वपूर्ण औजार का नाम हेंगा का कवि ने हेंगा कविता में हेंगे की उपयोगिता का विवेचन किया है। हेंगा कृषि के लिए प्रयोग होता है। हेंगे के विषय में कवि कहता है,

" पेड़ जब भी होता है, हरकत में
वहा तब हल होता है या हेंगा
हेंगा जमीन के साथ घिसने वाले
काठ का नाम है
वह हर वक्त
बीज की जड़ों के बारे में सोचता है
हेंगे के साथ होना
जमीन के साथ होना है।"[11]

ग्रामीण परिवेश तथा जीवन की तलाश करने वाली हिमाचली हिंदी कविताओं के आलोचक रविचंद्र ने लिखा है जहां तक हिमाचल प्रदेश में ग्रामीण परिवेश के प्रतिबद्ध होने का प्रयास है या प्रश्न है कुमार कृष्ण अकेले कवि है कुछ अन्य कवियों ने भी गाँव के बारे में लिखा है, परंतु उन्होंने मात्र शहर में बैठकर गांव का चित्रण खींचा है।

कवि अपने परिवेश से भी गहराई से जुड़ा है। इसी का परिणाम कवि ने पहाड़ों की सुंदरता और भौगोलिक परिवेश का सुंदर चित्रण किया है। हिमाचल की राजधानी शिमला का परिचय कवि की कविता 'सीढ़ियों का शहर शिमला' कविता में देख सकते हैं। कवि के शब्दों में,

यह वही जगह है
जहां खत्म होती है रेल की लंगड़ी दौड़
सरकारी इजाजत के बिना सजती है

बर्फ की दुकाने
यायावर रोटी की जगह
फेफड़ो पर बात करके
जंगल निहारने लगते हैं।"[12]

कवि शिमला की सुंदरता का वर्णन कर रहा है। शिमला के प्राकृतिक नजारा देखकर पर्यटक भूख तक भूल जाते है। उसकी सुंदरता पर मुगध हो जाते है।

समकालीन हिंदी कविता में कवि कुमार कृष्ण ने कविता में ग्रामीण परिवेश का मार्मिक चित्रण किया है। जिसमें ग्रामीण लोगों की समग्र-जीवन-यर्था, संघर्ष गाथा, अनभिज्ञता, अंधविश्वास, मान्यता एवं आवश्यकताओं को कुमार कृष्ण ने बड़ी सूक्ष्मता से देखता हैं। गांव की छोटी-से छोटी, घटनाएं एवं गांव के जीवन यापन के लिए महत्व रखने वाली चीजों का कवि ने सूक्ष्मता से वर्णन किया है। बच्चन सिंह ने कुमार कृष्ण विषय में लिखते हैं, "कुमार कृष्ण की कविताओं में पहाड़ी गांव का तकलीफ है, जो हर गांव की तकलीफ बन जाती है। उनमें पहाड़ों का रंग है, जंगलों का दर्द है, इसमें कविता का बहु-आयामी धरातल जीवन्त हो उठा है।"[13] कवि के शब्दों में

मैं लिखना चाहता हूं
खेतों के ताप पर
मिट्टी की बौखलाहट
बीज की बेचैनी
जमीन का उन्माद
फोड़ना चाहता हूं पहाड़
कविता के शब्दों में।"[14]

इस प्रकार कवि कुमार कृष्ण का ग्रामीण जीवन के प्रति प्रेम और संस्कार के भाव प्रकट होते हैं। जिसको कवि कुमार कृष्ण कविता के माध्यम से प्रकट करता हैं। कवि ने गांवों के शहरीकरण पर भी चिंता व्यक्त की है। गांव में भी धीरे-धीरे शहरी संस्कृति का प्रवेश हो रहा है। गांव के लोगों की जीवन शैली में परिवर्तन आ रहा है। बदली जीवन शैली के कारण आज गांवों में भी बदलाव आ रहा है। अब गांव का चेहरा भी शहरी होने लगा है, अब गांव का रहन-सहन, वेश-भूषा, रीति-रिवाज में भी धीरे-धीरे बदलाव आ रहा है। आज गांवों में भी सांस्कृतिक विरासत के रूप में मूल्यवान चीजें जिनमें धार्मिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण माना जाता था। आज वे सभी चीजें गांवों से लुप्त हो रही है। 'खूबसूरत घर' कविता में कवि ने इन चीजों के लुप्त होने पर दुख प्रकट किया है। कवि के शब्दों में,

खूबसूरत घरों में नहीं रहते
पीतल के लोटे, कांसे के कटोरे
मिट्टी के घड़े, खील – पत्ताशें
वहां नहीं रहती गंगाजल की बोतल
गीता, रामायण
राधा - कृष्ण - शिव के कैलेंडर
खूबसूरत घरों में
उग रहते है तमाम तरह के विदेशी फूल
खूबसूरत घरों में नहीं उगता तुलसी का पौधा।"[15]

धार्मिक दृष्टि से मूल्यवान इन चीजों का घर से विलुप्त होना से कवि दुखी होता है। आधुनिक शहरी संस्कृति के कारण आज मानवीय तथा अतिथि सत्कार जैसे मूल्यों का ह्रास हो रहा है। हमारी ग्रामीण संस्कृति अतिथि को भगवान के समान मानती है। परंतु आज मानवीय रिश्तो की कोई अहमियत नहीं है। कभी के शब्दों में

खूबसूरत घरों में
कोई नहीं करता किसी का इंतजार
खूबसूरत घरों के लोग करते हैं
मनुष्य से अधिक अपने सामान से प्यार।"[16]

आज रिश्तो की गरमाहट देखने को नहीं मिलती, आज मनुष्य से अधिक महत्व सामान को दिया जा रहा है।

कवि कुमार कृष्ण ने ग्रामीण विकास के लिए बनाई जाने वाली योजनाओं और राजनेताओं पर भी व्यंग्य किया है। किस तरह से सरकार की योजनाएँ में ग्रामीण विकास का दावा किया जाता है। परंतु वे ग्रामीण विकास की योजनाएँ धरातल पर नहीं पहुंचती। आज भी गांव रोटी, कपड़ा, स्वास्थ्य, शिक्षा, मकान जैसे सभी मूलभूत सुविधाएं आज भी इन लोगों से कोसों दूर है। आजादी के बाद देश में हर साल राष्ट्रीय पर्वों पर हम अपनी स्वतंत्रता का उत्सव मानते हैं। नेतागण बधाई देते हैं। लेकिन देश की विकास की असलियत छिपी नहीं है। इसलिए वह इन अवसरों पर होने वाले दिखावे का चित्रण कर नेताओं पर व्यंग्य करता है,

हर तरफ मौसम खुशामद का ही कुछ वौश गया
अब लियाकत हर जगह ही खुशबू भी खोने लगी
काठ की मेजों पे सौ – सौ शख्स लेटे हुए
कागजी सब योजनाएं खुद पे ही रोने लगी
चंद लोगों ने दशजों में छुपा रखा है देश
सांप सी नस्लें ही उनकी हर जगह सोने लगी।"[17]

स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी देश के गांव की वर्तमान स्थिति के लिए कवि शासक वर्ग को उत्तरदायी मानता है। राजा का मकसद जनता की अपेक्षाओं और जरूरतों का पूरा करने के लिए ईमानदारी और निष्ठा से काम होना चाहिए था। परंतु शासक अपने स्वार्थ में ही मशमूल दिखाई देता है। आज सही नेतृत्व न मिलने के कारण देश निराश है। कवि ने सूर्य कविता में प्रशासक वर्ग की आराम परस्त जिंदगी को दिखाया गया है। सूर्य को संबोधित कर कवि इसी ओर संकेत कर रहा है।

तुम आये गाय के मन से उतर आया दूध
राजा के हाथ की कैंची चीरने लगी
अनगिनत उद्घाटन
दिनभर जंग लड़ता रहा एक आदमी
दूसरे आदमी ने प्रार्थना की तुम्हारे स्वागत में,
तीसरे ने तालियां बजाई
राजा के शरीर की मालिश में
बिता दिया पूरा दिन चौथे आदमी ने
तुम्हारे जाने से पहले ही
राजा सो गया।"[18]

यहां पर राजा के सोने से प्रशासन वर्ग की अक्षमता पर गंभीर चिंतन किया गया है। किस प्रकार प्रशासन सोता रहता है। लोगों की समस्याओं पर उनका कोई ध्यान नहीं रहता और प्रशासन अपनी सुख-सुविधा के लिए

सत्ता का प्रयोग करता है। जब प्रशासन अपने दायित्वों का सही से निर्वाहन नहीं करेगा तो देश का विकास कैसे संभव हो सकता है।

कवि कुमार कृष्ण ने पर्यावरण विमर्श को भी अपनी कविताओं में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। आंगन के पेड़ कविता के माध्यम से कवि ने मानवीय और प्रकृति के संबंधों को व्यक्त किया है। कवि ने पेड़ों के महत्व को दर्शाया है कवि के शब्दों में,

" आंगन का पेड़ सूखता लेवे के कपड़े
पक्षियों को पानी पिलाता आंगन का पेड़
कभी परिहत, कभी पाल की
कभी हेंगा, कभी हरकनी
गुल्ली - डंडा खेलता आंगन का पेड़
आंगन का पेड़ है, परिवार की मिठास
बसंत की महक
जेठ का सुकून
औरों की रोटी
सावन का झूला है।"[19]

कवि ने मनुष्य के जीवन में पेड़ों के महत्व का दर्शाया है। कवि विकास के नाम पर हो रहे पर्यावरण के ह्रास से दुखी है। विकास के नाम पर जंगली, पेड़ो और पहाड़ों को काटा जा रहा है। पहाड़ों क्षेत्र में बन रहे फोरलेन और पनविधुत योजनाओं से पर्यावरण को नुकसान हो रहा है। इससे कवि चिंतित हैं। 'टिहरी का बांध' कविता ने कवि ने इस दुख को प्रकट किया है,

पता नहीं वह कौन - सा दिन होगा
फूटा होगा जिस समय किसी काठ की दराज में
टिहरी के बांध के बीच
डूब गए अनगिनत दादियों के
तुलसी के चबूतरे
डूब गए आंगन, आंगन के पेड़
कराहते रहे घर, रोती रही मंदिरो की घंटियां
सिसकते रहे पेड़ो के झूले
निगलता रहा बांध खूबसूरत टेहरी
अजगर की तरह खूनी जबड़ों में।"[20]

कवि कुमार कृष्ण ने अपनी कविताओं में ग्रामीण स्त्री विमर्श को भी अभिव्यक्त किया है। पत्नी के लिए एक कविता में कवि ने गृहस्थ चलाने के लिए पत्नी की महत्वपूर्ण भूमिका को दर्शाया है। कवि ने इस कविता में पत्नी के प्रति गहरी संवेदना और आत्मीय रिश्ते का प्रमाण प्रस्तुत किया है।
कवि के शब्दों में,

" मुझसे बेहतर जानती है
रोटियां पकाने वाली औरत
भूख का व्याकरण
प्यार की वर्णमाला।"[21]

कवि कुमार कृष्ण ने स्त्री को संघर्ष करती हुई मां के रूप में दिखाया है। मां की साधना त्याग-शक्ति को कवि कुमार कृष्ण हमेशा बचा कर रखना चाहता हैं,

" जब कभी फुर्सत मिलती है
तो मां के बारे में सोचता हूं
वह कभी घंटी तो कभी हारमोनियम लगती है
या ली और कटोरी बजाती हुई मां
कभी हंसुआ तो कभी दराती लगती है
घास के गट्ठर में दबी हुई था।"[22]

कवि कुमार कृष्ण चिंतित है आज सुविधा भोगी मनुष्य के पास मां के बारे में सोचने का समय नहीं है। कवि ने मां के रिश्ते को सर्वोपरि माना है। कवि कुमार कृष्ण ने हरिपुरधार कविता में नारी के दैविक और विद्रोह रूप भी दिखाया गया है। आज के समय में नारी अपने अधिकारों और कर्तव्य के प्रति जागरूक है। कवि इस कविता में अभिव्यक्त किया गया है।

" बुरास के घने जंगल में लाल फूलों से लदी
इस धरती की सबसे खूबसूरत धार है हरिपुरधार
हरिपुरधार है आस्थाओं का अस्पताल अस्पताल
महाशक्ति का उत्तुग शिखर
वह है नारी का सर्वोच्च सम्मान
किसी अबला के आक्रोश की आग है हरिपुरधार।"[23]

निष्कर्ष कुमार कृष्ण पिछले पैंतालीस वर्षों से कविता लिख रहे हैं। कुमार कृष्ण मूलत: ग्रामीण संवेदना के कवि है। उनकी कविताओं में ठेठ किसानी चिन्ता, चितन और चेतना है। उनकी सभी कविता संग्रहो में ग्रामीण समाज के आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिवेश का चित्रण हुआ है। कुमार कृष्ण की कविता में ग्रामीण परिवेश की प्रत्येक घटना व स्थिति के लिए विशेष स्थान है। कुमार कृष्ण का संबंध एक साधारण ग्रामीण परिवेश से रहा है। जिंदगी की वास्तविक स्थितियों को उन्होंने देखा व परखा है उनकी कविता इन्हीं वास्तविकता का मूल आधार गांव और उसमें बसा आदमी है। कुमार कृष्ण की कविताओं में ग्रामीण साहस, मानवीय बोध विद्यमान है।

संदर्भ सूची

1. भारतेंदु हरिश्चंद्र के साहित्य में भाव बोध स्थापनाएं और प्रतिस्थापनाएं,
2. डॉ वीरेंद्र अग्रवाल
3. कुमार कृष्ण के काव्य में ग्रामीण बोध पुस्तक भूमिका से
4. कुमार कृष्ण की कविता में ग्रामीण बोध, डॉ शरत भूमिका से
5. कुमार कृष्ण पहाड़ों पर नदियों के घर, पृ० - 28
6. डरी हुई जमीन, पृ० - 6
7. कुमार कृष्ण मेरी कविताएं, पृ० - 19
8. कुमार कृष्ण पहाड़ों पर नदियों के घर, पृ० - 64
9. कुमार कृष्ण डरी हुई जमीन, पृ० - 19
10. कुमार कृष्ण डरी हुई जमीन, पृ० - 26
11. खुरो को तकलीफ पृ० - 86
12. कुमार कृष्ण खुरो को तकलीफ पृ० - 62

13. कुमार कृष्ण, मेरी कविताए बच्चन सिंह का मत
14. कुमार कृष्ण खुरो को तकलीफ पृ० - 24
15. कुमार कृष्ण पहाड़ों पर नदियों के घर, पृ० - 19
16. कुमार कृष्ण पहाड़ों पर नदियों के घर, पृ० - 10
17. कुमार कृष्ण डरी हुई जमीन, पृ० - 39
18. कुमार कृष्ण धमर, पृ० - 44
19. कुमार कृष्ण धमर, पृ० - 29
20. कुमार कृष्ण इस भयानक समय में, पृ० - 241
21. कुमार कृष्ण पहाड़ों पर नदियों के घर, पृ० -12
22. कुमार कृष्ण पहाड़ों पर नदियों के घर, पृ० - 70
23. कुमार कृष्ण उम्मीद का पेड़ पृ० - 212

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 105-110
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कबीर और हरिशंकर परसाई: समाज में व्यंग्य और विद्रोह की परंपरा

इन्दु कुमारी
शोधार्थी हिंदी विभाग ,
सोना देवी, विश्वविधालय, घाटशिला झारखंड

सारांश

यह शोध-पत्र "कबीर और हरिशंकर परसाई: समाज में व्यंग्य और विद्रोह की परंपरा" विषय पर आधारित है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह जानना है कि किस प्रकार कबीर और हरिशंकर परसाई ने अपने-अपने युगों में व्यंग्य और विरोध की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए सामाजिक परिवर्तन के माध्यम बने।

कबीर ने अपने युग के धार्मिक अंधविश्वासों, जातिगत भेदभाव और सामाजिक रूढ़ियों पर तीखा व्यंग्य किया। उनकी लोकभाषा में रची रचनाएँ मानवता, समानता और नैतिक साहस का संदेश देती हैं। दूसरी ओर, हरिशंकर परसाई ने आधुनिक भारतीय समाज और राजनीति में व्याप्त पाखंड, भ्रष्टाचार तथा नैतिक अवनति को अपने तीक्ष्ण व्यंग्य के माध्यम से उजागर किया। उनका व्यंग्य केवल हास्य उत्पन्न करने का साधन नहीं है, बल्कि वह सामाजिक यथार्थ की गहरी पड़ताल और आलोचना का सशक्त माध्यम बन जाता है। परसाई की रचनाएँ व्यक्ति के अंतर्निहित स्वार्थ, समाज की बनावटी नैतिकता और संस्थागत विसंगतियों को निर्भीकता से सामने लाती हैं।

परसाई का साहित्य सामाजिक चेतना और जनजागरण का प्रतीक है। कबीर और परसाई दोनों ने व्यंग्य को विद्रोह और सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम बनाते हुए सत्य, समानता और सुधार की भावना को जीवित रखा।

यह अध्ययन इस तथ्य पर बल देता है कि व्यंग्य केवल नकारात्मक आलोचना का माध्यम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संवाद और परिवर्तन को प्रेरित करने वाली एक जागरूक शक्ति भी है।

मुख्य शब्द: कबीर, हरिशंकर परसाई, व्यंग्य, विद्रोह, सामाजिक परिवर्तन, समानता और जनजागरण ।

1. परिचय

व्यंग्य साहित्य का सबसे प्रभावशाली पक्ष यह है कि वह समाज में व्याप्त विसंगतियों, अन्यायों और पाखंडों के विरुद्ध अप्रत्यक्ष किन्तु सशक्त स्वर में प्रतिरोध दर्ज करता है। यह केवल हास्य उत्पन्न करने का साधन नहीं, बल्कि समाज की नैतिक चेतना को झकझोरने का संवेदनशील माध्यम भी है। भारतीय साहित्य में दो ऐसे विशिष्ट रचनाकार हुए हैं जिन्होंने अपने-अपने काल में व्यंग्य को जनजागरण और विद्रोह का रूप दिया — संत कवि कबीर और आधुनिक हिंदी के प्रख्यात व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई।

कबीर का व्यंग्य धार्मिक आडंबर, सामाजिक पाखंड और जातिगत भेदभाव पर केंद्रित था। अपनी साखियों और दोहों के माध्यम से उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि सच्चा धर्म किसी कर्मकांड या बाह्य प्रदर्शन में नहीं, बल्कि मानवता और प्रेम में निहित है। इसके विपरीत, हरिशंकर परसाई ने स्वतंत्रता-उत्तर भारत के राजनीतिक भ्रष्टाचार, नैतिक पतन और सामाजिक दुराचार पर तीखा प्रहार किया। दोनों ही लेखकों के व्यंग्य में एक साझा तत्व स्पष्ट झलकता है — अन्याय के प्रति निर्भीक विरोध।

कबीर और परसाई यह सिद्ध करते हैं कि समाज में परिवर्तन केवल आलोचना से नहीं, बल्कि आत्ममंथन और साहसी विद्रोह से संभव है। इसीलिए, उनका व्यंग्य एक जीवंत सामाजिक संवाद के रूप में कार्य करता है — जो हास्य के माध्यम से गंभीर प्रश्नों को समाज के सम्मुख रखता है और व्यक्ति को आत्मचिंतन के लिए प्रेरित करता है।

2. ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि

2.1 कबीर का युग और सामाजिक संदर्भ

कबीर (1398–1518) का जन्म उस मध्यकालीन भारत में हुआ जब समाज गहरे धार्मिक अंधविश्वासों, जातिगत विभाजनों और कर्मकांडों में उलझा हुआ था। उस समय हिंदू और मुस्लिम दोनों ही समुदायों में बाह्य आडंबर और पाखंड की जड़ें अत्यंत मजबूत थीं। सामाजिक असमानता, अस्पृश्यता और धार्मिक संकीर्णता ने मानवीय एकता को गंभीर रूप से विभाजित कर दिया था।

ऐसे समय में कबीर ने अपने जीवनानुभव और लोकचेतना के बल पर इन अन्यायपूर्ण व्यवस्थाओं पर प्रहार किया। उन्होंने तीक्ष्ण व्यंग्य के माध्यम से धर्म के खोखले आडंबरों और कपटपूर्ण परंपराओं को उजागर किया। उनका प्रसिद्ध दोहा —

> "मस्जिद ऊपर मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय?
> सुनता जो गूंगा बहरा, तो क्यों देता सबको नाय?"

धार्मिक पाखंड पर प्रहार करते हुए यह दर्शाता है कि ईश्वर की प्राप्ति बाह्य आडंबरों से नहीं, बल्कि सच्ची भक्ति और मानवीय संवेदना से होती है।

कबीर की भाषा सरल, लोक जीवन से जुड़ी और सहज थी — साखी, सबद और पदों के रूप में। इसी सादगी ने उनके विचारों को जन-जन तक पहुँचाया। उनके व्यंग्य ने न केवल धर्म की संकीर्णता पर प्रहार किया बल्कि सामाजिक समानता, नैतिक साहस और मानवतावादी दृष्टिकोण का भी उद्घोष किया। इस प्रकार, कबीर का व्यंग्य धार्मिक आलोचना के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन का घोष बन गया।

2.2 हरिशंकर परसाई का युग और सामाजिक संदर्भ

हरिशंकर परसाई (1924–1995) बीसवीं शताब्दी के उन प्रमुख साहित्यकारों में हैं जिन्होंने स्वतंत्रता के उपरांत भारतीय समाज में उत्पन्न नई सामाजिक और नैतिक विकृतियों को अपने व्यंग्य के माध्यम से उजागर किया। लोकतंत्र की स्थापना के बावजूद राष्ट्र में भ्रष्टाचार, अवसरवाद, राजनीतिक स्वार्थ और नैतिक पतन की प्रवृत्तियाँ तीव्रता से उभरीं। आदर्शों का स्थान दिखावे और पाखंड ने ले लिया था।

परसाई ने इस परिस्थितिजन्य पतन को अपनी रचनाओं में गहराई से उकेरा। उन्होंने व्यंग्य को केवल हास्य का उपकरण नहीं, बल्कि सामाजिक विश्लेषण और चेतना-जागरण का साधन बनाया। उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ — 'भूत के पांव पीछे', 'तबली बजाओ', 'विकृतियों के बीच', और 'सदाचार का ताबीज' — उस समाज का दर्पण हैं जहाँ व्यक्ति और व्यवस्था दोनों नैतिक रूप से जड़ हो चुके थे।

उनके व्यंग्य में हास्य के माध्यम से एक गहरा चिंतन छिपा है। पाठक को हँसाते हुए वे उसे आत्ममंथन के लिए विवश करते हैं। यही उनकी रचनाशैली की सबसे बड़ी सफलता है — जहाँ व्यंग्य मनोरंजन का माध्यम न होकर सामाजिक आत्मावलोकन का साधन बन जाता है।

3. कबीर में व्यंग्य और विद्रोह

कबीर के व्यंग्य की विशेषता उसकी सहजता, स्पष्टता और निर्भीकता है। उन्होंने सत्य को बिना किसी औपचारिकता या भय के सीधे समाज के सामने रख दिया। उनका व्यंग्य उस युग के धार्मिक ठेकेदारों, पाखंडी साधुओं और जातिवादी विचारधाराओं पर करारा प्रहार था, जिन्होंने धर्म को व्यवसाय और शोषण का माध्यम बना दिया था।
कबीर के दोहे —
> "पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय,
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।"
ज्ञान के नाम पर फैलाए जा रहे दिखावे पर तीखा व्यंग्य करते हैं। कबीर यह स्पष्ट करते हैं कि सच्चा ज्ञान ग्रंथों में नहीं, बल्कि प्रेम, करुणा और मानवीय संवेदना में निहित है।

उनका विद्रोह केवल धार्मिक ढाँचे तक सीमित नहीं था, बल्कि उसने सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों की स्थापना की दिशा में कार्य किया। उनका व्यंग्य सुधारात्मक चेतना से युक्त है — जो समाज को नकारने के बजाय उसे जाग्रत और परिवर्तित करने का प्रयास करता है।
> "जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान,
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।

इन पंक्तियों में कबीर सामाजिक समानता, सहिष्णुता और विवेकपूर्ण जीवन का संदेश देते हैं। उनका व्यंग्य युग की जड़ सामाजिक संरचना को झकझोरने वाला था — जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उनके समय में।

4. हरिशंकर परसाई में व्यंग्य और विद्रोह

हरिशंकर परसाई का व्यंग्य आधुनिक भारतीय समाज के अंतःकरण का दर्पण है। उन्होंने स्वयं कहा था —
> "मैं व्यंग्य इसलिए लिखता हूँ कि समाज को उसकी सड़ी हुई परतें दिखा सकूँ।"

उनकी रचनाएँ — "भूत के पांव पीछे", "भाषा और व्यंग्य", "तबली बजाओ", और "ठिठुरता हुआ गणतंत्र" — यह प्रमाणित करती हैं कि उनके लिए व्यंग्य केवल हास्य का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक सच्चाई को प्रतिबिंबित करने का औजार था।

परसाई ने समाज की हर असमानता और कपट पर कठोर टिप्पणी की — चाहे वह धर्म के नाम पर ठगी हो, राजनीति की अनैतिकता हो या समाज की झूठी सज्जनता। उनके पात्र सामान्य जनजीवन से जुड़े हैं — कस्बों, गलियों और छोटे शहरों में जीने वाले वे लोग जो व्यवस्था की विसंगतियों से प्रतिदिन जूझते हैं।

उनका व्यंग्य हँसी के भीतर छिपे आक्रोश का प्रतीक है। उदाहरणस्वरूप, 'भूत के पांव पीछे' में आधुनिक मनुष्य के नैतिक पतन को रूपक के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। उनके लेखन में एक समाज-सुधारक चेतना विद्यमान है, जो पाठक को सोचने, प्रश्न करने और परिवर्तन के लिए प्रेरित करती है।

5. तुलनात्मक विश्लेषण: कबीर और हरिशंकर परसाई

कबीर और हरिशंकर परसाई हिंदी साहित्य के दो ऐसे अप्रतिम व्यंग्यकार हैं, जिन्होंने अपने-अपने काल में समाज की विकृतियों, अन्यायों और विसंगतियों पर तीखा प्रहार किया। दोनों का उद्देश्य समाज को उसकी वास्तविक

स्थिति का दर्पण दिखाना था, यद्यपि उनकी भाषा, शैली, दृष्टिकोण और प्रयोजन में स्पष्ट भिन्नताएँ विद्यमान हैं। निम्नलिखित विश्लेषण में इन दोनों रचनाकारों के विविध पक्षों की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की जा रही है।

1. युग और सामाजिक संदर्भ

कबीर मध्यकालीन भारत के ऐसे संत कवि थे, जिनका समय धार्मिक आडंबर, पाखंड और जातिगत विषमता से घिरा हुआ था। वे ऐसे समाज में प्रकट हुए जहाँ धर्म के नाम पर कट्टरता और सामाजिक अन्याय गहराई तक फैले थे। उनके लिए यह युग सत्य और आध्यात्मिकता की खोज का काल था, जिसमें उन्होंने साधारण जनता को अंधविश्वासों से मुक्त करने का प्रयास किया।

इसके विपरीत, हरिशंकर परसाई स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के आधुनिक भारत के साहित्यकार थे। उस समय देश राजनीतिक अस्थिरता, नैतिक पतन, अवसरवाद और प्रशासनिक भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं से जूझ रहा था। उनका लेखन उस युग की सामाजिक चेतना और नैतिक संकट का दर्पण बनकर उभरा।

2. व्यंग्य का उद्देश्य और प्रमुख विषय

कबीर का व्यंग्य मुख्यतः धार्मिक अंधविश्वासों, जातिगत भेदभाव और रूढ़िवादी परंपराओं के विरोध पर केंद्रित था। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से मानवता, प्रेम और समानता का संदेश दिया। उनके दोहों में एक ऐसी दृष्टि झलकती है, जो ईश्वर की खोज को मानवीय संवेदना से जोड़ती है। उनके अनुसार सच्चा धर्म वह है जो मनुष्य को एकता और करुणा की ओर ले जाए।

हरिशंकर परसाई का व्यंग्य सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों को उजागर करने का माध्यम था। उनके लेखों का उद्देश्य समाज में व्याप्त पाखंड, नैतिक गिरावट और प्रशासनिक अक्षमता को प्रकट करना था। परसाई का व्यंग्य केवल हँसी नहीं पैदा करता, बल्कि पाठक को गहराई से सोचने और सुधार की दिशा में कदम बढ़ाने को प्रेरित करता है।

3. भाषा और शैली

कबीर की भाषा सहज, लोकभाषा-आधारित और प्रतीकात्मक थी। उन्होंने दोहे, साखी और सबद जैसे काव्य रूपों का उपयोग किया, जिनकी सरलता के भीतर गहन अर्थ निहित थे। उनकी रचनाएँ जन-संवाद की शैली में थीं, जिससे उनका संदेश सीधे सामान्य जन तक पहुँचा।

परसाई की भाषा आधुनिक हिंदी पर आधारित थी — कथात्मक, व्यंग्यात्मक और विश्लेषणात्मक। उन्होंने निबंध, संस्मरण और कथा जैसी विविध विधाओं का प्रयोग किया, जिनमें वे सामाजिक सत्य को तर्कसंगत ढंग से प्रस्तुत करते हैं। उनकी लेखन शैली ने व्यंग्य को आधुनिक युग में एक प्रभावी सामाजिक उपकरण बना दिया।

4. व्यंग्य का स्वर और प्रभाव

कबीर के व्यंग्य में आध्यात्मिक विद्रोह और नैतिक जागृति की ध्वनि सुनाई देती है। उनके शब्दों में एक ऐसी शक्ति थी जो समाज को आत्मनिरीक्षण के लिए बाध्य करती थी। उनके व्यंग्य ने भक्ति आंदोलन को नई दिशा दी और धार्मिक-सामाजिक पुनर्जागरण का आधार बना।

परसाई के व्यंग्य का स्वर तर्कपूर्ण और तीखा था। वे समाज के विरोधाभासों को हँसी के आवरण में इस तरह प्रकट करते हैं कि पाठक मनोरंजन के साथ-साथ विचार करने को विवश हो जाता है। उनका लेखन आधुनिक भारत की सामाजिक चेतना को झकझोरने में अत्यंत प्रभावशाली सिद्ध हुआ।

5. उद्देश्य और प्रभाव क्षेत्र

कबीर का मूल लक्ष्य था — समाज को प्रेम, करुणा और समानता के सूत्र में बाँधना। उन्होंने जाति, धर्म और कर्मकांड के बंधनों से मुक्त एक मानवीय समाज की कल्पना की। उनका प्रभाव धार्मिक-सामाजिक पुनर्जागरण के रूप में दूरगामी रहा।

दूसरी ओर, परसाई का उद्देश्य सामाजिक सुधार और जागरूकता फैलाना था। उन्होंने भ्रष्ट व्यवस्था, झूठी नैतिकता और राजनीतिक अवसरवाद को व्यंग्य के माध्यम से चुनौती दी। उनका प्रभाव आधुनिक भारत के सामाजिक-राजनीतिक विमर्श तक फैला हुआ देखा गया।

6. समग्र मूल्यांकन

कबीर और परसाई, दोनों की रचनाएँ अपने-अपने युग की सच्चाइयों, असमानताओं और मानव संघर्षों का प्रतिनिधित्व करती हैं। उनके व्यंग्य ने न केवल समाज की कमियों को उजागर किया, बल्कि भीतर से परिवर्तन की भावना भी जगाई।

कबीर ने आध्यात्मिक और नैतिक स्तर पर विद्रोह किया, जबकि परसाई ने सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों पर प्रहार किया।

दोनों का लेखन यह प्रमाणित करता है कि व्यंग्य केवल हास्य नहीं, बल्कि समाज सुधार का एक गहन औजार है।

6. व्यंग्य का सामाजिक प्रभाव

कबीर और परसाई, दोनों के व्यंग्य ने अपने-अपने कालखंड में समाज को विचारशील बनाया।

कबीर की व्यंग्यात्मक रचनाओं ने भक्ति आंदोलन को एक नई दिशा प्रदान की — जहाँ ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग जाति, धर्म या कर्मकांड से नहीं, बल्कि मानवता और प्रेम से होकर गुजरता है।

वहीं दूसरी ओर, परसाई के व्यंग्य ने लोकतांत्रिक भारत के नागरिकों को यह चेताया कि केवल राजनीतिक स्वतंत्रता पर्याप्त नहीं, बल्कि नैतिकता, पारदर्शिता और ईमानदारी भी आवश्यक हैं।

कबीर के दोहों और साखियों ने लोकभाषा के माध्यम से ग्राम्य समाज को प्रभावित किया, जबकि परसाई के निबंध और लेखन पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के जरिए मध्यवर्गीय समाज तक पहुँचे।

दोनों की अभिव्यक्ति ने समाज में संवाद और आत्मचिंतन की प्रक्रिया को जन्म दिया — और यही किसी प्रभावशाली व्यंग्य की सबसे बड़ी पहचान है।

7. निष्कर्ष

कबीर और हरिशंकर परसाई दो ऐसे युगप्रवर्तक लेखक हैं जिनके व्यंग्य में समाज की पीड़ा, विद्रोह और सुधार की चेतना स्पष्ट दिखाई देती है।

दोनों ने अपने युग में फैली सामाजिक विकृतियों और पाखंड पर निर्भीकता से प्रहार किया।

कबीर का व्यंग्य धार्मिक दिखावे के विरुद्ध था, जबकि परसाई का व्यंग्य राजनीतिक और सामाजिक पाखंड पर केंद्रित था।

दोनों की रचनाओं में समानता यह है कि वे केवल आलोचना तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि समाज को सुधार की दिशा में अग्रसर होने का संदेश भी देती हैं।

उनका व्यंग्य "हँसी के माध्यम से चेतावनी देने वाली शक्ति" बन जाता है — जो व्यक्ति और समाज दोनों को आत्ममंथन के लिए बाध्य करता है।

आज के दौर में, जब समाज पुनः भ्रष्टाचार, पाखंड और भेदभाव की गिरफ्त में है, तब कबीर और परसाई की व्यंग्य परंपरा पहले से कहीं अधिक जीवंत और प्रासंगिक प्रतीत होती है।

संदर्भ सूची

1. **आचार्य, आर. (2015).** *भारतीय व्यंग्य साहित्य का इतिहास*. पटना: साहित्योदय प्रकाशन।
2. **कबीर. (2005).** *कबीर ग्रंथावली (सं. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी)*. नई दिल्ली: राष्ट्रीय पुस्तक न्यास।
3. **मिश्र, ए. एन. (2018).** *समकालीन हिंदी साहित्य में सामाजिक चेतना*. राँची: झारखंड विश्वविद्यालय प्रकाशन।
4. **परसाई, ह. (1971).** *भूत के पांव पीछे*. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
5. **परसाई, ह. (1975).** *तबली बजाओ*. इलाहाबाद: किताब घर पब्लिकेशन।
6. **राय, एम. (2020).** *व्यंग्य और सामाजिक परिवर्तन: एक अध्ययन*. वाराणसी: हिंदी अकादमी प्रेस।
7. **सिंह, एस. (2017).** *कबीर और आधुनिकता के संदर्भ*. नई दिल्ली: राजपाल एंड संस।

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 111-115
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

उराँव समाज की सामाजिक संस्था 'परहा पंचायत' का रूपांतरण: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

पूर्णिमा किस्पोट्टा
शोधार्थी
इतिहास विभाग
राधा गोविन्द विश्वविद्यालय, रामगढ़ (झारखण्ड)

सारांश :

उराँव जनजाति भारत की प्रमुख जनजातियों में से एक है, जिसका सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन अपनी पारंपरिक संस्थाओं एवं सामूहिक संरचनाओं पर आधारित रहा है। इनमें "परहा पंचायत" एक महत्वपूर्ण संस्था है, जो उराँव समाज की सामाजिक, न्यायिक और सांस्कृतिक व्यवस्था की आधारशिला रही है। यह पंचायत न केवल विवाद निपटान का माध्यम थी, बल्कि सामाजिक अनुशासन, धार्मिक आचरण और सांस्कृतिक परंपराओं के संरक्षण का केंद्र भी थी। परंपरागत रूप से परहा पंचायत में परहा मांझी, देकुआ, पाहन, गोरैत और पंच जैसे पदाधिकारी समाज के विभिन्न कार्यों का संचालन करते थे। निर्णय सामूहिक सहमति पर आधारित होते थे और उद्देश्य सामाजिक समरसता को बनाए रखना होता था।

किन्तु आधुनिक शिक्षा, धर्मांतरण, पंचायत राज व्यवस्था, राजनीतिक हस्तक्षेप, शहरीकरण और नई सामाजिक चेतना ने इस संस्था की पारंपरिक भूमिका को कमजोर कर दिया है। अब परहा पंचायत एक सक्रिय न्यायिक संस्था की बजाय सांस्कृतिक प्रतीक बनकर रह गई है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह संस्था परंपरा और आधुनिकता के संक्रमण काल की प्रतिनिधि है। वर्तमान में परहा पंचायत का पुनर्जीवन सांस्कृतिक अस्मिता और सामुदायिक एकता के संरक्षण के लिए आवश्यक है।

इस शोध का निष्कर्ष यह है कि सामाजिक परिवर्तन अवश्यंभावी है, परंतु परंपरागत संस्थाओं जैसे परहा पंचायत का संरक्षण उराँव समाज की सांस्कृतिक स्थायित्व और पहचान के लिए अत्यंत आवश्यक है।

कुंजी शब्द: उराँव जनजाति, परहा पंचायत, समाजशास्त्रीय विश्लेषण, सांस्कृतिक परिवर्तन।

परिचय और वैचारिक रूपरेखा

भारत की जनजातीय संरचना में उराँव जनजाति का विशिष्ट स्थान है। झारखण्ड, छत्तीसगढ़, ओडिशा और मध्य प्रदेश के अनेक अंचलों में यह जनजाति निवास करती है। झारखण्ड के राँची, गुमला, लोहरदगा, लातेहार, सिमडेगा और खूंटी जिले उराँव समाज के सांस्कृतिक एवं सामाजिक केंद्र माने जाते हैं।उराँव जनजाति अपनी पारंपरिक सामाजिक संस्थाओं, लोक-रीतियों, सामूहिकता की भावना और आत्मनिर्भर सामाजिक व्यवस्था के लिए

जानी जाती है। ऐसी ही एक सशक्त संस्था है **'परहा पंचायत'**, जो उराँव समाज की सामाजिक, न्यायिक और सांस्कृतिक जीवन-व्यवस्था की आधारशिला रही है।

परहा पंचायत केवल प्रशासनिक संस्था नहीं, बल्कि यह समुदाय की एकता, सहयोग और परंपरा की प्रतीक रही है। इस पंचायत के माध्यम से समाज अपने आंतरिक विवादों का निपटारा, सामाजिक अनुशासन का नियंत्रण, और सांस्कृतिक परंपराओं का संरक्षण करता रहा है।

किन्तु आधुनिकता, शिक्षा, ईसाई धर्म-प्रभाव, सरकारी प्रशासनिक ढाँचों, पंचायत राज व्यवस्था और शहरीकरण ने इस पारंपरिक संस्था की संरचना, कार्यप्रणाली और भूमिका में गहरे परिवर्तन ला दिए हैं। यही परिवर्तन इस शोध पत्र का मूल विषय है।

अनुसंधान की आवश्यकता और उद्देश्य

उराँव समाज की परंपरागत पंचायत प्रणाली अब धीरे-धीरे समाप्ति की ओर जा रही है या उसका रूपांतरण आधुनिक स्वरूप में हो रहा है। इस संस्था के माध्यम से जो सामाजिक समरसता, न्याय और सहयोग का भाव था, वह अब सरकारी तंत्र, राजनीतिक हस्तक्षेप और कानूनी औपचारिकताओं के कारण प्रभावित हुआ है।

इस अध्ययन के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं —

1. परहा पंचायत की पारंपरिक संरचना और कार्यप्रणाली को समझना।
2. उराँव समाज में परहा पंचायत की सामाजिक भूमिका का विश्लेषण करना।
3. समाजशास्त्रीय दृष्टि से परंपरा और परिवर्तन के संबंधों को स्पष्ट करना।

परहा पंचायत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं सामाजिक भूमिका

परहा पंचायत का उद्भव उराँव समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास में अत्यंत प्राचीन है। "परहा" शब्द का अर्थ है - कई गाँवों का समूह। प्रत्येक गाँव की अपनी ग्राम पंचायत होती थी, जिसे 'गाँव पंचायत' या 'मांझी पंचायत' कहा जाता था। ऐसे कई गाँव मिलकर "परहा" का निर्माण करते थे।

परहा पंचायत का मुखिया **"परहा राजा"** या **"परहा प्रमुख"** कहलाता था। उसके साथ सहायक पदाधिकारी होते थे —

- **परहा मांझी (गाँव प्रमुख):** 'मांझी' शब्द का अर्थ होता है मुखिया या गाँव का प्रमुख। उराँव समाज में प्रत्येक गाँव का अपना एक मांझी होता है, जो उस गाँव का प्रतिनिधि और संरक्षक माना जाता है।जब कई गाँव मिलकर एक "परहा" बनाते हैं, तो उन सभी गाँवों के मांझियों का संघ "परहा पंचायत" कहलाता है। इस प्रकार "परहा मांझी" वह व्यक्ति होता है जो अपने गाँव की ओर से परहा में प्रतिनिधित्व करता है। यह परहा का सर्वोच्च अधिकारी होता है, जो कई गाँवों की पंचायतों का नेतृत्व करता है।
- **देकुआ (धार्मिक सलाहकार):** "देकुआ" उराँव समाज में एक धार्मिक सलाहकार (Religious Advisor) या आध्यात्मिक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है। यह व्यक्ति उराँव समाज की धार्मिक मान्यताओं, देवी-देवताओं, अनुष्ठानों और पारंपरिक रीति-रिवाजों का गहन ज्ञान रखता है। 'देकुआ' शब्द का संबंध "देव" या "दिव्य" से माना जाता है, जिसका अर्थ है - दैवी शक्ति से संवाद करने वाला व्यक्ति।
- **पाहन (धार्मिक पुरोहित):** 'पाहन' शब्द का अर्थ होता है - धार्मिक पुरोहित या देवताओं का पुजारी। उराँव समाज में पाहन गाँव का धार्मिक मुखिया होता है, जो देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना, बलिदान, और धार्मिक अनुष्ठानों का संचालन करता है।
- **गोरैत (संदेशवाहक)** : 'गोरैत' शब्द का अर्थ है- संदेशवाहक, घोषक, या संपर्ककर्ता। उराँव समाज में गोरैत वह व्यक्ति होता है जो गाँव या परहा पंचायत की ओर से सूचनाएँ, आदेश, और निर्णय समाज के अन्य सदस्यों तक पहुँचाने का कार्य करता है।

- **पंच या बुजुर्ग सदस्य:** उराँव समाज में "पंच" शब्द उन व्यक्तियों के लिए प्रयोग किया जाता है जो समाज के बुजुर्ग, समझदार, अनुभवी और निष्पक्ष होते हैं। यह पंचायत सामाजिक अनुशासन का नियंत्रण करती थी। विवाह, तलाक, व्यभिचार, चोरी, झगड़ा, जमीन विवाद, सामाजिक अपराध आदि का निपटारा पंचायत के सामने किया जाता था। निर्णय सामूहिक रूप से होते थे और समुदाय की सहमति अनिवार्य होती थी।पंचायत केवल न्यायिक संस्था नहीं थी, बल्कि यह **संस्कृति, लोकरीति और परंपरा की संरक्षक संस्था** भी थी। लोकगीत, नृत्य, त्यौहार, पूजा-अनुष्ठान, और सामाजिक मेल-मिलाप के आयोजन भी पंचायत की देखरेख में होते थे।

परहा पंचायत की संरचना, कार्यप्रणाली एवं निर्णय प्रणाली

परहा पंचायत का संगठन अत्यंत लोकतांत्रिक था। किसी भी निर्णय से पहले सभी संबंधित पक्षों की बात सुनी जाती थी। किसी भी विवाद में **"सत्य कथन की परंपरा"** का पालन किया जाता था।

पंचायत बैठकों में पुरुष ही नहीं, कभी-कभी महिलाएँ भी उपस्थित रहती थीं, विशेषकर जब मामला पारिवारिक या महिला-संबंधी होता था। पंचायत का उद्देश्य दंड देना नहीं, बल्कि **"सामाजिक समरसता पुनः स्थापित करना"** होता था।

निर्णय के प्रकार —

1. सामाजिक बहिष्कार (यदि व्यक्ति गंभीर अपराध करे)।
2. दंड (जुर्माना, पशुधन दान, भोज करवाना आदि)।

इस पंचायत के निर्णय को समाज का हर सदस्य मान्यता देता था। यह संस्था औपचारिक कानून से ऊपर सामाजिक-सांस्कृतिक कानून का प्रतीक थी।

आधुनिकता, शिक्षा और प्रशासनिक हस्तक्षेप से परहा पंचायत में हो रहे परिवर्तन

वर्तमान समय में उराँव समाज में परहा पंचायत की पारंपरिक भूमिका काफी कमजोर पड़ी है। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं —

(1) शिक्षा और आधुनिक प्रशासन का प्रभाव: शिक्षा ने जनजातीय समाज में नए मूल्य और चेतना का संचार किया। लोग सरकारी कानूनों, थानों, अदालतों और प्रशासनिक प्रक्रियाओं की ओर आकर्षित हुए। इससे परंपरागत पंचायत की भूमिका सीमित होती चली गई।

(2) धर्मांतरण और धार्मिक विविधता: ईसाई धर्म में परिवर्तन ने एकता के पारंपरिक ढाँचे को विभाजित कर दिया। ईसाई उराँव और पारंपरिक सरना उराँव अब कई मामलों में अलग सामाजिक व्यवस्थाएँ अपनाते हैं। परिणामस्वरूप परहा पंचायत की सर्वमान्यता टूट गई।

(3) राजनीतिक हस्तक्षेप और पंचायत राज व्यवस्था: संविधान के 73वें संशोधन के बाद ग्राम पंचायतों का गठन हुआ। इससे "परहा पंचायत" जैसी पारंपरिक संस्थाएँ धीरे-धीरे औपचारिक राजनीति में विलीन होने लगीं। अब पंचायत राज व्यवस्था सरकारी ढाँचा बन चुकी है, जबकि परहा पंचायत एक सांस्कृतिक प्रतीक भर रह गई है।

(4) शहरीकरण और पलायन: उराँव युवाओं का रोजगार के लिए शहरों में जाना सामुदायिक जीवन को प्रभावित करता है। वे अब ग्राम पंचायत बैठकों में शामिल नहीं हो पाते, जिससे पंचायत की सक्रियता घट रहीहै।

(5) आधुनिक मीडिया और नई सोच: युवा पीढ़ी अब परंपरागत मान्यताओं की बजाय व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आधुनिक मूल्य अपनाने लगी है।इससे सामूहिक निर्णय प्रणाली का महत्व घटाहै

समाजशास्त्रीय विश्लेषण - परंपरा और परिवर्तन : समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह संस्था पारंपरिक समाज के संगठनात्मक, नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों को जीवित रखती है, साथ ही आधुनिक परिवर्तनों के अनुरूप स्वयं को ढालने की क्षमता भी रखती है।

(1) संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण (Functionalism): परहा पंचायत समाज के लिए एक "सामाजिक कार्यात्मक संस्था" थी, जो समाज की एकता, नियंत्रण और सहयोग को बनाए रखती थी। जब यह संस्था कमजोर हुई, तब समाज में नए तंत्रों (जैसे ग्रामसभा, थाने, कोर्ट) ने उसकी जगह ली।

(2) संघर्ष दृष्टिकोण (Conflict Theory):आधुनिकता और धर्मांतरण ने उराँव समाज में शक्ति-संतुलन को बदल दिया। अब शिक्षित वर्ग, राजनीतिक नेता और आर्थिक रूप से संपन्न लोग निर्णयों पर हावी हैं, जिससे पारंपरिक सामूहिकता में असंतुलन पैदा हुआ है।

(3) सांस्कृतिक परिवर्तन सिद्धांत: संपर्क, शिक्षा, संचार माध्यम और प्रशासनिक प्रभावों ने उराँव संस्कृति को परिवर्तित कर दिया है। परहा पंचायत अब संस्कृति का जीवंत अंग नहीं, बल्कि *सांस्कृतिक विरासत* के रूप में बची है।

(4) सामाजिक एकता और पुनर्संरचना : हालाँकि परिवर्तन हुए हैं, फिर भी परहा पंचायत का भावात्मक अस्तित्व आज भी कुछ क्षेत्रों में बना हुआ है। लोग विशेष अवसरों पर पारंपरिक पंचायत को सांस्कृतिक पहचान के रूप में मानते हैं।

निष्कर्ष: उराँव समाज की परंपरागत 'परहा पंचायत' कभी उसकी सामाजिक जीवन की रीढ़ थी। यह पंचायत न्याय, नैतिकता, परंपरा और सामूहिक एकता का केंद्र रही।परंतु आधुनिक शिक्षा, धर्मांतरण, राजनीति और प्रशासनिक हस्तक्षेप ने इसके स्वरूप को परिवर्तित कर दिया है।अब यह संस्था औपचारिक शासन से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकती, परंतु यह **सांस्कृतिक विरासत के प्रतीक के रूप में** अब भी समाज में भावनात्मक रूप से जीवित है।

सुझाव:

1. परहा पंचायत जैसी संस्थाओं को *सांस्कृतिक धरोहर* घोषित किया जाए।
2. इन्हें आधुनिक पंचायत राज प्रणाली के पूरक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।
3. शिक्षा प्रणाली में उराँव परंपराओं, न्याय व्यवस्था और संस्कृति पर स्थानीय अध्ययन शामिल किए जाएँ।
4. सरकार और सामाजिक संगठनों को मिलकर जनजातीय परंपरागत शासन पद्धति के संरक्षण हेतु कार्यक्रम चलाने चाहिए।
5. युवाओं में सांस्कृतिक चेतना जगाने के लिए लोकनाटक, प्रदर्शन, और परहा मेले जैसी गतिविधियाँ आयोजित की जानी चाहिए।

उपसंहार:

उराँव समाज की परंपरागत संस्था 'परहा पंचायत' न केवल सामाजिक नियंत्रण का माध्यम थी, बल्कि यह जनजातीय लोकतंत्र का उदाहरण भी थी। आज जब समाज आधुनिकता की ओर बढ़ रहा है, तब परंपरागत संस्थाओं का संरक्षण सांस्कृतिक पहचान के लिए आवश्यक है।परहा पंचायत भले ही अब अपने पुराने रूप में न रही हो, किंतु उसका भाव और दर्शन उराँव समाज की आत्मा में अब भी जीवित है। यह शोध स्पष्ट करता है कि सामाजिक परिवर्तन अपरिहार्य है, परंतु परंपराओं का संरक्षण समाज की स्थायित्व और अस्मिता के लिए अनिवार्य है।

संदर्भ सूची (Bibliography)

1. लकड़ा, बिरजु (2016). *उराँव समाज की पारंपरिक संस्थाएँ और आधुनिकता का प्रभाव*, राँची विश्वविद्यालय, राँची।
2. मिंज, जॉन (2018). *झारखण्ड के उराँवों का सामाजिक परिवर्तन: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन*, गुमला पब्लिकेशन।
3. सिंह, के.एस. (1992). *The Scheduled Tribes of India: Anthropological Survey of India*.

4. मिश्रा, आर. (2017). *झारखण्ड की जनजातियाँ और उनके सामाजिक परिवर्तन*, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. Government of Jharkhand. (2020). Tribal Governance and Local Self-Government Report.
6. मिन्ज़, सुशीला (2009). झारखण्ड के आदिवासी समाज में परहा और पंचायत.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 116-119
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

SOCIAL THOUGHTS OF DR. B.R AMBEDKAR IN CONTEXT OF UNTOUCHABILITY

Dr. Renu Bala
Majha College for women, Tarn Taran , Punjab

Abstract
"Dr. Ambedkar was a great leader and visionary. The main object of Ambedkar's life was to bring about social justice. He wanted to break the system of varna and caste so that everybody could get the opportunity of self-development. He adopted democratic and constitutional means for achieving this goal. Born as a Hindu, and having suffered as a Hindu, he created a sort of social revolution by awakening the Hindu, suppressed classes by burning the Manusamriti and unfurling the banner of revolt against the tradition of high and mighty. Thus he gave a severe blow to the caste system in India. Dr. Ambedkar was a man of self-respect, who dedicated his whole life to the cause of the untouchables ."

Keywords.
Caste,Untouchables,Shudras,Labour,Class,Rights

INTRODUCTION

DR.B.R Ambedkar hailing from the lowest strata of Indian society , he was rightly chosen as the Chairman of Constituent Assembly to realize the supreme goal of bringing about social parity in India by removing all kinds of socio-economic discrimination and to establish an egalitarian society. On December 9, 1946 the first meeting of Constituent Assembly took place. It became the sovereign Constituent Assembly of Independent India on 15 August 1947. The Indian Constitution was finally adopted on 26 November 1949. Hence Dr. Ambedkar had played a major role in making of the Constitution(Javaraiah,,1992: 122-123)

Ambedkar was born on April 14, 1891 in a poor Mahar family, in village Mhow, of Maharashtra. Ambedkar's father Ramji and grandfather, Maloji were in Military service of the British. Ramji rose to the rank of Subedar Major and was a head instructor in a military school for about fourteen years. Ramji had fourteen children. Bhim Rao was the youngest. Ambedkar lost his mother in 1896, when quite young, and was brought up by his father and aunt. He passed his matriculation examination in 1907. After completing his matriculation and college education in Bombay on a fellowship from the Maharaja of Baroda. He first went to U.S.A and then to Britain and to obtain his degrees of Master, Ph.D, D.Sc and Bar-at-law and returned to India to serve the cause of the untouchables (Kuber, 1991 : 12-13).

POSITION OF UNTOUCHABLES DURING DR. AMBEDKAR'S TIME

Who Were untouchables

According the Dr. Ambedkar, the untouchables also called shudra were one of the Aryan communities of the solar race as such and they were actually of the Kshatriya Varna in the Indo-Aryan society. He says a time when Indo-Aryan society recognized only three varnas. Accordingly he asserts that the Shudras were not a separate varna but a part of the Kshatriya

and the Vaishya. Dr. Ambedkar emphasised that there was a continuous feud between the Shudra kings and the Brahmins, in which Brahmins were subjected to many kinds of tyrannies and indignities. As a result of the these events hatred of the Brahmins toward Shudras increased and the Brahmins refused to invest the Shudras with the sacred thread. Owing the loss of the sacred thread, the Shudras became socially degraded and fell below the rank of the Vaishyas and came to form the fourth varna. (Ahir, 1990 : 267)

Ambedkar was born in lowest caste and hence he suffered humiliation in his early life. In his school days, he was told to sit outside the classroom on a piece of gunny mat. As an untouchable, he had no right to drink water from the common pool. Even some of his teachers would not touch his notebook for fear of being polluted. Even when he became a man of learning, and a high official in the Baroda state, he was subjected to inhuman treatment. Drinking water was not available to Ambedkar. His subordinates kept distance from him. The peon also threw files and papers on his desk. As a Professor in Bombay, he was not allowed to drink water from the pot kept in the Professors common room. Ambedkar started his practise as a barrister in 1923 in Bombay High Court, but he did not get any co-operation from solicitors on the ground of untouchability. (gupta,1998: 104- 105).

In Ambedkar's time Shudras were considered to be the most degraded class, and they were denied many basic rights which other members of the society enjoyed. They were considered to be the lowest people of the society, and as such were forbidden to use public places, roads, wells, places of enjoyment, to have property and to acquire education. Upper caste people considered it a great sin to impart knowledge or education to these persons belonging to the class of Shudras. It was generally considered that the Shudras were meant to serve the upper classes. So the shudras were exploited, depressed and oppressed by the members of Hindu society. Shudras were also known as the 'untouchables'. The untouchables were considered to be the lowest class of Hindu society. They were deemed to be polluting people and even their shadows and their voice were supposed to pollute the entire atmosphere. The Shudra were told to live only outside the village. Their children could not get admission to those schools which were mostly attended by the upper caste Hindu children. Shudras cannot go to Hindu religious places because they were considered to be sub-human and inferior. Military and police service was generally forbidden to these Shudras. So the untouchable Shudras remained socially deprived economically impoverished, politically subservient to the upper classes. Ambedkar was of the opinion that untouchability was the by-product of the caste system. He strongly felt that varna and caste systems were the main sources of all evils in Hindu society and he criticized the existing caste system and policies of Brahminism. He critically noted that Bhagwad Geeta had done enough mischief in that giving a fresh lease of life to the varna system. He felt that inequality and hatred with lower caste remained the main doctrine of Brahminism. In Ambedkar's time untouchables were denied every basic facility including food, fresh water and accomodation (Ashraf, 1997 : 363-364).

DR. AMBEDKAR VIEW ABOUT CASTE SYSTEM IN PRE INDEPENDENT INDIA

Caste

Ambedkar held the view that caste is not merely ,a division of labour, it is also division of labourers. Caste according to him, is a hierarchy in which the division of labourers is graded one above the other. This division of labour he felt was not spontaneous. It was not based on natural aptitudes nor on choice of an individual. He felt that Sentiments had no place in it, but the caste system involved an attempt to appoint task to individuals in advance. These groups were selected not on the basis of trained or original capacities, but on that the social status of their parents. So Ambedkar said that "chaturvarna" must fail for the very reason for which Plato's Republic failed. He said : "To me this "chaturvarna" with its old labels is utterly repellent and my whole being rebels against it" (cited in Mahajan, 1995 : 138).

Ambedkar said that the Hindu religion created the 'Chaturvarna', which provided the base for the caste system. Manu asserted provided the divine sanction for the iniquitous system through the 'purushasukta' which became a part of the Vedas. Manu said, "For the prosperity of the worlds, the creator from his mouth, arm and thighs and feet created by Brahman, Kshatriya, Vaishya and the Shudra". Ambedkar, criticized the ideal of Chaturvarna because it was based on the principle of graded inequality among the four classes (Lokhande, 1977 : 68).

"As long as caste in India does exist Hindus will hardly intermarry or have any social intercourse with outsiders and if Hindu migrate to region on earth India caste would become a world problem" (Ghatak, 1997 : 1).

Ambedkar advocated in 'Annihilation of caste' in any of its form. He therefore, suggested two ways to annihilate the caste system. These ways were inter-caste marriages, and destroying belief in the authority of Shastras, which confer religious sanction to caste and caste system. Explaining these remedies, he said the inter-caste marriage is an effective way to annihilate castes. But inter-caste marriage he said was not to cannot be imposed on the people without their desire. It was something to be created for the purpose by destroying the religious authority of Shastras, which had provided religious sanction to the norms of caste among the Hindus (Ram, 1995 : 60).

SUMMARY

Dr. Ambedkar considered the caste system in Hindu society, as a great enemy of social harmony in this country. He could not succeed in abolishing the caste system among the Hindus and therefore, in disgust renounced Hinduism and embraced Buddhism on October 19, 1956. It is matter of shame for the Hindu society that it could not retain such a great scholar and an impeccable nationalist within the its fold, because of the rigid practice of the caste system. That day will be a very fortune day for this country when the Hindu society will be able to get freedom from the stranglehold of the rigid caste system. Ambedkar fought faithfully and constitutionally to establish a society in India which would be truly based on democratic ideals of liberty, equality and fraternity.

Ambedkar was an uncompromising fighter for the cause of the Depressed Classes. He achieved his life's mission, when the Constitution of India abolished un-touchability, and declared that the enforcement of any social would be disability an offence. Because it is a fact that the Indian society got debased due to caste system which forced the Indian social system to keep a major chunk of its population socially deprived and economically backward for many millenniums.

Even today, the life and struggle of Dr. Ambedkar is a constant reminder as to how much we owe to him to rid over society of the evil born out of prejudice and unhealty customs which have no sanction either of morality or of decent conduct. Lastly, as optimists we must believe in Dr. Ambedkar's life long dream of ensuring social liberation of the oppressed and downtrodden, and that it will be translated into reality in near future in India.

REFFERENCES

1. Ahir, D.C.(1990), *The legacy of Ambedkar* New Delhi : B.R. Publishing Corporation.
2. Ashraf, Mohammad, *"Hindu Caste System and Social Justice* : *Dr. Ambedkar's perspective or View"* in Mohammad Shabbir, (1997), (ed.) New Delhi : Rawat Publications.
3. Das, Hari Hara (2005), *Indian political thought,* Jaipur and New Delhi : National Publishing House.
4. Ghatak, B.R. (1997), *Dr. Ambedkar's thought,* New Delhi : A.P.H. Publishing Corporation.

5. Gupta, V.P. and Gupta, Mohini (1998), *Makers of Modern India Series, Bhim Rao Ramji Ambedkar*, Delhi: Ambe Books.
6. Javaraiah, M.N. (1992), *Dr. Ambedkar : Father of the Constitution of India,* Mysore : Siddhartha Grantha Malla
7. Kuber, W.N. (1991), *Dr. Ambedkar a Critical Study*, New Delhi : People's Publishing House.
8. Lokhande, G.S. (1977), *Bhim Rao Rami Ambedkar : A Study in Social Democracy,* New Delhi: Sterling Publishers Pvt. Ltd.
9. Mahajan, R.K. *"Dr. Ambedkar view on constitutional vision : Caste system and parliamentary Democracy"*, in K.L. Bhatia,(1995), New Delhi : Deep and Deep Publications.
10. Pantham, Thomas and Ledutsch, Kenneth, *Political thought in modern India*, New Delhi, Beverly hills, London : Sage Publications.
11. Ram, Nandu (1995), *Beyond Ambedkar : Essay on Dalit in India*, New Delhi : Har-Anand Publications.
12. Rodrigues, Valerian (2002), *The essential writings of B.R. Ambedkar*, New Delhi : Oxford University Press.
13. Vermani, R.C. (2005), *An Introduction to Political Theory and Thought*, New Delhi : Gitanjali Publishing House.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 120-127
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अखिलेश की कहानियों में उपभोगवादी संस्कृति
('हाकिम कथा' और 'शापग्रस्त' कहानी के संदर्भ में)

लक्ष्मी प्रिया वी.
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
डॉ. षिबी सी.
सहायक आचार्य,
हिन्दी विभाग, कालिकट विश्वविद्यालय, केरल

शोध-सार : उपभोगवादी संस्कृति पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था का प्रमुख आयाम है। बेतहाशा उत्पादन से बेलगाम उपभोग, इसके ज़रिए अधिकाधिक पूँजी संचय पूंजीवाद का मूल सिद्धांत है। अत्यधिक उत्पादन और उसका आक्रामक प्रचार-प्रसार मनुष्य में उपभोग की छद्म चेतना का निर्माण करता है। यह छद्म चेतना मनुष्य में कभी पूरी न होने वाली संतुष्टि की शृंखला रचती है। अर्थात उपभोगवादी संस्कृति रचती है। मनुष्य इसमें ढलकर अपना स्व खो बैठता है और एक बाजारू वस्तु में बदल जाता है। बाज़ारवादी व्यवस्था में जो बिकता है वहीं टिकता है। ऐसी स्थिति में मानवीय संबंध भी महज माल बनकर रह जाते हैं। मनुष्य पर उपभोगवादी संस्कृति के प्रभावाओं का सशक्त जाँच-पड़ताल समकालीन कहानियाँ करती हैं। समकालीन कहानीकार अखिलेश ने उपभोगवादी संस्कृति में ढलते लोगों के जीवन के अनेक पक्षों पर प्रकाश डालते हुए अपना कलम चलाई है। प्रस्तुत आलेख में अखिलेश की कहानियाँ 'हाकिम कथा' और 'शापग्रस्त' में अभिव्यक्त उपभोगवादी संस्कृति पर चर्चा करने का प्रयास किया गया है।

बीज-शब्द : उपभोगवाद, उपभोगवादी संस्कृति, पूँजीवाद, बाज़ार, भूमंडलीकरण, विलगाव, वस्तुकरण, संवेदना।

मूल आलेख

वर्तमान समय में उपभोग का कोई भी अध्ययन किसी विशिष्ट उत्पाद या सेवा को प्राप्त करके उपयोग करने की प्रक्रिया तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक जटिल एवं व्यापक प्रक्रिया है। उपभोग आज पूँजीवादी बाज़ार व्यवस्था के नवीनतम लक्षण बन गए हैं। वस्तुओं के उपभोग और पूँजी के रिश्ते पर कार्ल मार्क्स ने अपनी पुस्तक 'कैपिटल' में कहा है कि - "जिस समाज में पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली हावी हैं ,उसकी संपत्ति वस्तुओं के विशाल संग्रह के रूप में दिखाई देती है।"[1] बाज़ार आधारित पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली का ध्यान अधिकाधिक धन संचय पर केंद्रित रहता है। इसका लक्ष्य उत्पादन में वृद्धि करके बाज़ार में वस्तुओं की माँग बढ़ाना और अधिक मुनाफा कमाना है। प्रौद्योगिकी की मदद से ,बाज़ार सर्वेक्षण और वैज्ञानिक अनुसंधान के माध्यम से वस्तुएँ निर्मित की जाती हैं। उन्हें अपनी जादुई स्थिति में बाज़ार में प्रस्तुत की जाती हैं और मीडिया ,विज्ञापन के माध्यम से उन्हें आक्रामक रूप से

इस तरह प्रचारित की जाती हैं, कि वे एक अनिवार्यता बनकर रह जाए। इस बाज़ार-संगठन को उपभोगवाद कहा जा सकता है। इसमें व्यक्ति की जरूरतें बाज़ार द्वारा आकार लेती हैं। उसे क्या खरीदना है, किसका उपभोग करना है और किस तरह उपभोग करना है- ये सभी बातें बाज़ार द्वारा निर्धारित होती हैं। व्यक्ति को वस्तुओं की यह चाहत किस प्रकार होती हैं, इसके संबंध में कॉलिन कैंपबेल का कथन विचारणीय है। वे कहते हैं कि -"हमें यह गलतफहमी है कि आज के उपभोक्ता की अथाह इच्छा के कारण वे माल खरीद लेते हैं। मूल रूप से, लोग उन आनंददायक घटनाओं को जीवन में लाने की लालसा से प्रेरित होते हैं जिनकी उन्होंने पहले कल्पना में अनुभव की है। और प्रत्येक नए उत्पाद को, उन सपनों को हकीकत में बदलने के अवसर के रूप में वे देखते हैं।"[2] अर्थात् उपभोगवाद मूलतः कृत्रिम रूप से प्रेरित कल्पनाओं की पूर्ति है और ऐसा दर्शन है जो हमें वास्तविकता से, साथ ही साथ हमारे तर्क और विवेक से अलग कर देते हैं। अतियाथार्थ (Hyper real) रचकर अर्थात् छलनामक चिह्नों और प्रतीकों का उपयोग करते हुए व्यक्ति को वास्तविकता से अलग करने के लिए बाज़ार मीडिया और विज्ञापन को सशक्त माध्यम बनाते हैं। दूसरे शब्दों में, व्यक्ति में उपभोग की छद्म चेतना का रूपायन मीडिया, विज्ञापन के ज़रिए संभव बनाया जाता है। विज्ञापन द्वारा कल्पना में अनुभव किए गए उपभोग के छद्म सुख को यथार्थ में अनुभव करने की तृष्णा में व्यक्ति खर्च पर खर्च करने लगता है। इस तरह बाज़ार हमारे मन-मस्तिष्क को कब्जा करके उपभोग के अटूट सिलसिले को ज़ारी रखते हैं।

संस्कृति किसी समाज के समस्त आचार-व्यवहार को व्यक्त करती है। अजय तिवारी के अनुसार - "वर्चस्व की चेतना जगाने में, अर्थात् अपना प्रभुत्व के लिए जन-समुदाय को अनुकूलित करने में शासक वर्ग का निर्णायक साधन संस्कृति ही है।"[3] समाज में एक बाजारू-उपभोगवादी संस्कृति का रूपायन करके पूरे जन समुदाय को अपने लपेट में लेना पूँजीवादी व्यवस्था की रीति है। ऐसी संस्कृति में व्यक्ति बाज़ार की चकाचौंध में खुद को पाता है। एक ऐसी संस्कृति में ढलकर व्यक्ति उपभोग को ही अपने आमोद-प्रमोद, रहन-सहन, धर्म-कर्म, जीवन मूल्य आदि मानता है। ऐसी संस्कृति रचकर बाज़ार मनुष्य के श्रम का खून चूसकर अपने लिए मुनाफा जुटाते हैं। संक्षेप में कहें तो बाज़ार द्वारा अपने व्यावसायिक और स्वार्थी हितों के लिए निर्मित संस्कृति ही उपभोगवादी संस्कृति है। बाज़ार के नियमों के अनुसार चलने वाली यह संस्कृति का अनिवार्य लक्षण हैं- हिंसा, लालसा, अनुकरण, दिखावा, स्वार्थता, अतार्किकता, अविवेक और विलगाव आदि।

उपभोक्ता समाज का उदय १९ वीं सदी में उभरे औद्योगिक पूँजीवाद से माना जाता है। उन्नीसवीं सदी में ज्यों-ज्यों पूँजीवाद की अवधारणा विकसित होती रही, उपभोग पर भी समान रूप से विचार होने लगा। २० वीं सदी में दूसरे विश्वयुद्ध के दौर में यूरोप और अमेरिका में बढ़ती उत्पादकता और संपन्नता में उपभोगवादी संस्कृति का विकास हुआ था और सारी दुनिया में इसका संचार होने लगा था। जिस तरह मार्क्स ने कहा है कि - "अपने उत्पादों के बाज़ार की तलाश बुर्जुआ को पूरे भूमंडल में दौड़ाती है। इसे अपना नीड़ सर्वत्र बनाना है, इसे हर जगह बसना है, इसे अपना संबंध सर्वत्र फैलाना है।"[4] अधिकाधिक लाभ कमाने की इसी चाह ने पूँजीवाद को अपने बाज़ार का प्रसार पूरे विश्व में करने पर अग्रसर किया था। फलस्वरूप वैश्विक स्तर पर एक नई संवृत्ति का जन्म हुआ जो भूमंडलीकरण के नाम से जाना जाता है। आर्थिक सहायता का मुखौटा पहनकर भूमंडलीकरण ने भारत जैसे अल्प विकसित देशों में अपना पैर जमाया था। भारत ने १९९० के दशक में भूमंडलीकरण की आर्थिक नीतियों को अपनाया था। फलस्वरूप उपभोगवादी संस्कृति का प्रचार-प्रसार यहाँ होने लगा। खासकर भारतीय मध्यवर्ग और अभिजातीय वर्ग इसके प्रभाव में आए। उपभोगवाद उनके जीवन जीने का एक तरीका ही बन गया।

अखिलेश के कथा साहित्य का विकास उस समय हुआ, जब देश भूमंडलीकरण के प्रारंभिक दौर से गुज़र रहा था। इसलिए उनकी कहानियों में तत्कालीन परिवेश की गहरी और यथार्थ छाप दिखाई देती है। उनकी कहानी 'हाकिम कथा' और 'शापग्रस्त' भूमंडलीकृत भारतीय समाज की और इशारा करती हैं, जहाँ व्यक्ति का प्रथम उद्देश्य संपत्ति अर्जित करना मात्र नहीं हैं बल्कि अपने भीतर की खालीपन, अकेलापन और निराशा से निपटने के लिए

अधिक से अधिक उपभोग करना भी है। जर्मन दार्शनिक एरिक फ्रोम्म ने इस तरह के व्यक्ति को होमो कंज्यूमेंस (Homo consumens) नाम से संबोधित किया है। व्यक्ति इस गलतफहमी में जीता है कि वह खुश है या स्वस्थ है। लेकिन वास्तव में उसका अवचेतन मन परेशान और भ्रमित है। वह विलगाव(Alienation) से ग्रसित है। विलगाव एक ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति खुद को जीवन के अनुभवों से अलग या असंपृक्त महसूस करता है। इस विलगाव खुद से ही नहीं, बल्कि अपने परिवार, समाज (सुस्थिर सामाजिक संबंधों) से भी है जिसका परिणाम वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक मूल्यहीनता हैं। व्यक्ति, समाज, परिवार और आत्मा पर किस प्रकार उपभोगवादी संस्कृत आघात कर रही है, इसकी सशक्त अभिव्यक्ति इन दोनों कहानियों में हुई है।

'हाकिम कथा' कहानी उपभोगवादी संस्कृति के कारण शिथिल हो रहे रिश्तों का चित्रण प्रस्तुत करती है। मनुष्यों की जगह वस्तुओं से संबंध रखने में विवश आज के मानव की नियति से भी यह कहानी साक्षात्कार करती है। एक ऐसा ज़माना था जब मनुष्य दूसरे मनुष्यों से घेरा हुआ था। तर्क-वितर्क से, पारस्परिक भावनाओं को व्यक्त करके मनुष्य एक दूसरे से जुड़ा हुआ था। इसी में उसकी मानवीय चेतना का रूपायन होता था। लेकिन एक ऐसा बाज़ारवादी दौर आ गया है जहाँ, व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से नहीं, बल्कि असीमित वस्तुओं से घिरा हुआ है। फ्रांसीसी दार्शनिक जीन बौड्रिलार्ड अपनी पुस्तक 'थ कंज्यूर सोसाइटी' में वस्तुओं की असीमित संसार में व्यक्ति की उपस्थिति की बात करते हैं। उनके अनुसार यह दुनिया वस्तुओं से घिरी हुई है। ऐसे में मनुष्य एक दूसरे से जुड़ने के बजाय, वस्तुओं के साथ अभेद संबंध रखता है। बौड्रिलार्ड कहते हैं - "जिस तरह भेड़ियों के साथ रहने से भेड़िये का बच्चा भेड़िया बनता है, उसी तरह वस्तुओं के बीच रहने से हम भी धीरे-धीरे उन्हीं के अनुरूप ढलते जा रहे हैं। हम वस्तुओं द्वारा संचालित दुनिया में रहते हैं। इससे तात्पर्य हैं कि, हमारे जीवन वस्तु की गति से चलते हैं और उनके निरंतर प्रवाह की लय में रहते हैं।"[5] वस्तु की गति और लय से तालमेल बिठाने का मतलब यह है कि मनुष्य केवल माल की तरह ही बन जाता है, अर्थात् उसका वस्तुकरण हो जाता है। दूसरे शब्दों में, यह मानवीय संवेदनाओं से दूर होना और मनुष्य के मानवीय संचार एवं पारस्परिक भावनाओं का खत्म होना है। 'हाकिम कथा' उच्च मध्यवर्गीय परिवार की कथा कहती है। कहानी में पिता पुनीत ,माँ गायत्री ,उनकी बेटियाँ अपर्णा और संध्या और पुनीत की दूसरी पत्नी मदिरा मुख्य पात्र के रूप में आते हैं। परिवार के हर एक सदस्य का वस्तुकरण होता दिखाया गया है। तलाक होने पर पुनीत द्वारा कीमती चीजों के साथ पत्नी गायत्री को बेदखल करना, अपने बेटियों से ज़्यादा कीमती वस्तुओं के प्रति गायत्री की चिंता, मदिरा द्वारा कीमती वस्तुएँ भेजकर पुनीत की बेटियों को अपने तरफ करने की कोशिश, बड़ी बेटी अपर्णा द्वारा माँ गायत्री की आभूषणों को चुराकर ले जाना, दूसरी बेटी संध्या द्वारा अपनी माँ गायत्री के प्रति मकान के लिए लाड़-प्यार जताना आदि इस स्थिति की ओर इशारा करते हैं। अर्थात् यहाँ व्यक्ति का जीवन वस्तुओं के आसपास घूमता है, मानवीय संवेदनाओं के धरातल पर नहीं। दूसरे शब्दों में, वस्तुएँ ही एक प्रकार से मानवीय संबंधों की तकदीर का निर्धारण कर रही हैं। चाहे वह रिश्ते निभाने की बात हो, खराब करने की हो , सँवारने की हो।

उपभोगवादी संस्कृति में व्यक्ति वस्तुओं के नियंत्रण में होता है। इतना नियंत्रण में कि, वह उसे खुद से ऊँचा मानकर उसका प्रभुत्व स्वीकार कर लेता है। कहानी में गायत्री का एक प्रसंग है- जब कभी उसे परेशानी महसूस होती है तो, वह दूसरे व्यक्तियों का नहीं, बल्कि कीमती वस्तुओं का आश्रय ले लेती है। "थोड़ी राहत मिलने पर वह संदूक खोलने लगी। संदूक से एक बॉक्स निकाला। बॉक्स भी खोल दिया। सोने के गहने भरे थे। गहनों को वह दीवानी-सी देखने लगी। उसे राहत और ताकत मिल रही थी।"[6] यहाँ स्पष्ट है कि गायत्री खुद को वस्तुओं के साथ अधिक सुरक्षित और उन्मुक्त महसूस करती है। उसके अनुसार वस्तुओं में एक ईश्वरीय छवि है। अपने पति और बेटियों से जो खुशी, सुरक्षा और उन्मुक्तता गायत्री को मिलनी थी, वह इन्हीं वस्तुओं में ढूँढ़ पा रही है। पुनीत के लिए गायत्री महज एक वस्तु थी, जिसे उपयोगशून्य सिद्ध होने पर फालतू समान की तरह फेंक दिया गया था। घर और कीमती वस्तुओं के साथ अपने पति की ज़िंदगी से बेदखल हुए गायत्री के लिए फिर वही सामान सर्वोपरि बन जाती है। जब अपर्णा

अपनी शादी के दिन गायत्री के गहने चुरा लिए थे, तो गायत्री टूट जाती है। अपनी बेटी की विदाई से ज़्यादा अपने आभूषणों को खोने की चिंता उसे अधिक दुखी बनाती है। इस घटना के बाद वह दूसरों से बात करना तक बंद कर देती है। वह वस्तुओं को ही परम सत्ता मानती है और वस्तुओं की दासता में अपना जीवन गुज़ार रही है। यहाँ वस्तु के समक्ष गायत्री का आत्मसमर्पण उसके वस्तुकरण का बयान करता है। उसके भीतर जो वस्तुकरण हुआ है, जिसके फलस्वरूप वह अपने आत्म से अलग हो गयी है। दूसरे शब्दों में जब व्यक्ति के जीवन के हर एक कार्य पर किसी व्यक्ति, वस्तु या सत्ता का अधिकार होता है तो अंततः व्यक्ति अपने आत्म से अलग हो जाता है।

बाज़ारीकृत - उपभोगवादी दौर में, यह विचारणीय बात है कि मनुष्य का मनुष्य से क्या संबंध है। मनुष्य स्वाभाविक रूप से सामाजिक प्राणी हैं। वह सामाजिक होने, दूसरों से जुड़ने, दूसरों की सहायता करने के लिए इच्छुक होते हैं। लेकिन बाज़ारवादी दौर में इसकी अपेक्षा नहीं की जा सकती है। संबंधों में भावुकता का युग समाप्त हो चुका है। अब अपनी निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए संबंधों का फायदा उठाने का समय है। एरिक फ्रोम्म ने अपनी किताब 'सेन सोसाइटी' में पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली के तहत रहने वाले मनुष्यों के विलगाव ग्रस्त संबंधों पर बात की है। वे कहते हैं कि - "आधुनिक मनुष्य दूसरों से कैसे नाता जोड़ते हैं ? यह दो कार्यशील मशीनों के बीच लेन-देन की तरह है, जो एक दूसरे का उपयोग करता है। मालिक अपने कर्मचारियों का उपयोग करते हैं, विक्रेता ग्राहकों का उपयोग करते हैं। हर कोई दूसरे के लिए एक वस्तु है, जिसके साथ एक निश्चित स्तर का व्यवहार किया जाता है, क्योंकि वह आज न तो कल उपयोगी सिद्ध हो सकता है। आज के मानवीय रिश्तों में गहरा प्यार और नफरत नहीं देखा जाता। आज सौहार्द और समानता बस सतही तौर पर हैं । इस सतही आवरण के पीछे दूरी और उपेक्षा की भावना छिपी हुई है।"[7] अर्थात् यहाँ व्यक्ति के बीच कोई संबंध नहीं हैं सिवाय क्रेता-विक्रेता के। कहानी में परिवार के हर एक सदस्य प्यार के आवरण से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं ताकि आवश्यकतानुसार वे उस रिश्ते का फायदा उठाकर अपने स्वार्थ की पूर्ति करें। "यह ईमोशनल होने का टाइम नहीं हैं डार्लिंग ! इतना अच्छा चान्स है। इसे एक्सप्लायेट करो।"[8] मदिरा की यह मानसिकता बाज़ारीकृत दौर में मनुष्य की लाभोन्मुख मन स्थिति के लिए उदाहरण है। कहानी में पिता हो या बेटियाँ इसी मानसिकता पर चलते नज़र आते हैं। चाहे पुनीत हो, अपर्णा हो, संध्या हो भौतिक सुख-समृद्धि के गुलाम हैं। इसलिए संबंधों और भावनाओं के स्थान पर वे धन-संपत्ति को वरीयता दे रहे हैं। पुनीत ने अपनी विरासत-संपत्ति के मोह में आकार गायत्री से विवाह किया था। जब गायत्री उसके धनवान पिता की इकलौती बेटी थी तब, गायत्री के प्रति उसका प्रेम अटूट थी। लेकिन जैसे ही गायत्री को एक भाई हुआ और ससुराल की संपत्ति के लिए नया वारिस हुआ तब से, गायत्री के प्रति उसका प्रेम भी कम होने लगता है। ससुराल की पूरी संपत्ति प्राप्त न होने में निराश होकर पुनीत गायत्री को तलाक देता है। अपनी सुंदरता और चालाकी से सबको लुभाने वाली मदिरा से वह दूसरी शादी कर लेता है। मदिरा की मदद से प्रमोद अपने चीफ की करीब आता है और अपने प्रमोशन भी करवाता है। अपर्णा की बात करें तो ,उससे मूक प्रेम करने वाले परीक्षित से पहले वह दूरी बनाकर रखती थी। जैसे ही परीक्षित आई.पी.एस. बन जाता है, उसका प्यार अपर्णा के लिए अर्थवान लगने लगती है। शादी के बाद परीक्षित का वास्तविक स्वरूप उसके सामने आता है। अपर्णा को दूसरे स्त्री के साथ परीक्षित के संबंध का पता चलता है। उसके लिए यह समाज में अपनी प्रेस्टीज का मामला था। वह अपने पिता से मदद के लिए मिलती है। उनसे कुछ करने का इसरार करती है। पुनीत इसे उसका पर्सनल मामला कहकर उसकी बात को पहले टालता है। अपर्णा उससे विनती करती रही तो, पुनीत कुछ सोचने के बाद कहते हैं - "ठीक है, अगर तुम्हारी इतनी ज़िद है तो....परीक्षित का ट्रांसफर होमगार्ड में करा देता हूँ। वहाँ न पैसा रहेगा, न पावर। अपने आप दिमाग दुरुस्त हो जाएगा। बोलो ठीक है न ? लेकिन सोच लो।"[9] पिता की इन बातों से अपर्णा बहुत घबरा जाती है और एकदम पलट जाती है। वह पापा से कहती है - "नहीं पापा, ऐसा मत करिएगा। परीक्षित ठीक है, बहुत अच्छा है।"[10] यहाँ अपर्णा की व्यवहार से यह साफ दिख रहा

है कि पैसे और ताकत ही संबंधों को निभाने की प्रेरक शक्तियाँ हैं। बाजार, उपभोग और धन के जंजाल में उलझा हुआ मनुष्य की लाभाधिष्ठित विकृत मानसिकता का चित्रण यह कहानी करती है।

'शापग्रस्त' कहानी बाज़ारवादी व्यवस्था के तहत रहने वाले लोगों के मानसिक स्वास्थ्य और विवेक पर उपभोगवादी संस्कृति के प्रभावों पर चर्चा करती है। मध्यवर्गीय परिवार के प्रमोद वर्मा, लोकनिर्माण विभाग का जूनियर इंजीनियर था। वह सभी सुख सुविधाओं से युक्त एक संतुष्ट जीवन जी रहा था। लेकिन एक दिन अपने सफल जीवन से मोहभंग और अवसाद से वह ग्रसित हो जाता है। नतीजन सच्चे सुख के लिए उसकी खोज शुरू होती है। अंत में प्रमोद को यह बात समझ में आती है कि वह कभी दुखी नहीं हो पाएगा, न सुखी। क्योंकि उसकी आत्मा खो गई है। मूलतः यह कहानी उपभोगवादी जीवन जीने केलिए इच्छुक मध्यवर्गीय व्यक्ति की आलोचना प्रस्तुत करती है, जिसे पाने की कोशिश में वह अपनी आत्मा खो बैठती है। बदलती दुनिया में बदलती सुख की अवधारणा पर यह कहानी ज़ोर देती है।

सुख को आम तौर पर दुख का विपरीत माना जाता है। अधिकांश लोग सुख को मन की ऐसी अवस्था मानते है जिसमें किसी भी तरह का दुख न हो। प्रायः मनुष्य जीवन में सदैव सुख ही चाहता है और किसी भी तरह की दुख-दर्द नहीं चाहता। लेकिन मनुष्य जो संवेदनशील है, अपने जीवन के विभिन्न सोपानों पर दु:ख महसूस करने से नहीं चूकता। यहीं संवेदनशीलता मनुष्य को मनुष्य से जोड़ देती है। अर्थात् मनुष्य की इसी संवेदनात्मक पक्ष ही उसकी वास्तविक सुख का स्रोत है। लेकिन इस बाज़ारवादी दौर में सुख की अवधारणा पूरी तरह बदल गई है। आज सुख का मतलब बाज़ार की छद्म सुख से है, धन-संपत्ति से प्राप्त सुख-भोग से है। और इस सुख-समृद्धि को न मिलने की स्थिति व्यक्ति के लिए दु:ख का कारण बनता है। बाज़ारीकृत व्यवस्था में सुख की अंतहीन यांत्रिक दौड़ में जुड़े व्यक्ति से संवेदनशीलता की उम्मीद नहीं की जा सकती। यह किसी विडंबना से कम नहीं हैं कि उसकी असंवेदनशीलता उसे दूसरों से ही नहीं, बल्कि खुद से भी अलग करती है। अंततः व्यक्ति अवसाद में परिणित होता है। अवसाद भावात्मक रूप से सुन्न होने जैसी अवस्था है। जैसे आप जीवित हैं लेकिन अंदर ही अंदर मृत महसूस करते हैं। न सुख अनुभव कर पाते है न दु:ख। 'शापग्रस्त' कहानी में प्रमोद इसी अवस्था से गुज़रता है। उसके पास सारी सुख-समृद्धि होने के बावजूद भी वह अस्वस्थ रहता है और खालीपन महसूस करता है - "मैं सुखी नहीं हूँ। किसी चीज में मन नहीं लगता। भटकता रहता है मन। हमेशा खाली-खाली महसूस करता हूँ। उदास रहता हूँ।"[11] यहाँ प्रमोद इस बाज़ारीकृत उपभोगवादी संस्कृति द्वारा आकार दिए गए अस्वस्थ मानव का प्रतीक है, जो खुद को बाहरी ताकतों द्वारा शोषण करने के लिए समर्पित है। जिसकी रुचियाँ और प्राथमिकताओं का हेर-फेर किया गया है। जिसका दिमाग, जीवन और श्रम दूसरों द्वारा नियंत्रित और शोषित हैं। उसके ऊपर हो रहे इस दमन से अनजान होकर वह, बाज़ार की मौज और धन समृद्धि को वास्तविक सुख की परिभाषा देता है। अर्थात् वह बाज़ार द्वारा रची गई छद्म दुनिया के छद्म सुख का शिकार है। कहानी में इस छद्म सुख को पाने की अंतहीन दौड़ ने प्रमोद को आंतरिक रूप से निष्क्रिय बना दिया था। एरिक फ्रोम्म के अनुसार सुख आंतरिक निष्क्रियता की स्थिति में नहीं खोजा जा सकता। वे कहते हैं कि - "सच्चा सुख पूर्णता का अनुभव करने से आता है, खालीपन को भरने की कोशिश करने से नहीं। आधुनिक व्यक्ति आनंद और सुख के विभिन्न रूपों से साक्षात्कार कर सकते हैं, फिर भी मूल रूप से ऊबा हुआ रहते हैं।"[12] अर्थात् उपभोगवादी मानसिकता वाले व्यक्ति मानसिक रूप से बहुत स्वस्थ दिखता है, वास्तव में सबसे अधिक अस्वस्थ व्यक्ति है। उसका स्वस्थ रहना असंभव है क्योंकि विलगाव ने उसे पूर्णतः घेर लिया है। कहानी में प्रमोद को बहुत समय के बाद विलगाव का बोध होता है। उसे महसूस होता है कि आज तक अपनी पत्नी और बेटी के प्रति जो रिश्ता उसने निभाया है वह भी कृत्रिम है। संबंधों में भी उसे पूर्णता की अनुभूति नही होती है। उसे मालूम होता है कि वह प्रेम, सुख और वात्सल्य का आज तक प्रदर्शन करता आया है। उनमें कोई सच्चाई नहीं है। प्रेम, वात्सल्य यह कोई अन्य भाव हो, वह आपकी वास्तविक 'स्व' का प्रतिबिंब होना चाहिए। लेकिन जब इस उपभोगवादी दौर में आपके

पास अपनी खुद की आत्मा ही नहीं हैं, तब दूसरों के प्रति रागात्मक भाव कैसे हो सकते हैं ? आज लोग सच्चे होने की, प्यार करने की, संवेदनशील होने की स्वांग ही रचते हैं।

विलगाव की स्थिति व्यक्ति के लिए तीव्र चिंता का कारण बनती है। एरिक फ्रोम्म कहते हैं - "खालीपन का सामना करने से जो व्याकुलता पैदा होती है, वह नरक की यातना से भी अधिक भयावह है। नरक में 'मैं' दंडित और प्रताड़ित हूँ, लेकिन खालीपन में 'मैं' पागलपन की कगार पर पहुँच जाता हूँ। क्योंकि अब मैं मुझे 'मैं' नहीं कह सकता।"[13] अर्थात् व्यक्ति खुद की दावा करने में असमर्थ हो जाता है। विलगाव से उत्पन्न यही पागलपन ही प्रमोद को एक अलग ही व्यक्ति बनाकर ऑफिस में ऊलजुलूल हरकतें करने के लिए मजबूर करता है। कार्यालय में शराब पीकर आना, अपने ऑफिस के सहकर्मी को झपट मारना, पराए स्त्री के प्रति कामोद्दीप्त होना और उसे मोहित करना, लोगों को अपने फिस्चुला का परिचय देते हुए मनोरंजन करना आदि उसका पागलपन ही हैं। वह ज़िंदगी में ऐसा कुछ करने की कभी कल्पना भी नहीं किया होगा। इन सभी हरकतों से वह अपने अंदर की खालीपन को भरने की कोशिश करता है और सच्चे सुख की तलाश में है। इस खालीपन को भरने के लिए वह भोग, संभोग, मौन, वाचालता, मिलनसारी को आज़माकर देखता है। लेकिन किसी में भी सुख की शाश्वत अनुभूति नहीं मिलती है। कहानी में एक प्रसंग है, जब उसे भोग में वास्तविक सुख मिलने की उम्मीद थी। "थककर उसने निर्णय लिया, भोग में ही वास्तविक सुख है। बिना विलम्ब किए बैंक से धन निकाला और अनाप-शनाप खर्च करने लगा। वह बेमतलब दो महनगरों की यात्राएँ कर आया, जहाँ उसने कैबरे देखा था और जुआ खेला था।"[14] लेकिन वह उपभोग में भी सुख ढूँढ नहीं पाया। बाज़ारीकृत व्यवस्था में मनुष्य केवल अपने आपसे, दूसरों से और अपने काम से ही नहीं, बल्कि उपभोग की प्रक्रिया से भी विलग है। एरिक फ्रोम्म के अनुसार - "आजकल, लोग केवल अधिक विशिष्ट, उच्च गुणवत्ता वाले और खास तौर पर नई चीजें खरीदने के विचार से ग्रस्त हैं। खरीदना और उपभोग करना उनका एक अनिवार्य और विवेकरहित लक्ष्य बन गया है। वे उन खरीदी हुई चीजों का आनंद लेने या उनका उपभोग करने की तुलना में खरीदने की प्रक्रिया पर अधिक ध्यान केंद्रित रखते हैं। हर एक का सपना बाज़ार में उपलब्द नए गेडजेट्स और मॉडेल्स हासिल करना होता है। यहाँ सच्चा आनंद प्राप्त करना अप्रधान बन गया हैं।"[15] अर्थात् व्यक्ति वस्तुओं के अधिकाधिक केन्द्रीकरण में ही मज़ा ढूँढ़ता है। ऐसे में इन वस्तुओं का उपभोग करने की वास्तविक आनंद दब जाता है। आनंद से अलग रहने की स्थिति केवल वस्तुओं के उपभोग से संबंधित नहीं, बल्कि जीवन के हर एक अनुभवों से भी जुड़ा हुआ हैं। किसी यात्रा को ले लें तो, यात्रा के पलों में व्यक्ति हमेशा फोटो खींचने में, सोशल मीडिया में उन तस्वीरों को अपलोड करने में और अधिकतर लाइक्स मिलने के काम में व्यस्त रहता है। व्यक्ति अपने कैमरे के लेंस के परे कुछ भी नहीं देख पाता और अनुभव कर पाता। अपनी यात्रा से जो कुछ भी वह अपने साथ वापस ले आता है, वह केवल तस्वीरों का एक संग्रह है, अनुभव नहीं।अर्थात जो कुछ भी व्यक्ति सुनता है, देखता है, अनुभव करता है, व्यक्ति पर उसका कोई भावात्मक असर नहीं होता है। कहानी में प्रमोद का अनाप-शनाप खर्च करना, महानगरों की यात्रा करना, जुआ खेलना, कैबरे देखना आदि में सुख ढूँढ़ न पाने का कारण यही है - वह बस उपभोग से जुड़ने केलिए उपभोग करता है। इसके पीछे पूँजीवादी बाज़ार व्यवस्था के दमनकारी रूप ही काम करता है। व्यवस्था व्यक्ति से यह बताती है कि यदि आपको समाज में फिट रहना है तो बाज़ार के मानकों के आधार पर ही चलना पड़ेगा। क्रय शक्ति ,स्टैटस सिंबल, प्रदर्शनकारिता आदि इन मानकों में आते हैं। व्यवस्था हमें यह भी बताती है कि जो व्यक्ति इन मानकों को आत्मसात करने में कामयाब नहीं होता है, वह समाज में असफल माना जाता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति जो खुद को समाज का हिस्सा मानता है, अपने ऊपर हो रहे दमन को सामाजिक अनिवार्यता मानकर अपना लेता है।

सच्चे सुख की खोज अंततः प्रमोद को एक सौ बारह साल की बुढ़िया के पास पहुँचाती है। बुढ़िया उसकी परेशानी सुनकर उससे कहती है - "हुँह ,बड़ा चला हैं सुखी होने ! बोल बेवकूफ , कभी तू दुखी हुआ है ? बोल, कभी सच्चे मन से दुखी हुआ है ?.... सुख को खोजेगा तो अपने को छलेगा। दुखी बन।"[16] यह बात सुनकर प्रमोद

पसीना-पसीना हो जाता है। वह महसूस करता है कि वह आज तक कभी दुखी नहीं हुआ है। दुखी बनने के प्रयास में वह गरीबों की बस्ती में, अनाथालय में, विध्वाश्रम में और अकाल से पीड़ित पथरीली जमीनवाले इलाके में जाता है। लेकिन सारी कोशिशें असफल हो जाती हैं। उन लोगों के दुख का कोई असर प्रमोद पर नहीं पड़ता है। धीरे-धीरे उसे एहसास होता है कि - "मैं कभी दुखी नहीं हो सकूँगा, न सुखी।' उसने सोचा, 'कितने साल हो गए होंगे, मुझे कभी पश्चाताप नहीं हुआ।'....'मेरे पास आँसू भी नहीं बचे। बचपन के बाद मैं रोया ही नहीं।"[17] व्यक्ति अपनी आर्थिक सफलता की दौड़ में और सुख-भोग में इतना आत्ममुग्द रहता है कि वह अपने आसपास के जीवन को समझने और उनके सुख-दु:ख से जुड़ने का प्रयास कभी नहीं करता। व्यक्ति छद्म सुख की इस दुनिया में लैस होकर बड़े हिस्से की असहाय और निराश्रय जनता से अलग हो जाता है। सच्चा सुख वह जीवन शक्ति है, जो व्यक्ति को जीवन की गहराई में उतरने से प्राप्त होती है। इसी जीवन शक्ति का अभाव आज के मानव में है। यही अभाव उसकी बेगानगी का कारण बनता है। कहानी में प्रमोद को यह बेगानापन का बोध होता है - "मेरी आत्मा खो गई है। मुझे यह पता भी नहीं कि कहाँ खोई। पहले मैं अक्सर उसे निकालकर रख देता था, इसी में वह कहीं खो गई। लोकनिर्माण विभाग के दफ्तर में, सड़क पर या किसी यात्रा में, पता नहीं कहाँ मैं ने उसे अपने से अलग रखा और वह खो गई...."उसकी आँखों के सामने अँधेरा छाता जा रहा था। सब कुछ डूबता हुआ सा लग रहा था।"[18] व्यक्ति सुख-समृद्धि की सीढ़ी चढ़ता गया कि उसने कभी पीछे मुड़कर देखने या आत्म-चिंतन करने की कोशिश नहीं की। जब उसे आभास होता है कि वह जिस भौतिक सुख को यथार्थ और सर्वोपरि मानकर चला था, केवल सुख का छद्म रूप था, तब तक वह खुद से पूर्ण रूप से असंपृक्त हो गया था। वह इस शापग्रस्त व्यवस्था से मुक्ति के लिए छटपटाहट करता है। लेकिन एक बार इस व्यवस्था में ढल जाए तो इससे मुक्ति पाना संभव नहीं है। उपभोगवादी संस्कृति में किस तरह व्यक्ति अपनी आत्मिक संसार को नष्ट कर रहा है - यह कहानी इसका बखूबी बयान करती है।

उपभोगवादी संस्कृति व्यक्ति, परिवार, समाज, आत्मा को किस तरह तहस-नहस कर रही है, इसकी सर्जनात्मक साक्ष्य हैं - 'हाकिम कथा' और 'शापग्रस्त'। 'हाकिम कथा' में सुख -समृद्धि के लिए संबंधों का इस्तेमाल करने की बाज़ारू मन स्थिति को दिखाई है। 'शापग्रस्त' तक आते-आते समाज में मौजूद छद्म सुख की वास्तविकता के आमने-सामने होकर अवसाद और असहायता से अकुलाते व्यक्ति की मुक्ति की तड़प देख सकते हैं। इन दोनों कहानियों के माध्यम से कहानीकार ने उपभोगवादी संस्कृति में लीन समाज को उसके दूषित परिणामों को दिखाया है। अखिलेश ने अपनी जीवंत लेखन शैली से समाज की सच्चाई को प्रस्तुत किया है। उनकी भाषा आकर्षक है जिसमें व्यंग्य और हास्य के साथ-साथ गहरी सहानुभूति की भावना भी शामिल है। इस तरह के अनूठे संयोजन ही उनकी कहानियों की विशेषता हैं।

संदर्भ :-

1. 1.https://www.marxists.org/archive/marx/works Karl Marx, Capital volume 1, Progress publishers, Moscow, 1887, Page no.27
2. Steven Miles, Consumerism as a way of life, Sage publication, London, 1998, Page no.18
3. अजय तिवारी, संचार बाज़ार और भूमंडलीकरण, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृ.सं.17
4. सच्चिदानन्द सिन्हा, भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ.सं.7
5. Jean Boudrillard, The Consumer Society myth and structure (English edition), Sage publication, London, 2017, Page no.43
6. अखिलेश, मुक्ति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ.सं.17

7. Eric Fromm, The Sane Society (Indian edition), Routledge, London, 2012 ,Page no.135
8. अखिलेश, मुक्ति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ.सं.19
9. वही, पृ.सं.19
10. वही, पृ.सं.29
11. अखिलेश, शापग्रस्त, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ.सं.37
12. Eric Fromm, The Sane Society (Indian edition), Routledge, London, 2012, Page no.196
13. वही, पृ सं. 198
14. अखिलेश, शापग्रस्त, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ.सं.34
15. Eric Fromm, The Sane Society (Indian edition), Routledge, London, 2012, Page no.131
16. अखिलेश, शापग्रस्त, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ.सं.38
17. वही, पृ.सं.39
18. वही, पृ.सं.40

lakshmipriyavraj@gmail.com
मो.नं - 7025659451

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 128-131
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Intersectionality and Democratic Inclusion: Reimagining Policy for Gender and Sexual Minorities in India

Shakkeeb P,
Research Scholar in Political Science,
University College Thiruvananthapuram

Abstract
India's democratic journey has been marked by constitutional promises of equality, dignity, and justice. Yet, for gender and sexual minorities, the lived reality often diverges sharply from these ideals. Despite landmark legal victories such as *NALSA v. Union of India* (2014) and *Navtej Singh Johar v. Union of India* (2018), structural exclusion persists. By examining the intersections of caste, class, religion, disability, and region with gender and sexuality, this paper highlights the inadequacies of current policies and proposes an intersectional blueprint for reform. Drawing on comparative perspectives, historical analysis, and contemporary activism, it contends that India's democratic imperative requires moving beyond tokenistic recognition toward substantive inclusion. Only through participatory, evidence-based, and intersectionally sensitive policies can realize the constitutional promise of full citizenship for all.

Keywords: Intersectionality, Gender and Sexual Minorities, Inclusive Policymaking, Democratic Citizenship, Social Justice in India

Introduction

India's democratic landscape has seen major changes in recent years, especially with the expansion of constitutional rights and greater recognition for gender and sexual minorities. Yet, the lived realities of lesbian, gay, bisexual, transgender, queer, intersex, and other non-binary individuals demonstrate that policy progress has not always produced substantive inclusion and equity. The framework of intersectionality i.e. acknowledging overlapping systems of oppression based on gender, caste, class, religion, and disability - offers both a theoretical tool and a practical imperative for creating policies that genuinely address the complexity of marginalized identities in India.

Theoretical Framework of Intersectionality

Intersectionality was first coined by the scholar Kimberle Crenshaw to illuminate how multiple forms of discrimination interact, often invisibly, to create unique obstacles for people at the crossroads of different identities. While intersectionality emerged from Black feminist scholarship in the United States, it resonates deeply in India, where stratification by caste, class, religion, and region intersects with gender and sexual identity (Pandey, 2025). Indian feminist scholars have argued for intersectional approaches, criticizing monolithic policymaking and pushing for strategies that reflect local context and multiple axes of oppression. By integrating

intersectional analyses, Indian policy can better account for the complexity of discrimination and move beyond one-dimensional responses such as women's issues or LGBTQ issues (Disha, 2025).

Gender and Sexual Minorities in India: Historical and Legal Overview

India has a long history of recognizing gender diversity like the Hijra community, Aravanis, and other non-binary identities have historical and cultural roots going back centuries. Colonial rule imposed rigid heteronormative laws, notably Section 377 of the Indian Penal Code, criminalizing same-sex relationships until the landmark Navtej Singh Johar v. Union of India verdict in 2018, which decriminalized homosexuality. The NALSA v. Union of India (2014) judgement recognized the right to self-identify as male, female, or third gender, ordering affirmative action for transgender individuals (Kothari, et al., 2019). However, the Transgender Persons (Protection of Rights) Act, 2019, passed in response to these judgements, has faced criticism for failing to adequately address the lived realities of India's transgender and non-binary population, with activists arguing it lacks substantive enforcement mechanisms and intersectional sensitivity (Singh & Rajamane, 2022). Despite these legal victories, many gender and sexual minority individuals continue to face exclusion from families, workplaces, healthcare, and public spaces. There are persistent gaps between changes in law and changes in social attitudes and institutional practices.

Intersecting Axes of Marginalization

- **Caste and Class**

One of the foundational insights of intersectionality in India is that the experience of queer individuals cannot be separated from the deeply embedded caste system. Dalit and Adivasi people from the gender-sexual minority, face compounded marginalization experiencing both caste-based discrimination and exclusion within queer spaces, which remain dominated by upper-caste voices and norms. Economic status also defines access: while urban, upper-caste gay men may have support networks and social acceptance, those from rural and lower-income backgrounds often lack these resources (Pandey, 2025).

- **Religion and Region**

Religious conservatism and discrimination function as another axis, with queer individuals from Muslim, Christian, and minority faith communities often facing unique vulnerabilities. These include both homophobia and transphobia within their religious communities and additional marginalization in broader society. Region plays a role as well rural populations face worse access to affirmative legal, health, and welfare services than their urban counterparts (Disha, 2025).

- **Disability and Health**

Disability intersects with queerness in multifaceted ways. For example, many disabled queer persons experience stigma and a lack of accessible services, both in mainstream disability frameworks and in LGBTQIA+ organizations. Mental health is an under-addressed area, with high rates of depression, anxiety, and suicide among gender and sexual minorities further shaped by class, caste, and region (India's LGBTQIA+ community notches legal wins but still faces societal hurdles to acceptance, equal rights, 2024).

- **Urban vs. Rural Divide**

Access to resources, awareness, and social networks is sharply divided between urban centres and rural communities. Queer people in rural India often face heightened risk of violence, invisibility, and lack of legal redress, with policies primarily benefiting urban populations.

Gaps in Current Policy Landscape

Despite progressive legal developments, India's policy framework for gender and sexual minorities remains fragmented, under-enforced, and insufficient. The Transgender Persons (Protection of Rights) Act, 2019, while a landmark in statutory recognition, exemplifies the

limitations of current policy approaches. Although the Act prohibits discrimination in nine domains - including education, employment, healthcare, and access to public services - it lacks robust enforcement mechanisms, clear accountability structures, and meaningful remedies for violations (Bhattacharya, Bandana, & Ghosh, 2022). Moreover, it fails to incorporate intersectional considerations such as caste, class, disability, and regional disparities, thereby rendering its protections uneven and often inaccessible to the most marginalized. Policies for protection the rights of gender sexual minorities in India lacks clarity on enforcement and fails to address structural inequalities (Sucheta, 2025). Key shortcomings include: Absence of comprehensive anti-discrimination laws with intersectional oversight, Poor implementation due to bureaucratic inertia and political apathy, Lack of disaggregated government data on intersectional experiences, Tokenistic representation in public discourse without substantive engagement and so on.

Formulating Inclusive Policies through an Intersectional Lens

To deliver genuine inclusion, policies should be participatory, evidence-informed, and intersectionally sensitive:

- Participatory Policy-Making: Policymakers must engage with diverse queer groups, Dalit and Adivasi collectives, grassroots gender rights networks, and marginalized voices in public consultation.
- Inclusive Healthcare: Policies should guarantee equitable access to gender-affirming procedures, mental health support, and sexual health services for all gender and sexual minorities, prioritizing those facing multiple forms of exclusion.
- Education and Employment Reform: Anti-bullying programs, inclusive curricula, workplace sensitization, and non-discrimination policies must address the realities of caste, class, gender identity, and HIV status. Employment and social protection schemes should prioritize those most marginalized.
- Legal and Institutional Mechanisms: Establish independent anti-discrimination commissions with powers to investigate complaints and enforce remedies, staffed by representatives from marginalized groups.
- Intersectional Data and Research: Regular national surveys and studies should gather disaggregated data by caste, religion, region, gender identity, and sexual orientation, informing evidence-based policies (Sucheta, 2025).

The Role of Civil Society and Media

Civil society organizations remain critical, both as advocates and as bridges between the state and marginalized communities. Intersectional activism is evident in the work of collectives organizing against caste and queerphobia, and in coalition-building with disability and religious minority groups (Singh & Rajamane, 2022). Media plays a vital role in shaping public perceptions by promoting affirming narratives, amplifying marginalized voices, and deconstructing stereotypes. Successful campaigns, such as those challenging the representation of transgender persons or highlighting the needs of Dalit queer individuals, have begun to change public discourse.

The Democratic Imperative

India's democracy rests on constitutional values of dignity, equality, and pluralism. The Supreme Court's verdicts in *NALSA* and *Navtej Singh Johar* affirmed these principles. However, constitutional morality demands not just the removal of overt discrimination but also proactive, intersectional inclusion as envisioned in Articles 14 - 21. Intersectionally informed policy is vital to deepen democratic participation, dismantle the structures of exclusion, and realize the promise of full citizenship for all Indians (Disha, 2025).

Conclusion

Genuine inclusion for gender and sexual minorities in India requires moving beyond legal recognition and headline reforms. Intersectionality provides both a lens to understand oppression and a method to create change. Policies must be led by those most affected, founded upon comprehensive data, and sustained by democratic pluralism. Only then can India advance towards dignity, justice, and true inclusion for every citizen not just in law, but in everyday life. This article has argued that inclusive policymaking for gender and sexual minorities in India must be participatory, evidence-based, and intersectionally sensitive. It must centre the voices of Dalit queer persons, disabled trans individuals, rural lesbians, and others whose lives defy simplistic categories. It must build institutional mechanisms for accountability, gather disaggregated data, and reform education, healthcare, and employment systems.

References

1. Bhattacharya, S. , Bandana, & Ghosh, D. (2022). 'Transgender Persons (Protection of Rights) Act' of India: An Analysis of Substantive Access to Rights of a Transgender Community. *Journal of Human Right Prcatice, 14*(2), 676 - 697. doi:10.1093/jhuman/huac004
2. Disha, K. (2025). Intersectioanilty within the LGBTQI+ Community in India. *TIJER - International Research Journal, 12*(3), b191 - b199.
3. *India's LGBTQIA+ community notches legal wins but still faces societal hurdles to acceptance, equal rights*. (2024, May 17). Retrieved from https://news.un.org: https://news.un.org/en/story/2024/05/1149956
4. Khalid, S., & Bouakaz, L. (2025). Gender, power and intersectionality in India: A comprehensive literature Review. *Research Journal in Advanced Humanities, 6*(3), 1-13. doi:10.58256/630j1463
5. Kothari, J., Ganesan, D., Dadoo, S., Mandakini J, Choudhary, D., & Adhirai S. (2019). *Intersectionality.* Centre for Law and Policy Research.
6. Pandey, S. (2025, May 5). *Intersectionality in India: Moving Beyond Western Ideas*. Retrieved from https://www.eurac.edu: https://www.eurac.edu/en/blogs/gender-matters/intersectionality-in-india-moving-beyond-western-ideas
7. Singh, M., & Rajamane, M. (2022). *Welfare as a Human Right: An Intersectional Approach to Trans Rights in India.* Oxford Human Right Hub.
8. Sucheta. (2025). *Mapping the Progression of LGBTQ+ Rights in India- Important Laws and Judicial Pronouncements.* scconline.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 132-135
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भूमंडलीय संकट के परिप्रेक्ष्य में बालमन

प्रियंका श्रीवास्तव
हिंदी शिक्षिका,
आनंद भवन, राजबाड़ी पारा, जलपाईगुड़ी, पश्चिम बंगाल पिन :735101

शोध सार : मूल्यगत संवेदनाओं की अपेक्षित सार्वभौमिक सांस्कृतिक परिणति भूमंडलीकरण के नाम से परिघटित हुई। भूमंडलीकरण के बाद विकास के नाम पर, विकास के भ्रम में भौतिक समृद्धि से परिपूर्ण और चेतना के स्तर पर शून्य नई सभ्यता का जन्म हुआ। इससे उत्पन्न संकट ने पारिवारिक, सामाजिक संरचना में विसंगति पैदा कर दी और इससे उत्पन्न संकट के चपेट में बालमन सर्वाधिक प्रभावित हुआ। भूमंडलीय वातावरण में बच्चों के साथ संकट गहराया है। एक ओर परिवार के बीच में रहते हुए भी अकेलेपन, अजनबीपन का संत्रास झेल रहे है, तो दूसरी ओर माता-पिता का स्टेटस सिंबल बनकर प्रतिस्पर्धात्मक माहौल की त्रासदी को झेलने को विवश है, जिसकी पड़ताल इस शोध आलेख में की गई है।

बीज शब्द : मूल्यगत संवेदना, सांस्कृतिक, भूमंडलीकरण, परिवार, अकेलापन, अजनबीपन, स्टेटस सिंबल , प्रतिस्पर्धात्मक माहौल

नव साम्राज्यवाद के तहत वैश्वीकरण का जो सभ्यतामूलक परिणाम रहा, उसके कारण परिवार और समाज के पारस्परिक संबंध विघटित हुए। पारिवारिक मूल्य से सामाजिक संरचना के प्रभावित होने की अपेक्षा एक सिरे से कपोल कल्पना में बदल गई। सामाजिक मूल्य पारिवारिक संबंधों पर हावी हो गए। इस कारण परिवार सामाजिक संगठन का कारण न रहकर नई सामाजिक संरचना का परिणाम बन गया और इसमें सर्वाधिक बच्चे प्रभावित हुए। भूमंडलीय परिप्रेक्ष्य में परिवार में बच्चे अकेलेपन के संत्रास को झेल रहे है। प्रतिस्पर्धात्मक माहौल में माता-पिता के लिए स्टेट्स सिंबल बन कर रह गए है। बुरी लतों की चपेट में आकर अपने बचपने की तिलांजलि दे रहे है। बच्चों के साथ उत्पन्न संकट को २१वीं सदी में 'पत्ताखोर', 'तत्वमसि', 'गिलिगुड', 'दाखिला', 'काला लिबास', 'बड़ा पोस्टर', 'कोई बात नहीं' रचनाओं में विषय बनाया गया है।

परिवार कहा जाता है भावनात्मक परिवेश को। लेकिन भूमंडलीय परिपेक्ष में परिवार की जो नई संरचनाएं आई वह भावना के स्तर पर शून्य केवल सूचना प्रधान बनकर रह गई है। पुष्पपाल सिंह भूमंडलीकरण के संदर्भ में भाव शून्यता को लेकर लिखते हैं : "आज संबंध, उन संबंधों का प्रेम भाव, ऊष्मा जिस रूप में शेष हो रही है, वह जीवन का बहुत ही पीड़ादायक और कारुणिक पक्ष है।"१ आज परिवार में बच्चा भावना के स्तर पर स्वयं को रिक्त पा रहा है। मधु कांकरिया का उपन्यास 'पत्ताखोर' में 13 वर्षीय बच्चा आदित्य नशे की गिरफ्त में चला जाता है। डॉ कोठारी उसके पिता हेमंत

बाबू के पूछने पर उसकी स्थिति के पीछे के कारण को बताते हैं : " देखिए...हर बच्चे के जीवन में परिवार की बहुत अहम भूमिका होती है...मां-बाप का गहरा प्यार अंधेरे से अंधेरे तहखानों में भी उजाला भर देता है।"२ परिवार में पति-पत्नी के बीच अपना करियर इतना महत्वपूर्ण हो गया है कि बच्चा अकेला रह जा रहा है। स्वयं आदित्य के शब्दों में : "मेरे और मां के दरम्यान 'मे आई कम इन मैडम' वाला माहौल था।"३ भूमंडलीय परिवेश में संकट यह है कि बच्चे की ऐसी मनोदशा को जानने के बावजूद बच्चों के प्रति मां की चिंता नदारत नजर आती है।

परिवार के भीतर माता-पिता के आपसी कलह और व्यस्तता के बीच बच्चा किस कदर असुरक्षित और अकेला महसूस कर रहा है, भावनात्मक रूप से कमजोर हो रहा है, इसे मधु कांकरिया की कहानी 'दाखिला' और चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'गिलिगुड' में विषय बनाया गया है। 'दाखिला' कहानी में मां द्वारा सब्जी काटने के लिए लाए गए चाकू को बच्चा विक्रम बार-बार छिपा कर बाहर फेंक देता है, क्योंकि उसे डर है कि कहीं पिता इससे उसकी मां को आहत ना कर दे। माँ के पूछने पर विक्रम कहता है- "मैने फेंके है ये चाकू वहां, मुझे डर था कहीं पापा गुस्से में यह चाकू ही तुम पर ना फेंक दें, उस दिन गर्म-गर्म चाय किस प्रकार फेंका था पापा ने।"४ माता-पिता के आपसी तनाव के कारण बच्चा असुरक्षित महसूस कर रहा है।

मां-बाप की व्यस्तता के कारण आज बच्चों के सामाजिकीकरण की प्रक्रिया समाप्त हो गई है। माता-पिता अपनी व्यस्तता में बच्चों को एक प्रकार से समाज से काट कर रख रहे हैं। माता-पिता के प्रेम, स्नेह की जगह कंप्युटर गेम ने ले ली है। इसे चित्रा मुद्गल 'गिलिगड्डु' उपन्यास में मलय और निलय के संदर्भ में दिखाती हैं कि नन्ही पीढ़ी गेम पर इस कदर निर्भर हो गई है कि गली के बच्चों के साथ खेलने में उनकी कोई रुचि नहीं रहती। उनके दादा जसवंत सिंह बच्चों की समस्या को लेकर चिंतित होकर सोचते हैं "नरेंद्र और बहू विचित्र तब भी लगे जब बच्चों के बिना मांगे ही वह उन्हें विचित्र-विचित्र खेल-खिलौने ला कर दिया करते थे। वे खेल-खिलौने नन्हे मलय-निलय को अपने में उलझाए रहते। उन्हें किसी की जरूरत महसूस नहीं होती। कानपुर आते तो उन्हीं खेलों के साथ आते। गली के बच्चों के साथ खेलने में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं होती।"५ बच्चे भी भौतिकतावादी सभ्यता की चपेट में भौतिक वस्तु में ही खुशी देखने लगते हैं। पुष्पपाल सिंह लिखते हैं "भूमंडलीय विकास व्यवस्था में हंसी और खुशी मात्र भौतिक है, आत्मिक नहीं।"६

आज परिवार के भीतर बच्चे का व्यक्तित्व दम-घोट रहा है। बच्चा, माता-पिता की महत्वाकांक्षा व उनके स्टेटस का सिंबल मात्र बनकर रह गया है। इसलिए उसके बचपने की तिलांजलि देकर विकास की अंधी रेस में उसे भी झोंक दिया जा रहा है। बच्चों के मामले में माता-पिता का रवैया सामाजिक दबाव में बदल चुका है। बचपना की जगह सूचना प्रधान सभ्यता हावी हो रही है। सूचनाओं को इकट्ठा करने और समाज में अपना सोशल स्टेटस बनाने का नया चलन शुरू हुआ। इसके कारण नन्ही पीढ़ी संकट में है और भूमंडलीकरण के बाद यह सकंट और भी भयावह हो गई है। इस प्रतिस्पर्धामूलक सभ्यता में नन्ही पीढ़ी के सामने जो संकट है, उसका परिणाम यह है कि बच्चा मानसिक तनाव से गुजर रहा है और कभी-कभी आत्महत्या, हत्या तक कर रहा है। इसका प्रतिरोध 'कोई बात नहीं', 'काला लिबास', 'बड़ा पोस्टर', 'दाखिला में दर्ज हुआ है। सूचना प्रधान सभ्यता के प्रतिरोध में मधु कांकरिया ने 'दाखिला में लिखा है- "मां-बाप का इतना ध्यान की बचपना ही नुच जाए बच्चों का। हालत यह कि अच्छे भले घरों में सब्जी तो खाई जा रही हैं चटनी की तरह और सारा पैसा बह रहा है बच्चों के दिमाग में जानकारियां ठूंसने में, मास्टरों को मोटी-मोटी फीस चुकाने में। पर्सनैलिटी डिवलपमेंट कोर्स, लीडरशीप कोर्स, कंप्यूटर कोर्स कर कर ही कोई विद्यासागर या शेक्सपीयर बन जाएगा? जानकारियाँ इतनी ठूंस दी जाती है कच्चे दिमाग में कि कल्पना और सुंदर विचारों के लिए जगह ही नहीं बन पाती और इसी का

परिणाम है कि दिमागी रूप से अपरिपक्व और कमजोर ही बन रही है यह पीढ़ी। जरा-सा धक्का लगा कि ढेर।"७ सुषमा बेदी की कहानी 'काला लिबास' और मधु कांकरिया का 'बड़ा पोस्टर' दोनों कहानी में बच्चे विक्षिप्त हो जाते हैं, तो इसके पीछे माता-पिता के अपने स्टेटस को बनाए रखने के लिए विकास की अंधी दौड़ में बच्चे को झकझोरना है। 'काला-लिबास' की अनन्या अपने माता-पिता की तरह डॉक्टर नहीं बनना चाहती, उसकी रुचि हिंदी भाषा में है। वह अपने प्रोफेसर से कहती हैं "हिंदी की किताबें... तस्वीरे! बस अपना-सा लगता है उसे यहां आकर।८ लेकिन परिवार से डॉक्टर बनने के दबाव में अंततः मानसिक अस्पताल पहुंच जाती हैं। प्रोफेसर के शब्दों में " वह घर से शायद असंतुष्ट थी। आप शायद से डॉक्टरी पढ़वाना चाहती थी..... आप और आपके पति दोनों डॉक्टर है ना।"९ बड़ा पोस्टर का दीपू माता-पिता वह भाई की उम्मीद पर खड़े होने की अंधी दौड़ में इस तरह मानसिक रूप से टूटता है कि फिर कभी ठीक नहीं हो पता विक्षिप्त होकर रह जाता है।

भूमंडलीय परिप्रेक्ष्य में परिवार और समाज का संबंध इस रूप में है कि परिवार के मूल्य समाज में नहीं जा रहे है, बल्कि समाज के मूल्य परिवार में आ रहे है। समाज प्रतिस्पर्धामूलक है, इसलिए संबंध भी प्रतिस्पर्धामूलक हो रहे है। अलका सरावगी का उपन्यास 'कोई बात नहीं' में बच्चा शशांक अपनी शारीरिक अक्षमता के साथ परिवार में मां के व्यवहार के कारण दबाव में जीता है। उसका अपना व्यक्तित्व मिट्टी हो जाता है, क्योंकि माँ उसकी समस्या को समझने की जगह उसके पढ़ने को अपनी प्रतिष्ठा का सिंबल मानती हैं, इसलिए उसे पढ़ाने के लिए कभी व्हीलचेयर, तो कभी टाइपराइटर खरीदती है, पर उसकी भावनाओं से नहीं जुड़ती। अलका सारावगी के शब्दों में "दुनिया के सारे मां-बाप अपने बच्चों का अपनी समझ से सिर्फ भला करना चाहते हैं। पर कई बार गलतियां कर बैठते हैं, क्योंकि उनकी समझ सिर्फ उनके इसी नजरिए से पैदा होती है कि वह बच्चे का भला कर रहे हैं।"१० सबसे बड़ा संकट यह भी है कि ये प्रतिस्पर्धा अब समाज और परिवार के बीच ही नहीं, बल्कि पारिवारिक स्तर पर भी घटित हो रही है। अब दूसरों के बच्चे और अपने बच्चों में ही प्रतिस्पर्धा नहीं हो रही, बल्कि भाई-भाई, बहन-बहन के बीच का संबंध भी भावना की जगह प्रतिस्पर्धामूलक बना दिया जा रहा है। मधु कांकरिया की 'आर आसबो न' कहानी में यह समस्या दर्ज है। जहां गोपी अपनी छोटी बहन प्रियंका से तुलना में परिवार द्वारा हर अवसर पर कमतर महसूस करा दिया जाता है और अंततः परीक्षा में परिवार की उम्मीद पर खड़ा ना उतर पाने के अपराध बोध में आत्महत्या का रास्ता चुनता है। वह परीक्षा से नहीं, बल्कि परिवार से हारता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भूमंडलीय परिप्रेक्ष्य में वर्तमान में जो सभ्यता जारी है, इसमें बचपन में बचपना की जगह सूचना, भावशून्यता ने ले ली है। विचार का अंत प्रारंभ हो गया है। पारिवारिक संबंध में बच्चे और माता-पिता के बीच प्रेम, आत्मीयता जैसे संबंध नाम मात्र के रह गए है। पहले प्रतिस्पर्धा सामाजिक स्तर पर थी और अब पारिवारिक स्तर पर भी है और इस सारे परिदृश्य में माता-पिता सभ्यता के स्तर पर बच्चों का भला चाहते हैं, विकास चाहते हैं, लेकिन अंततः विकास हो नहीं पाता। इस नाते वर्तमान जो सभ्यता जारी है, उसके तहत परिवार एक सामाजिक इकाई है और आज समाज के हिसाब से पारिवारिक संरचना निर्मित हो रही है। उसका प्रतिरोध ही बेहतर सभ्यता का प्रस्थान बिंदु है। इसे 21वीं सदी के कथाकारों ने विषय बनाया है और बच्चों की इन समस्या के प्रति चिंता व्यक्त की है ताकि समाधान की दिशा में प्रशस्त हुआ जा सके।

संदर्भ :

१ पुष्पपाल सिंह, भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास,प्रथम संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2012, पृष्ठ २६९

२ मधु कांकरिया, पत्ताखोर, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन २०१७, पृष्ठ ७४-७५

३ मधु कांकरिया, पत्ताखोर, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन २०१७, पृष्ठ १०
४ मधु कांकरिया, "दाखिला", बीतते हुए कहानी संग्रह, दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन, २०१७, पृष्ठ १४५
५ चित्रा मुद्गल, 'गिलिगडु', पांचवां संस्करण, सामयिक प्रकाशन, २०१०, पृष्ठ ३४
६ पुष्पपाल सिंह, भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास,प्रथम संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2012, पृष्ठ २६८
७ मधु कांकरिया, "दाखिला", बीतते हुए कहानी संग्रह, दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन, २०१७, पृष्ठ १४५
८ सुषमा बेदी, काला लिबास, अभिव्यक्ति, १ दिसंबर २००६.
https://www.abhivyaktihindi.org/kahaniyan/vatan_se_door/2006/kala_libas/kalalibas2.htm
९ वही
१० अलका सरावगी, शेष कादंबरी, राजकमल प्रकाशन, २००८, पृष्ठ १७७

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 136-139
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'एक कहानी यह भी' में स्त्री की आतंरिक वेदना

रीना गिरी
शोधार्थी,
डॉ. सरिता रावत
शोध निर्देशक,
असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी विभाग,
श्री शंकराचार्य प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, भिलाई

प्रस्तावना - मन्नू भंडारी की आत्मकथा में ' एक कहानी यह भी ' में एक महिला किस प्रकार अपने वजूद के लिए संघर्ष करती है इसी का साक्षात् चित्रण इस कहानी में देखने को मिलता है | एक नारी जो अपने अस्तित्व को खो बैठी है ,जो समाज में अपने अस्तित्व को पाना तो चाहती है पर इस समाज की पुरानी कुरीतियों ने उसे इस प्रकार जकड़ रखा है की मानो वह किसी शिकंजे में फंस चुकी है और चाह कर भी वह इस शिकंजे से बाहर नहीं निकल पा रही है | लेखिका ने स्त्री के स्त्रीत्व को नष्ट होते देखा है | इस पित्रस्तात्मक समाज में वह अपने अस्तित्व को खो बैठी है | इस आत्मकथा में लेखिका नारी के भूमिगत विचार पर विचार करतीं हैं | नारी के नारीत्त्व को वह नई दृष्टी से देखती है जिसे वह स्पष्ट रूप से वह बताना चाहती है की इस जीवन में वह हर पल अपने अस्तित्व को बचाना चाहती है | इस आत्मकथा में स्त्री विमर्श के आधार पर वह स्पष्ट रूप से यह बताना चाहती है की नारी का जीवन केवल घर – परिवार को चलाने के लिए नहीं है बल्कि जीवन के उन पहलुओं को भी जानने के लिए है जिसे समाज यह समझता है की नारी अपने जीवन में इस कार्य को कभी भी कर ही नहीं सकती है | समाज में किस प्रकार पारिवारिक दबाव को बनाया जाता है , किस प्रकार नारी को उसके वजूद से वंचित किया जाता है इसका साक्षात् चित्रण हमें इनकी रचना में देखने को मिलता है | इस समाज के द्वारा वह अपने जीवन के सभी वेदना को उजागर करती है | उस समय की सभी महिलाओं ने अपने जीवन में उन सारी गतिविधियों को समझने का प्रयास किया है | जिसके द्वारा एक नारी हर पल प्रताड़ित होती है और हर पल अपने जीवन मे संघर्ष करती है | नारी के लिए अपनी पहचान बनाना सबसे आवश्यक हो जाता है जब वह अपने जीवन की असिम्ता को खो बैठती है | स्त्रियों ने हर पल अपने जीवन की सारी खुशियों को त्यागा है | स्त्री का जीवन हर पल अपने अस्तित्व की मांग करता है |

शब्द -कुंजी - कुरीतियों , संघर्ष , पित्रसत्तात्मक , प्रताड़ित , दृष्टि , विद्रोह

स्त्री को दोहम दर्जे में न रख कर स्त्री को स्वतंत्र रूप से जीवन जीने का अध्याय लेखिका सीखती है | स्त्री का जीवन हर पल संघर्षों में रहता है | मन्नू भंडारी ने स्त्री के संघर्ष को हर पल एक नया आयाम दिया है| इस कहानी में स्त्री विमर्श के सारे पहलुओं पर जोर दिया गया है | जिसे हर क्षण स्त्री अपने जीवन में निभाती है और हर क्षण अपने जीवन की महत्वपूर्ण तथ्यों को अपने जीवन में उजागर करती है | उनकी जीवन की शैली , उनकी वेदना उनका जीवन उनसे अपने अस्तित्व को प्राप्त करने की चेष्टा करता है | उनका जीवन न केवल घर की चाहर -दिवारी में हो बल्कि समाज में भी इनका खुलेआम वर्चस्व हो जिस प्रकार पुरुषवादी समाज का होता है | यह समाज आज का समाज है जो धीरे – धीरे स्त्रियों को पहचानने लगा है | प्रभा खेतान 'अन्या से अनन्या' में कहती है की – '' साथ ही मैंने यह भी महसूस किया की मेरा रिश्ता अब मेरी मर्जी पर निर्भरशील नहीं था , वह टिका था बाहरी शक्तियों पर | भीतर सन्नाटा था | पर बाहर मैं ताकत बटोरती रहती अपने अंह से | मैंने उस हिस्से पर कब्जा किया था , जो मेरा नहीं था , आखिर मैंने अपनी एक ैशियत बनाई थी | और अब मुझे वहां डटे रहना है |'' [1]

इन वाक्यों से स्पष्ट हो जाता है की एक महिला चाहे वह कितनी भी सफल क्यों न हो जाय पर वह इस दोहरे समाज में बिना किसी सहारे के अथार्त बिना किसी पुरुष के सहारे के उसे तुच्छ ही समझता है | यह समाज केवल आपके एक गलती का इंतजार करता है जैसे की वह किसी बड़ी ताक में हो की कब उसे किसी भी एक कमजोरी का पता चले और वह आपकी खूबियों को भुला कर आपकी बुराइयों का ढिंढोरा पिटे | 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में पुष्पा मैत्रेयी जी लिखती है की किस प्रकार डा. राजन ने कहा की भाभी एक आदर्श स्त्री वही है जो – '' परामर्श में मंत्री सी ,सेवा में नित दासी सी है

भोजन में माता सम है , शयन समय रम्भा सी हैं | ''(होंगी) [2]

इन वाक्यों से यह स्पष्ट हो जाता है की एक नारी के लिए पुरुषों के ह्रदय में किस प्रकार के भाव है | पुरुष केवल स्त्रियों को भोग की वस्तु समझता है उसे हर क्षण भोगने की ही सोचता है | नारी का जीवन केवल भोग -विलास के लिए ही बना है | नारी का जीवन केवल संघर्षों और तकलीफों से भरा पड़ा है | आज नारी अपने जीवन को सशक्त बना चुकी है वह हर पल अपने जीवन की सारी तकलीफों को झेलने की ताकत रखती है | नारी का जीवन केवल उसका ही रहें वह भी खुले आसमान में अपनी पंखों को फैला कर उड़ना चाहती है| नारी अपने जीवन में खुद को संभाल कर दुनिया के सामने अपने आपको सशक्त कर लेती है | कितनी भी विषम से विषम परिस्थितियाँ क्यों न आया जाए ? अपने आप को मजबूत बना कर रखती है | नारी का जीवन हम जितना आसान समझते है उतना आसान होता नहीं उसे अपने जीवन बहुत से त्याग देने होते है जो उसे जीवन में आगे ले जाने के लिए बहुत ही आवश्यक है | जीवन जीने के लिए आवश्यक इसलिए है क्यों की उसका जीवन अब आम जीवन न होकर इस समाज के लिए कठिन जीवन हो चूका है| आज की नारी अपने युग की एक वीरांगना नारी है | जो जीवन के हर पहलुओं को समान रूप से झेलने की क्षमता रखती है | नारी केवल नारी न होकर इस समाज के लिए एक ढाल के समान है जो हर पल अपने जीवन की महत्वपूर्ण पहलुओं को महत्व देती है | मैत्रेयी लिखती है की – '' असलियत यह थी की जो घर के घेरे तोड़कर बाहर निकलती है , पुरुषों की बराबरी से काम करती है , वे हमें शानदार लगती हैं | यह हम भीतर ही भीतर मान रहे थे | इर्ष्या तुच्छता से नहीं , बड़प्पन से हुआ करती है , जो हमें थी | इर्ष्या -डाह या दोस्ती और लगाव में एकजुट हुई स्त्रियाँ .... यही रूप हमारे अड्डे का था|''[3]

नारी समाज की केंद्र बिन्दु है | वह समाज का निर्माण करती है | हमारा समाज बिना नारी के गठित हो ही नहीं सकता है | नारी का जीवन हर पल संघर्षों से भरा हुआ है | नारी अपने जीवन का सबसे महत्वपूर्ण समय अपने जीवन

साथी के साथ गुजार देती है | और वही जीवन साथी उसे केवल प्रताड़नाओं के और कुछ भी नहीं देता है यहाँ तक की एक वक्त क खाना भी उसे सही से नसीब नही होता है | एक नारी जो हर पल अपने जीवन की सारी कठिनाइयों को अपने ह्रदय में दाब कर बैठी रहती है | स्त्री का जीवन केवल उसका जीवन न होकर केवल पुरुषवादी समाज का जीवन हो गया है जिसे वह जब चाहे , जैसे चाहे अपने हिसाब से चला सकता है | मन्नू जी अपने सपनों के सन्दर्भ में लिखती है '' बहुत सपने देखे थे इस जिंदगी को लेकर,बहुत उमंग भी थी ,लेकिन जल्दी ही राजेन्द्र की लेखकीय अनिवार्यताओं और इस जीवन से मेरी अपेक्षाओं का टकराव शुरू हो गया जो फिर कभी समय पर आया ही नहीं | ''[4]

मन्नू जी ने अपने जीवन के सबसे सुन्दर सपने को राजेन्द्र जी के साथ ही देखा था पर जब वहां से उन्हें निराशा हाथ लगी तो मानो उनकी दुनिया ही उजड़ गई हो | एक स्त्री के लिए उसका पति ही उसका सब कुछ होता है पर जीवन के सफर में वही मुकर जाय तो भला वह स्त्री खुद को कैसे संभाल पाएगी परन्तु मन्नू जी एक संघर्षशील महिला थी जिस कारण उन्होंने अपने जीवन के सभी उतार -चढ़ाव को अकेले ही संभाला और एक स्वतंत्र लेखिका के रूप में भी सफल हुई | उस समय भारतीय जितनी भी महिलायें थी वे बड़ी ही बेबाकी से अपनी व्यथा को अपनी लेखनी के माध्यम से समाज के समाने लाने का प्रयास करती है | पहले के समाज को किसी भी महिला को अपनी अंतर्वेदना बताने का भी हक़ नहीं था वह हर पल अन्दर ही अन्दर घुटती रहती है पर उसी समाज में कुछ बेबाक अत्मकथाकर महिलायें भी थी जिन्होंने बड़ी बेबाकी से अपने जीवन की सारी व्यथा को जनता के सामने खोलकर रख दिया है उनके नाम है प्रभा खेतान , मैत्रेयी पुष्पा , मन्नू भंडारी , सुशीला टाकभौरे इत्यादि जिन्होंने अपने जीवन की सारी वेदना को अपने कलम के माध्यम से अपनी जीवन की सारी चेष्टा को अपने लेखनी में उतार दिया| इनका मानना था की जब तक जीवन में अपनी कष्टों को लोगों के सामने न रखा जाय तब तक लोग इससे अवगत नहीं होंगे | ''मन्नू भंडारी विवाह को एक ऐसा बंधन मानती है ,जिसे आदमी स्वेच्छा से अपनाता है , यदि उसे यह बंधन कष्टकर लगे तो उसके पास बच निकलने का कोई रास्ता ही नहीं रह जाता है |''[5]

निष्कर्ष –

भारतीय महिलाएं केवल अपने जीवन की उन सारी बातो को न बता कर उन बातों को भी बताया जो आम जनता के लिए काफ़ी कष्टदायक और काफ़ी महत्वपूर्ण है | आज का समाज अब यह समझ गया है की किस प्रकार यह समाज महिलाओं को उनके हक़ नहीं न देता है | महिलाओं को केवल भोग – विलास की वस्तु को समझता है उसे केवल भोगना चाहता है , उसे दुनिया के सामने लाने से डरता है , वह चाहता ही नहीं है की यह समाज उसे अपनाए | वह केवल भोग की वस्तु समझता है | एक कहानी यह भी में केवल महिलाओं की स्थिति को ही नहीं बल्कि जीवन की उस प्रेम -प्रसंग को भी उजागर किया है जिसे वह जीवन में हर कार्य से पहले रखती है | उनका जीवन मानों उनका न होकर उनके प्रेमी के लिए हो गयी थी | उनका प्रेमी भी जीवन में उनको आ' आधुनिक लाइफ स्टाइल ' के नाम पर उन्हें त्याग देता है | उनका जीवन केवल दुःख , वेदना और कष्टों से भरा रहता है | उनका मानना है की स्त्री को किसी भी कीमत पर अपने अस्तित्व को खोने नहीं देना चाहिए | इस आत्मकथा के द्वारा हमें यही समझने को प्राप्त हुआ की जीवन एक संघर्ष का मैदान है और ख़ास कर अगर कोई महिला अपने जीवन को खुद संवारने और अपने वजूद की तलाश में निकले तो ये जीवन उसके लिए और भी कठिन हो जाता है | समाज ने हमेशा नारी के साथ अन्याय किया है | एक सफल नारी को यह समाज कभी भी बर्दाश्त कर ही नहीं पाया है | यह समाज केवल पुरुषों को ही महत्व देता आया है | पुरुषों की कामयाबी पर इतराता आया है पर अगर किसी महिला की सफलता की बारी आती है तो वह इसे स्वीकार करने में कतराता है | इस आत्मकथा में स्त्रियों के आंतरिक भाव को अन्दर से टटोल के देखने पर हम यही पायेंगे की इनकी वेदना

को समझने वाला कोई है ही नहीं | स्त्रीयों का जीवन मात्र एक कठपुतली के समान है जिसे पुरुषवादी समाज केवल अपने इशारे पर नचाना चाहता है | समाज को यह स्वीकार करना होगा की अब महिलायें अपने अधिकारों को पहचान चुकी है इन्हें अब अपने अधिकारों की मांग को पूरा करना भी आ गया है | इस आत्मकथा में लेखिका हमें यही सन्देश देना चाहती है की स्त्रियों को भी अपने निजी जीवन पर उतना ही अधिकार रहना चाहिए जितना की पुरुषों को रहता है |

सन्दर्भ ग्रंथ सूचि –

1.प्रभा खेतान , अन्या से अनन्या , राजकमल प्रकाशन , पृष्ठ – 85
2. मैत्रेयी पुष्पा , गुड़िया भीतर गुड़िया , राजकमल प्रकाशन , पहला संस्करण , पृष्ठ – 31
3. मैत्रेयी पुष्पा , गुड़िया भीतर गुड़िया , राजकमल प्रकाशन , पहला संस्करण , पृष्ठ - 61
4.मन्नू भंडारी , एक कहानी यह भी , पृष्ठ – 209
5.मन्नू भंडारी , एक कहानी यह भी , पृष्ठ – 21
rinagiri1806@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 140-143
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नासिरा शर्मा की कहानियों में चित्रित माँ का बदलता स्वरूप

Jasmine Mary P J,
Research Scholar and Assistant professor,
Department of Hindi, Nirmala College Muvattupuzha, Ernakulam, Kerala

आधुनिक हिन्दी लेखिकाओं में नासिरा शर्मा का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अपने जीवन की अर्जित अनुभूतियाँ, स्मृतियाँ और कल्पनाओं की अभिव्यक्ति को अपनी रचनाओं का विषय बनाया। नारी जीवन के प्रति उनकी दृष्टिकोण सूक्ष्म रही है। उनकी कहानियों में माँ की पीठा , कुण्ठा , और तिस्कार को स्त्री पात्रों के माध्यम से उजागर किया गया है। विषय विस्तार के लिए तीसरा मोर्चा, आबे -तोबा ,बिलाव, मटमैला पानी , आदि कहानियों को चुन लिया गया है।

नासिरा शर्मा की एक प्रसिद्ध कहानी है **'तीसरा मोर्चा'** । इस कहानी में कश्मीर के आतंकवाद से ग्रस्त माहौल का चित्रण किया है। इस कहानी में ऐसी एक मां को चित्रित किया है, जो आतंकवादियों से, बहसी लोगों से बलात्कार का शिकार बन गयी है। कहानी के प्रमुख दो पात्र है एक हिंदू राहुल और एक मुस्लिम रहमान दोनों मित्र है। आतंकी माहौल से भयभीत होकर सुरक्षित स्थान की ओर वे भाग जा रहे थे। तब रास्ते में राहुल एक जवान स्त्री को बेहाल बेहोश पड़ी दिखाई देती है। वह उसे होश में लाने के लिए उसके मुंह पर पानी छिड़कता है। तब उसका मित्र रहमान उसे ढूंढते हुए वहां पहुंचता है। दोनों एक दूसरे को देखकर खुश हो जाते हैं। स्त्री होश में आने पर उन दोनों मित्रों का परिचय कराते हैं। दोनों मित्र कहते हैं कि तुम हिंदू हो या मुसलमान फिर भी हमारे बहन है। क्योंकि हममें से एक हिंदू है और एक मुसलमान है। यदि उचित समझो तो अपने बारे में कुछ कहो। तब उसके जवाब में वह स्त्री कहती है कि मैं एक औरत हूं और औरत की अस्मत तो हिंदू मुसलमान नहीं होती। आगे वह कहती है कि हिंदू मुसलमान तो सिर्फ मर्द का होते हैं , जो मजहब के उन्माद में औरत की आबरू लूट कर अपना धर्म निभाते हैं। मेरा मोहल्ला मेरा पता क्या है यह आप जानना चाहते है तो बताऊ आपको कि मैं दो बच्चों की माँ हूँ। बच्चों का बाप साल भर से गायब है। इन दोनों मित्रों को आगे यह भी मालूम हो जाता है कि बहसी लोगों ने उस पर बलात्कार कर घायल कर यहां फेंक दिया है, और उसके बच्चों को मार डाला है। वह स्त्री उनके सहारे को नकारते हुए अपने उन दो बच्चों को दफन करने के लिए और अपने पति की तलाश करने के लिए निकल पड़ती है। अब उसे किसी चीज का भय नहीं रहा।

"तुम दोनों जाओ भाई। मैं माँ हूँ। मुझे बच्चों को दफ़नाना है पत्नी हूँ मुझे अपने शौहर का इन्तज़ार करना होगा औरत हूँ इसलिए जुल्म के ख़िलाफ़ मुझे ज़िन्दा रहना है, मुझे भागना या मुँह छुपाना नहीं है, मुझे अभी ज़िन्दा रहना है।"[1]

यहां लेखिका यह भी दिखाया है कि कोई सांप्रदायिक देंगे या धार्मिक दंगे समाज में उपज आये तो आतंक वादियों ने निरीह स्त्रियों का और बच्चों का उनके शिकार बनाता है ! इस कहानी में चित्रित माँ प्रतिशोध का एक अलग तरीका को यहां अपनाया है। कहानी में कहता है कि आज उसे किसी भी बात पर भय नहीं है। वह अपने मरे हुए बच्चों को दफन करना चाहती है और अपने गायब हुए पति को खोजना चाहती हैं। आगे मर्दों के सहारे को स्वीकार करने के लिए वह तैयार नहीं होती। लेखिका ने कहानी के अंत में मानवीय वेदना को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया है।

आबे - तौबा नासिरा शर्मा की ऐसी एक कहानी है जिसमें यह दिखाते है कि आधुनिक बदलते परिवेश में किस तरह एक माँ को चुनौतिपूर्ण जिन्दगी जीना पड़ता है। इस कहानी का प्रमुख पात्र है सुसन। जो एक साइकोलॉजिस्ट है। वह बच्चों की स्कूल में नौकरी करती है। वहां यूरोप से डिग्री लेकर आए शमशाद से उसका सम्बन्ध होता है। सूसन उस स्कूल के अमजाद नामक एक छात्रा के मानसिक क्रियाकलापों का अध्ययन कर रही थी। शमशाद इस छात्र में अधिक दिलचस्पी दिखाने लगा। सूसन शमशाद की आंखों का पैगाम समझ जाती है। लेकिन सूसन पहले उस पर ज्यादा ध्यान नहीं देती। धीरे-धीरे शमशाद बड़ी चतुराई से औरत - मर्द का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण पर बातें करना शुरू किया। आगे सेक्स पर बहस करके उसके अंदर की सोई , निश्चल , भोली , सादी औरत को जगा देता है। अंत में सूसन जाल में फंस जाती है, और वह शमशाद को अपना सब कुछ समर्पित करती है। शमशाद अपने को साफ - सुथरा आदमी बताता है लेकिन वह बदत्तर, छिछोरा, घिनौना, कामवासनाओं से ओतप्रोत निकलता है। सुसन नयी पुरानी दुनिया के बीच झूलती रहती है। वह असमंजस्य में पड़ जाती है। इस आकस्मिक घटना से उसका मस्तिष्क संतुलन को बैठता है। उसे लगता है कि उसका सब कुछ लूट चुका है, जिसे पिछले कई सालों से बड़ी लगन से संभालकर रखा था। बाद में उसे इस घटना का पछतावा होने लगता है। वह आत्महत्या के बारे में सोचती है। उसके बेटे को दूसरे बच्चों की तरह साइकोलॉजिस्ट के पास जाना पड़ेगा , इस विचार से वह अपने इरादे से पीछे हटती है।

"अब केवल मौत है जो मुझे सकून दे सकती है मगर क्या महनाज़ और अब्बास को भी कभी दूसरे बच्चों की तरह साइकॉलोजिस्ट के पास जाना पड़ेगा? उनके पीछे उनकी माँ की खुदकुशी की कहानी चलेगी?

नहीं, नहीं।

ख़ुदा के लिए नहीं।

मैं जिंदगी-भर अपनी मुर्दा लाश अपने सीने में उठाए घूमूँगी, मगर अपने बच्चों को ऐसा कुछ न देकर जाऊँगी, जो ज़हर बनकर उन्हें ज़िंदगी भर घुलाता रहे। कामरान जो मेरे लिए देवता है, मेरे शौहर, मेरे दोस्त, मेरे महबूब - उन्हें नहीं पता कि मैं मैं पाक नहीं रह गई हूँ मगर फिर भी मैं मरूँगी नहीं।"[2]

वह अपना मन शांत करने के लिए अब्दुल अजीम जाती है। वहां एक मौलवी से बातें करती है। वह उसे आबे - तौबा पढ़ने के लिए कहता है। जहां औरतों का पाप नष्ट होता है वहां जाकर सूसन आबे - तौबा पढ़ती है और अपने को पवित्र करती है। यहां नासिरा शर्मा स्त्री की मानसिकता का बखूबी से चित्रण किया है। शिक्षित नारी होकर भी इस कहानी की मां सूसन अपनी दुर्बलताओं के कारण शमशाद जैसे एक बदत्तर आदमी के जाल में फस जाती है। फिर भी अपने बच्चे

[1] नासिरा शर्मा : इब्ने मरियम, पृष्ठ संख्या -68

[2] नासिरा शर्मा : कहानी समग्र - 1, पृष्ठ संख्या : 124

के लिए वह आगे जीना चाहती है और अपने सारी गलतियों को सुधारना चाहती है। इस तरह प्रस्तुत कहानी में एक आधुनिक मां की मानसिक पीड़ा को अभिव्यक्त किया है।

नासिरा शर्मा की एक चर्चित कहानी है **बिलाव**। इस कहानी में निम्न वर्गीय, अनपढ़, मां के जीवन संघर्ष को चित्रित किया है। इस कहानी का प्रमुख पात्र है सोनामाटी, जो मजदूरी करके अपने बच्चों को पालते हैं। उसका पति बलबीर शराब के नशे में गुम होकर कुकर्म करने पर लगे रहते हैं। उनके दो कन्याएं है, एक मैना जो अब जवान हो रही है और दूसरी हीरा जो अभी छोटी है। एक दिन रिश्ते के एहसास को भूलकर बलबीर मैना पर बलात्कार करता है। लड़की आत्महत्या के लिए आमादा होती है। सोनामाटी पुलिस में शिकायत दर्ज करती है।

"मेरी बेटी की इज़्ज़त लूटी है मेरे आदमी ने।' हाँफते हुए पागलों-सी चीख़ी थी।
'कौन हो तुम? क्या कह रही हो?' ड्यूटी पुलिस ने उसकी बदहवासी को गौर से देखते हुए पूछा था।
'मैं उधर, टेलीफोन बिल्डिंग के सामनेवाली झुग्गियों में रहती हूँ। मेरा पति बलबीर
शराबी है। उसने मेरी बेटी मैना की इज़्ज़त खराब की है। मैंने उसको बहुत मारा है। वह मर गया है।' इतना कहकर वह बेहोश-सी वहीं ज़मीन पर गिर गई थी।"[3]

पुलिस रेल पटरी पर आत्महत्या की इरादे से गई मैना को बचा लेते हैं। पर बलबीर जेल में जाने से पहले धमका गया। मैना का मानसिक उपचार हो रहा है। अब सोनामाटी अपनी छोटी बेटी के लिए चिंतित है। इंसान होकर भी बलबीर बिलाव बन गया है और वह हीरा के साथ बुरी व्यवहार करने की संभावना है। इसलिए सोनामाटी नई बस्ती में आकर बस जाती है। मैना की तबीयत धीरे-धीरे सुधार में आ गया। इसे देखकर एक दिन वह 'नारी मुक्ति संस्था' जाकर अपनी बेटी को ले आती है। पर वापस आपने पर देखी है कि उसकी छोटी लड़की जमीन पर नंगी पड़ी है। वह बेहोश है या मर चुकी है - इसे समझने का भी होश उसमें नहीं रहा। किसी ने उस पर अकेले देखकर बलात्कार कर दिया था। मैना ने मां से कहा कि इस खबर की रपट पुलिस में ना दे। क्योंकि उसकी उम्र अपमान झेलने की नहीं है। सोनामाटी इस दुख को झेल नहीं पाई और पगल हो गई। जो जिंदगी वह अपनी बेटियों को देना चाहती थी उसे दूसरों ने समाप्त कर दिया था। अब वह पुरुष वर्ग के प्रति नफरत से भरी हरदम गालियां बकते रहती है।

नासिरा शर्मा की एक और प्रसिद्ध कहानी है **'मट मैला पानी'**। इस कहानी में यही दिखाते है कि गरीब स्त्री को , माँ को जिस प्रकार व्यथाओं के अनेक स्तर होते हैं उसी प्रकार उसकी विवशता के भी अनेक रूप हुआ करते हैं। भूख उसके लिए शाश्वत प्रश्न होता है। उस पर यदि उसका घर ही उजड़ जाए तो उसके प्रश्न की भयावहता और बढ़ जाती है। बेसहारा स्त्री विवश होने के सिवा और क्या कर सकती है ? फुलवा की जिन्दगी यही है। सैलाब में उसका घर उजड़ गया। उसके सामने ही उसके पति को जहरीले सांप के डसने से उस सैलाब के पानी में तडपते मरते देखा है। अब नन्हे बच्चे को लेकर सहायता केलिडा आए अधिकारी के निर्देश पर एक आदमी के साथ चली गई। उस आदमी ने उसे एक कमरे में टिका दिया। वह डरी - सहमी तभी बाहर निकलती, जब बहुत ज़रूरत हो। वहीं आदमी उसे साड़ी, ब्लाऊज और साबुन दे गया। वक्त पर खाना भी दे जाता था। अब आधी रात फिर उसमें जीने की उमंग पैदा हुई, वहीं आदमी शराब के नशे में धुत होकर आता है और उस पर बलात्कार करना है। उसने भी स्थिति से समझौता कर लिया कि उसे भी इस जवान उम्र में मर्द की ज़रूरत तो पड़ेगी। फुलवा ने न चाहते हुए भी इस अधेड उम्र के मर्द के सामने आत्म समर्पण कर दिया, पर उसे क्या पता था कि यह मर्द दलाल है। कुछ दिन तो फुलवा के अच्छे गुजरे। पर एक दिन किसी गैर मर्द को अपना दोस्त बताकर वह घर ले आया और पान लाने के बहाने बाहर गया तो काफी देर तक नहीं लौटा। तब फुलवा

[3] नासिरा शर्मा : कहानी समग्र 3 , पृष्ठ संख्या : 380 - 381

परेशान हो गई। उस मर्द ने दरवाजा बंद किया। उसकी हरकत से फुलवा परेशान हो गई। उस मर्द ने इस हकीकत से उसे परिचित कराया कि उसने उसके मर्द को पूरे पांच सौ रूपये दिये हैं। हाथापाई हुई पर सब व्यर्थ। पलंग के नीचे बेटा सोया था – भूखा था, विवश होकर उसने उसे सीने से लगाया। भूखा बेटा दूध पीने लगा। अब हर हफ्ते कोई नया मर्द आता और वही हादसा होता। अब - उसका मर्द उसकी शिकायतों पर कोई ध्यान न देता। यह सिलसिला ऐसा चला कि फुलवा ने मजबूर होकर उसी को अपना जीवन मान लिया। अब वह विद्रोह करते करते थक गई। कई वर्ष बीत गए, बेटा स्कूल जाने लगा। माँ की जिन्दगी मोहल्ले की आबोहवा वह समझने लगा था। जब वह छठी कक्षा पास कर अंग्रेजी स्कूल में दाखिले के लिए गया तो उसके जीवन का वह पहला मोड़ था, जहाँ से अलगाव का रास्ता जाता था। एक दिन लड़के ने अपनी माँ से वही प्रश्न पूछा, जिसका उसे भय था।

'माँ, हम कौन हैं?'

'कहार हैं।'

'तुम क्या करती हो? हमारा खर्च कैसे पूरा करती हो?'

'क्यों?' माँ ने हँसकर पूछा।

'कोई कह रहा था कि डरा-सा स्वर उभरा। उसका सीना ऊपर-नीचे हो रहा था।

'क्या कह रहा था?' फुलवा उसकी हालत देखकर डर गई। क्या स्कूल में पता चल गया कि मैं ऐसी-वैसी औरत हूँ? कहीं स्कूल वाले उसका नाम न काट दें?

'कह रहा था." इतना कहकर वह फूट-फूटकर रोने लगा था। फुलवा समझ गई कि यह तेरह-चौदह साल के बढ़ते लड़के अपनी माँ के बारे में कैसे सहन करेंगे अपशब्द ?"[4]

लड़के ने पटरी के नीचे सोकर आत्महत्या कर ली। अब वह नीम- पागल सी कई दिनों तक कमरे में -कैद रही। कोई दिलासा देता, तो वह कह उठती कि बहुत बुरा होने वाला है, संभल जाओ, बहुत बुरा घटनेवाला ह ै मैं बता रही हूँ, अब इसी तरह बड़बड़ाते रेल की पटरी के करीब जाकर रेल को गुजरते देखी और कोसते रहती है।

उपर्युक्त कहानियों के विवेचन से हम समझ सकते है कि आधुनिक परिप्रेक्ष्य में माँ का स्वरूप नासिरा शर्मा अत्यन्त मार्मिक ढंग से अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है। समाज के विभिन्न स्तरों में रहकर अपनी जिन्दगी को आगे बडाने के लिए प्रयत्नरत माँ का यथार्थ चित्र उनके कहानियों में मिलते है। विभिन्न परिस्थितियों में संघर्षरत माँ का चित्रण के साथ-साथ उनकी प्रतिशोध को भी नासिरा शर्मा दिखाया है। बिलाव कहानी की माँ अपने पति को अन्याय पर खूब पीटती है। इस प्रकार माँ की प्रतिशोध का स्पष्ट स्वर नासिरा शर्मा के इन कहानियों में देखने को मिलते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. नासिरा शर्मा : कहानी समग्र 1, किताबघर प्रकाशन
2. नासिरा शर्मा : इब्ने मरियम , किताबघर प्रकाशन , ISBN-81-7016-236-X
3. डा० . सोनल नंदनवरवाले : नासिरा शर्मा की कहानियों में नारी विमर्श
4. नासिरा शर्मा : कहानी समग्र 3, किताबघर प्रकाशन
5. नासिरा शर्मा : खुदा की वापसी , भातीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

[4] नासिरा शर्मा : कहानी समग्र 3 , पृष्ठ संख्या : 393

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 144-148
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दिविक रमेश की बाल कविताओं में प्रकृति और पर्यावरणीय चेतना

कंचना कुमारी,
सहायक आचार्य हिन्दी एवं शोधार्थी,
डॉ० एस. रज़िया बेगम,
सहायक आचार्य,
हिन्दी विभाग एवं मानविकी संकाय,
एस. आर. एम. इंस्टीट्यूट साइंस एंड टेक्नोलॉजी कट्टनकुलाथुर, चेन्नई।

बच्चे ही देश के भविष्य को सुनहरा बनाएँगे - यह बात अगर साहित्यकार आत्मसात् कर लें, तो बाल-साहित्य की विधा अत्यंत समृद्ध हो जाएगी। लेकिन साहित्य की कमनसीबी यह है कि उसमें पर्याप्त मात्रा में बाल-साहित्य नहीं मिलता है। बाल-साहित्य के अभाव में बालक की अनगिनत जिज्ञासाएं अपूर्ण रह जाती हैं। वास्तविक जीवन की तनावपूर्ण स्थिति से बालक को बाहर निकालने का कार्य बाल-साहित्य ही कर सकता है। डॉ. शकुंतला कालरा के मतानुसार – "बाल-साहित्य बच्चे की बहुत बड़ी जरूरत है। सरस, रुचिपूर्ण और मनोरंजक बाल-साहित्य की पुस्तकें उसके लिए वह काम करती है, जो संभवत: माता-पिता या शिक्षक भी नहीं कर सकते। बाल-साहित्य बच्चे की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। उसकी जिज्ञासाओं एवं समस्याओं का सरल ढंग से समाधान करता हुआ उसका मार्गदर्शन भी करता है।"(1)

प्रकृति और पर्यावरण पर दृष्टि डालें तो कहा जा सकता है कि प्रकृति वह है जो प्राकृतिक रूप से सृष्टि में मौजूद है। जैसे नदी, पहाड़, जंगल, पेड़, जानवर आदि। पर्यावरण में प्रकृति के साथ-साथ मनुष्य की गतिविधियाँ भी शामिल हो जाती है। जैसे- वैश्विक प्रदूषण, शहरीकरण और जलवायु परिवर्तन। दूसरे शब्दों में - "पर्यावरण उन सभी भौतिक, रासायनिक एवं जैविक कारकों की समष्टिगत एक इकाई है, जो किसी जीवधारी अथवा पारितंत्रीय आबादी को प्रभावित करते हैं तथा उनके रूप, जीवन और जीविता को तय करते हैं।"(2)

पर्यावरण प्रकृति का एक उपहार है जो पृथ्वी पर जीवन को पोषित करने में मदद करता है। प्रकृति पृथ्वी पर जीवन का आधार है, वहीं पर्यावरण मनुष्य के स्वास्थ्य और कल्याण का आधार है।

हिन्दी साहित्य में ऐसे कई रचनाकार हुए हैं, जिन्होंने बालक संबंधी रचनाएं रचने में अपनी भरपुर रुचि दिखाई है। ऐसे रचनाकारों में डॉ. रमेश शर्मा यानि दिविक रमेश का नाम काफी चर्चित है। श्री रत्नप्रकाश शील उनकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय देते हुए लिखते हैं - "दिविक जी एक नहीं, एक साथ दो व्यक्तित्व लिए जीते हैं, यानि दिविक जी को द्विमुखी कहा जा सकता है। दिविक रमेश के रूप में वह एक मिलनसार, सहृदय पहली पंक्ति के कवि, लेखक, आलोचक,

अनुवादक, कथाकार हैं। समाज और देश के हित में शब्द बाँटते हैं, उल्लास बाँटते हैं, मुस्कान बाँटते हैं। किंतु यह सब कार्य उनकी जीविका नहीं है, दूसरों को कुछ फलदायी मानसिक भोजन देने का उन्माद है।"(3)

डॉ. दिविक रमेश उन रचनाकारों में हैं जिन्हें बालकों के भविष्य की चिंता के साथ-साथ प्रकृति और पर्यावरण की चिंता भी है। अतः उन्होंने अपने बाल काव्य में प्रकृति और पर्यावरण चेतना को कदम-कदम पर उजागर किया है। भारतीय ऋषि-मुनियों ने भी अग्नि, जल, वायु, मृदा और आकाश, उन पंचतत्वों को शुद्ध रखने का संदेश दिया था। प्रसिद्ध बुजुर्ग साहित्यकार राजा चौरसिया 'पर्यावरण बचाना होगा' में बच्चों को पर्यावरण के बिगड़ते स्वरूप को बचाने का संदेश देते हैं, जो इस प्रकार है -

"आज प्रदूषण बढ़ता जाता,
पर्यावरण बिगड़ जाता।
दुष्परिणामों का पारा अब तो,
कितना ऊपर चढ़ता जाता।।"(4)

बाल कविताओं के द्वारा बच्चों को प्रकृति एवं पर्यावरण के प्रति सचेत करके बचपन से ही प्रकृति और पर्यावरण को जरा भी नुकसान न पहुँचे ऐसी भावना का विकास उनमें किया जा सकता है। प्राकृतिक उपादान के प्रति सह - भाव बताने वाली दिविक रमेश की 'पेड़' कविता की कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं, जो पेड़ का इस जगत में क्या महत्व है उसे दर्शाती हैं –

"अगर पेड़ भी चलते होते, कितने मजे हमारे होते,
बाँध तने में उसके रस्सी, चाहे जहाँ कहीं ले जाते,
जहाँ कहीं भी धूप सताती, उसके नीचे सुस्ताते,
जहाँ कहीं वर्षा हो जाती, उसके नीचे हम छुप जाते,
भूख सताती अगर अचानक,
तोड़ मधुर फल उसके खाते,
आता कीचड़, बाढ़ कहीं तो,
झट उसके ऊपर चढ़ जाते।।"(5)

उपर्युक्त पंक्तियों के द्वारा कवि ने न केवल बच्चों को वरन् सभी पाठकों को पेड़ हमारे जीवन की सुरक्षा में क्या भूमिका निभाते हैं ? उसका एहसास कराया है। आज पेड़ लगातार काटे जा रहे हैं, जिसका दुष्प्रभाव प्रदूषण के बढ़ते खतरे के रूप में सामने आ रहा है। जिससे बचने के लिए पेड़ों की कटाई पर रोक लगाकर पेड़ उगाने के कार्य को बढ़ावा देना चाहिए।

हिंदी साहित्य के जाने-माने बाल साहित्यकार श्री परशुराम शुक्ल भी पेड़ों के प्रति अपनी संवेदना जताते हुए पेड़ों की रक्षा के प्रति जागरुक है और पाठकों को भी जागृत करते हैं। यथा -

"सारे जग के शुभचिंतक, यह पेड़ बड़े उपकारी।
सदा सदा से वसुधा उनकी ऋणी और आभारी।
फल देते ईंधन देते हैं, देते औषधि न्यारी।
छाया देते औ देते हैं, सरस हवा सुखकारी।
परहित जीने-मरने का आदर्श हमें सीखलाएँ।
ऑक्सीजन का मधुर खजाना, भर-भर हमें लुटाएँ।।"(6)

दिविक रमेश की कविता 'नन्ही खुली बाँहें' वैसे तो प्रबुद्ध पाठकों के लिए लिखी गई है, लेकिन यह कविता वास्तव में प्रकृति-पर्यावरण का रिश्ता बच्चों के साथ कैसा अटूट है उसे दर्शाती है। आकाश की विशालता, सागर की जलराशि, पहाड़ की उच्चता, धरती की विशालता आदि का बच्चों की नन्ही खुली बाहों में समा जाना - यह घटना बच्चों की आकाश, धरती, सागर और पहाड़ के प्रति असीम संवेदना को उजागर करता है। कुछ पंक्तियाँ देखने योग्य हैं–

"कितना थक गया था मैं झुकते-झुकते
इतनी आसान प्रश्नों से !
मैं तो भूल गया था
आकाश है तो वह
सागर है तो वह
पहाड़ है तो वह
धरती है तो वह
सारी सृष्टि ही है
उसकी खुली नन्ही बाँहों में ।।"(7)

उपर्युक्त पंक्तियाँ इस सत्य को उद्घाटित करती है कि यह प्रकृति और बच्चे की माँ की गोद में कोई भी अंतर नहीं होता। प्रकृति के लिए प्रत्येक जीव उसके शिशु के समान है और प्रत्येक जीव के लिए प्रकृति मां के समान है। इसीलिए श्री नागेश पांडे भी समाज के लोगों को जो यह संदेश देते हैं वह सटीक प्रतीत होता है –

"आज समय की माँग यही है
पर्यावरण बचाओ
तब तक जीव-जगत है जग में
जब तक जग में पानी
जब तक वायु शुद्ध रहती है
सौंधी मिट्टी रानी
तब तक मानव का जीवन है
सबको यह समझाओ ।।"(8)

किसी भी कृति का भावपक्ष जितना प्रभावपूर्ण होता है उतना ही उसका कलापक्ष भी हो तो कृति सफलता के शिखर छूती है। दिविक रमेश की कविताओं की भावाभिव्यक्ति संवेदनशील होने के साथ ही उनके कलापक्ष की विशेषताएँ भी निराली नज़र आती है। डॉ. प्रकाश मनु के मतानुसार – "दिविक जी के शिल्प की एक अलग पहचान दिखाई देती है और वह यह कि वह अक्सर बच्चों की बातचीत के अंदाज को अपने बाल कविताओं की लय में ढाल देते हैं। कई बार तो वह इसीलिए एक अजब-सी चमक और तराश लिए इतनी बढ़िया मुक्त छंद कविताएँ लिख लेते हैं, जो होठों पर खुद-ब-खुद फुरफुराने लगती हैं।..... उनकी कुछ कविताओं में लय और छंद की जादूगरी खुलकर सामने आती है।"(9)

सदियों से देखा गया है कि प्रकृति का एक महत्वपूर्ण अंग सूरज है, जो अपनी रौशनी की किरणों से सारे जग को प्रकाशित करता है। सूर्य की किरणें कभी भी संसार में किसी से भेदभाव किये बिना भोलेपन से चारों ओर की दिशाओं

को प्रकाशित करती हैं। कवि सुरेश चन्द्र ने बच्चों के भोलेपन को सूर्य की किरणों के साथ समानता करते हुए प्रकृति के सूर्यरूपी उपहार की महत्ता का गान किया है। जैसे-

"होती कितनी निर्मल, निश्चल
बच्चों की मुस्काने भोलो
जैसे सूरज ने किरणों की
अभी-अभी आ गठरी खोली।
आयु की तपती दोपहर का
प्रखर नाप अब तक ना जाना
पाठ में केवल फूल खिलेंगे
बालक मन ने यही है माना।"(10)

दिविक रमेश की कई कविताएं बच्चों को प्रकृति से जोड़ती हैं। जल की पारदर्शकता, पवन की चंचलता, मौसम में परिवर्तन, चंद्रमा के आकार में बदलाव, पक्षियों का आकाश में उड़ना और मछलियों का जल में मग्न रहना, आंधी-तूफान, बाढ़-सूखा, भूकंप-सुनामी आदि के प्रति बालक कौतूहल हमेशा बना रहता है। दिविक रमेश ने अपनी 'सब उठने झूम' कविता में पेड़ और फूल के आपसी संबंधों को लेकर बालक क्या सोचता है उसे शब्दबद्ध किया है-

"पौधों पर कितनी टहनी है हर टहनी पर कितने फूल?
फूलों में कितनी खुश्बू है, खूश्बू से मन उठते झूम।
क्यों पौधों पर टहनी होती, क्यों टहनी पर खिलते फूल?
क्यों फूलों में खुश्बू होती, क्यों मन उठना उनसे झूम?
अपने हाथों पैरों पर भी खिलते अगर बहुत से फूल,
तो हममें भी खुश्बू होती, हमें देख सब उठनें झूम।"(11)

प्रकृति की जड़ वस्तुएं भी बालक को चेतन लगती है। पहाड़, नदी, जंगल, समुद्र और स्कूल को बालक जब अपनी कल्पना से चेतनवंत बनाता है तब जो चित्र उपस्थित होता है उसे रमेश दिविक ने अपनी 'कितना अच्छा होता न तब' कविता में प्रदर्शित किया है। जैसे-

"यदि पहाड़ को धक्का देकर सब कहीं ले जा सकते हम, कितना अच्छा होता न तब?
अगर नदी को कंधे पर रख सब कहीं ले जा सकते हम, कितना अच्छा होता न तब?
यदि ये जंगल पहियों पर रख सब कहीं ले जा सकते हम, कितना अच्छा होता न तब?
और समुद्र सिर पर ढोकर सब कहीं ले जा सकते हम, कितना अच्छा होता न तब?
अगर स्कूल को रेहड़ा कर कहीं ले जा सकते हम, कितना अच्छा होता न तब?" **(12)**

दिविक रमेश के काव्यत्व की एक विशेषता यह भी है कि वे किसी भी स्थान पर कविता के अस्तित्व को ढूंढ ही लेते हैं। बालमन को प्रस्तुत करते हुए भी वे कविता के प्रेम से अलगत्व का अनुभव नहीं करते हैं। इसीलिए बालमन के माध्यम से विविध उपादानों में वे कविता के अस्तित्व की स्वयं रचना करते चलते हैं। वे बालक को हर जगह पर कविता करते हुए चित्रित करते हैं। यथा-

"तारों में भी कविता होती, कविता लहरों में भी होती
हममें होती तुममें होती, ढूंढी तो यादों में होती

यही नहीं कविता होती, मीठी भूलों में।
बादल में रिमझीली कविता, पर्वत पर बर्फीली कविता
झरनों में झरनीली कविता, बिजली में चमकीली कविता।
फूलों में भी होती कविता, होती शूलों में।"(13)

प्रकृति को जीवंत बनाने में वसंत ऋतु की भी अपनी एक उत्कृष्ट भूमिका होती है। वसंत ऋतु भी बालमन को मोहित करती है। बालमन इस ऋतु में होने वाले बदलावों से इतना आश्चर्यचकित होता है कि प्रश्न करता है और उत्तर न मिलने पर भी अपना आनंद इस प्रकार व्यक्त करता है –

"हर पौधे को खूब सजाकर
फूलों के झंडे फहराकर
हमें नचाता, हमें झूमाता
गीत गुनगुने हमें सुनाता
आया बसंत आओ नाचे।"(14)

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि दिविक रमेश बालमन के कुशल चितेरे होने के साथ-साथ प्रकृति और पर्यावरण के प्रति भी अत्यंत संवेदनशील दिखाई देते हैं । स्वच्छ प्रकृति और शुद्ध पर्यावरण के उनके आग्रह को उनकी बाल कविताओं में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । अपनी बाल कविताओं के माध्यम से बच्चों को तो उन्होंने प्रकृति और पर्यावरण की अनूठी जानकारी दी है, लेकिन परोक्ष रूप से संसार के हर व्यक्ति को प्रकृति और पर्यावरण की सुरक्षा के लिए सचेत किया है ।

संदर्भ सूची

1. डॉ. दिविक रमेश और उनका बाल-साहित्य, संपादक- डॉ. शकुंतला कालरा, यश पलिकेशंस, दिल्ली, प्र.सं. 2012, संपादकीय से, पृ – 08
2. https:// byjus. Com
3. डॉ. दिविक रमेश और उनका बाल साहित्य, संपादक – डॉ. शकुंतला कालरा, पृ. 38
4. अपने हाथ सफलता है, राजा चौरसिया, बालवाटिका प्रकाशन, भीलवाड़ा, संस्करण 2009, पृ – 28
5. डॉ. दिविक रमेश और उनका बाल साहित्य, संपादक - डॉ. शकुंतला कालरा, पृ – 44
6. मंगल ग्रह जाएंगे, परशुराम शुक्ल, विज्ञान भारती प्रकाशन, गाजियाबाद, 2008 पृ – 78
7. डॉ. दिविक रमेश और उनका बाल साहित्य, संपादक – डॉ. शकुंतला पृ – 121
8. 'यदि ऐसा हो जाए' नागेश पांडे, लवकुश प्रकाशन, लखनऊ 2011, पृ- 50
9. डॉ. दिविक रमेश और उनका बाल साहित्य, संपादक – डॉ. शकुंतला पृ – 177
10. बालगीत पीयूष सुरेशचन्द्र सर्वहारा, पृ.13
11. 'सब उठते झूम', रमेश दिविक, बंदरमामा, दिल्ली एक्सप्रेस बुक, संस्करण - 2015, पृ. सं.15
12. 'कितना अच्छा होता न तब', डॉ. दिविक रमेश, छुटकल-मुटकल बाल कविताएँ, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, संस्करण, 2016, पृ.16
13. तस्वीर और मुन्ना, डॉ. दिविक रमेश, पृ. 24
14. छतरी से गपशप, डॉ. दिविक रमेश, पृ.22

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 149-153
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

संवेदना का बाज़ार : भूमंडलीकरण के कारण भारतीय पारिवारिक संबंधों का विघटन

सोना जाट
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
राजस्थान केंद्रीय विश्वविद्यालय, बांदर सिंदरी, अजमेर।

प्रस्तावना

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने विशेष रूप से भारत में सन् 1990 के दशक में आर्थिक उदारीकरण के बाद देश की सामाजिक संरचना पर गहरा और बहुआयामी प्रभाव डाला है। भूमंडलीकरण द्वारा प्रेरित बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति ने भारतीय पारिवारिक संबंधों की पारंपरिक संवेदनशीलता, आत्मीयता और एकजुटता को विघटित किया है। यह तर्क दिया गया है कि भूमंडलीकरण ने व्यक्तिवाद को बढ़ावा दिया जिससे रिश्ते उपयोगिता और लाभ - हानि के आधार पर परिभाषित होने लगे परिणामस्वरूप परिवार एक संवेदना का बाज़ार बन गया जहाँ भावनाएँ भी आर्थिक विनिमय का हिस्सा बन गईं। भूमंडलीकरण के कारण भारतीय समाज में संयुक्त परिवार से एकल परिवार की ओर संक्रमण, बुजुर्गों की बढ़ती उपेक्षा और पति-पत्नी एवं बच्चों के बीच संबंधों में भौतिकतावादी दरार दिखाई देने लगी है। भारतीय संस्कृति में परिवार को केवल एक सामाजिक इकाई नहीं बल्कि एक नैतिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक आश्रय माना जाता रहा है। संयुक्त परिवार प्रणाली सदियों से भारतीय समाज की आधारशिला रही है, जो सदस्यों के बीच घनिष्ठता, सह-अस्तित्व और पारस्परिक निर्भरता पर टिकी थी। भारतीय समाज की पहचान हमेशा से उसके सुदृढ़ नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों से रही है। यहाँ जीवन का केंद्र धर्म, परिवार, त्याग और संतोष जैसे सिद्धांतों पर टिका था, जहाँ संबंध लाभ-हानि के बजाय कर्तव्य और प्रेम पर आधारित थे। बाज़ार की संस्कृति लगातार उपभोग, व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा और उपयोगितावाद पर जोर देती है।

सन् 1991 के आर्थिक सुधारों के उपरांत भूमंडलीकरण उदारीकरण और निजीकरण की त्रयी ने भारत को वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत किया। इस प्रक्रिया ने न केवल आर्थिक समृद्धि के अवसर खोले बल्कि पूंजीवाद, बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद की एक आक्रामक संस्कृति को भी जन्म दिया। भूमंडलीकरण ने सामाजिक - आर्थिक जीवन में एक ऐसी उपयोगितावादी सोच को बढ़ावा दिया जिसने संवेगात्मक संबंधों को भी लाभ और हानि के तराजू पर तौलना शुरू कर दिया। परिवार जो निस्वार्थ प्रेम और त्याग का केंद्र था, अब एक ऐसे बाज़ार में रूपांतरित हो रहा है जहाँ संवेदना भी खरीदी बेची या उपेक्षित की जा सकती है।

बीज शब्द - भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद, भारतीय परिवार, संयुक्त परिवार, पारिवारिक - विघटन, व्यक्तिवाद।

1. भूमंडलीकरण और बाज़ारवादी संस्कृति की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

1.1 भूमंडलीकरण का अर्थ और प्रभाव

भूमंडलीकरण को मैकलुहान के ग्लोबल विलेज की अवधारणा के संदर्भ में समझा जा सकता है, जहाँ सूचना, पूंजी और संस्कृति की सीमाएँ मिट जाती हैं। एंथनी गिडेंस और मैनुअल कैस्टेल्स जैसे समाजशास्त्रियों ने इस प्रक्रिया में प्रौद्योगिकी, पूंजी के प्रवाह और नेटवर्क सोसायटी के उदय पर जोर दिया है। एंथनी गिडेंस अपनी रचना 'कांसीक्वेंसिज आव मोडर्निटी' में भूमंडलीकरण को परिभाषित करते हुए इस नतीजे पर पहुँचते है - " इस प्रकार भूमंडलीकरण को सामाजिक सम्बन्धों के विश्वव्यापी सघनीकरण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो दूर - दूर स्थित स्थानीयताओं को आपस में जोड़ देता है। यह सूत्र कुछ इस तरह से काम करता है कि स्थानीयताओं के दायरे में होने वाली घटनाओं की शक्ल - सूरत उनसे बहुत दूर चल रहे घटनाक्रम के आधार पर बनती है और ऐसा ही असर स्थानीयताओं का घटनाक्रम स्वयं को प्रभावित कर रही सुदूर घटनाओं पर डालता है। भारतीय संदर्भ में भूमंडलीकरण का मुख्य परिणाम बाज़ार की सर्वव्यापकता है। अब बाज़ार केवल वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय स्थल नहीं रहा बल्कि यह मूल्यों, आकांक्षाओं और सामाजिक व्यवहार को भी नियंत्रित करने वाली एक शक्ति बन गया है।

1.2. बाज़ारवाद और उपभोक्तावादी मानसिकता

बाज़ारवाद की मानसिकता व्यक्ति को प्राथमिक रूप से एक उपभोक्ता के रूप में देखती है, न कि एक नागरिक या सामाजिक प्राणी के रूप में। यह मानसिकता निरंतर असंतोष और असीमित इच्छाओं पर आधारित होती है। भूमंडलीकरण ने भौतिकता का उत्कर्ष किया है अथार्त सुख को अब भौतिक वस्तुओं से जोड़ा गया है। इसके साथ ही भूमंडलीकरण ने व्यक्तिवाद का पोषण किया है जिसने अब आर्थिक स्वतंत्रता और करियर के अवसरों ने 'मैं' को 'हम' से अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। रिश्तों का उपभोग हुआ है आपसी संबंध अब भावनात्मक आवश्यकता के बजाय स्थिति और सुविधा के संकेतक बन गए हैं। जब संवेदनाएँ 'बाज़ार' की वस्तु बन जाती हैं, तो उन्हें तभी महत्व दिया जाता है जब वे किसी आर्थिक या सामाजिक लाभ को पूरा करती हैं।

2. भारतीय परिवार पर भूमंडलीकरण के प्रभाव का विश्लेषण

भूमंडलीकरण के कारण भारतीय पारिवारिक संबंधों में निम्नलिखित प्रकार के स्पष्ट विघटनकारी प्रभाव देखे जा सकते हैं-

2.1. संयुक्त परिवार से एकल परिवार की ओर पलायन

भूमंडलीकरण ने शहरीकरण और बेहतर नौकरी के अवसरों और शैक्षिक गतिशीलता को बढ़ावा दिया है। युवा पेशेवर करियर की तलाश में अपने मूल स्थानों से दूर बड़े शहरों या विदेशों में जा रहे हैं।

आर्थिक कारण: संयुक्त परिवार की सामूहिक आय पर निर्भरता कम हुई है, जिससे व्यक्तिगत कमाई और खर्च का अधिकार बढ़ा है।

स्थानिक कारण: बड़े शहरों में आवास की कमी और उच्च लागत ने संयुक्त परिवार के लिए एक साथ रहना मुश्किल बना दिया है।

मनोवैज्ञानिक कारण: एकल परिवार में रहने वाले लोग अधिक स्वतंत्रता और कम जवाबदेही महसूस करते हैं, जो व्यक्तिवादी संस्कृति के अनुरूप है।

यह विघटन केवल संरचनात्मक नहीं है, बल्कि भावनात्मक भी है। जहाँ पीढ़ियों के बीच का सहज संवाद टूट गया है।

2.2. बुजुर्गों की उपेक्षा और 'गैर-उत्पादक' के रूप में पहचान

संयुक्त परिवार में बुजुर्गों को सम्मान, अनुभव और नैतिक मार्गदर्शन के स्रोत के रूप में देखा जाता था। भूमंडलीकरण के बाज़ारवादी मॉडल में व्यक्ति का मूल्य उसकी उत्पादकता या आर्थिक आय से आँका जाता है। सेवानिवृत्त होने के बाद बुजुर्ग 'गैर-उत्पादक' श्रेणी में आ जाते हैं, जिससे उनकी सामाजिक और पारिवारिक उपयोगिता कम हो जाती है। बुजुर्गों की देखभाल का बाजारीकरण होने लगा है। भावनात्मक देखभाल के बजाय अब वृद्धाश्रमों और भुगतान वाली देखभाल सेवाओं की ओर रुझान बढ़ रहा है। प्रेम और सम्मान जैसी संवेदनाएँ अब सेवा के रूप में बेची जा रही हैं, जो रिश्तों के बाजारीकरण का सबसे दुखद उदाहरण है।

2.3. पति-पत्नी के संबंधों में तनाव और भौतिकतावादी दरार

आर्थिक स्वतंत्रता ने पति-पत्नी के संबंधों में नए समीकरण स्थापित किए हैं लेकिन साथ ही नए तनाव भी पैदा किए हैं। पति-पत्नी में उपभोक्तावादी प्रतिस्पर्धा दिखाई देती है जहां दोनों साथी एक-दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं कि वह आर्थिक रूप से सफल है। सफलता का पैमाना भौतिक बन गया है। समय के अभाव और करियर केंद्रित जीवनशैली ने उनके गुणवत्तापूर्ण समय को छीन लिया है। भौतिक लाभ के लिए भावनात्मक निवेश कम हो गया है। पति-पत्नीके बीच तलाक दर में वृद्धि होने लगी है अर्थात् व्यक्तिवाद की प्रबलता ने संबंधों को समायोजन और त्याग के बजाय इच्छाओं की पूर्ति पर आधारित कर दिया है। जहाँ इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं, तो संबंध भंग हो जाते हैं।

2.4. बच्चों के पालन-पोषण और रिश्तों का मशीनीकरण

भूमंडलीकरण के कारण बच्चों के साथ माता-पिता का संबंध भी भौतिकवादी हो गया है। माता-पिता बच्चों को समय या भावनात्मक सुरक्षा देने के बजाय महँगे गैजेट्स, ब्रांडेड कपड़े और निजी ट्यूशन देकर अपनी कमी को खरीदने का प्रयास करते हैं माता-पिता व संतान के संबंधों का मशीनीकरण हो गया है। बच्चों के साथ भावनात्मक जुड़ाव की कमी के कारण वे अक्सर अवसाद, अकेलेपन और भावनात्मक अलगाव का शिकार होते हैं। माता-पिता और बच्चों के बीच का संबंध भी एक लेन-देन बन गया है, जहाँ स्नेह का प्रदर्शन वस्तुओं के माध्यम से किया जाता है।

3. बाज़ार की संस्कृति का सैद्धांतिक आधार और भारतीय मूल्यों से टकराव

3.1. बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद की प्रकृति

बाज़ार की संस्कृति का मूल सिद्धांत यह है कि उपभोग ही मानव अस्तित्व का प्राथमिक उद्देश्य है और सफलता को भौतिक संपत्ति से मापा जाता है। समाजशास्त्री जीन बॉड्रीलार्ड ने उपभोग को केवल वस्तुओं का उपयोग न मानकर एक प्रतीकात्मक व्यवस्था माना है, जहाँ लोग वस्तुओं के माध्यम से अपनी सामाजिक स्थिति और पहचान का प्रदर्शन करते हैं।

इस संस्कृति के तीन मुख्य आयाम हैं-

भौतिकतावाद : आध्यात्मिक या नैतिक सुख के बजाय भौतिक सुख को प्राथमिकता देना।

व्यक्तिवाद : सामूहिक कल्याण, सह-अस्तित्व और पारस्परिक निर्भरता से हटकर आत्म-केंद्रित लक्ष्यों की ओर बढ़ना।

तात्कालिक संतुष्टि : धैर्य, दूरदर्शिता और संतोष जैसे पारंपरिक मूल्यों को दरकिनार करते हुए त्वरित इच्छापूर्ति पर ज़ोर देना।

भूमंडलीकरण की औपचारिक शुरुआत भारत में 1990 के दशक में हुई, जिसने सीधे तौर पर उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ावा दिया। हिंदी नाटकों में यह विषय पुरानी पीढ़ी के मोहभंग और नई पीढ़ी की दिशाहीनता के रूप में सामने आया है। सन 1990 के बाद के नाटक सीधे तौर पर भूमंडलीकरण के सामाजिक -

आर्थिक प्रभावों को दर्शाते हैं जहाँ पारिवारिक संबंध बाज़ार के तर्क से संचालित होते हैं स्वदेश दीपक द्वारा रचित 'कोर्ट मार्शल' नाटक सीधे तौर पर पारिवारिक विघटन का नाटक नहीं है लेकिन इसमें जातीय भेदभाव और सेना में वर्ग संघर्ष के कारण उत्पन्न मानवीय मूल्यों के पतन को दर्शाया गया है। भूमंडलीकरण से उत्पन्न नई तरह की सामाजिक असमानता को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण नाटक है। भीष्म साहनी का नाटक 'माधवी' नाटक का मूल विषय पौराणिक है, लेकिन यह स्त्री के उपयोग और पुरुष की उपभोक्तावादी सोच को दर्शाता है। भूमंडलीकरण के युग में नारी को एक उपभोग की वस्तु के रूप में देखने की मानसिकता के अध्ययन के लिए प्रासंगिक।

4. निष्कर्ष

इस शोध के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि भूमंडलीकरण भारतीय परिवार के लिए एक द्वंद्वात्मक अनुभव रहा है। इसने महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता दी है, लेकिन इसकी भारी कीमत पारिवारिक संवेदनशीलता ने चुकाई है।

1. **उपयोगितावादी दृष्टिकोण का प्रभुत्व:** पारंपरिक भारतीय परिवार 'कर्तव्य-आधारित' था भूमंडलीकरण ने इ े 'अधिकार-आधारित' बना दिया। जब कोई सदस्य आर्थिक रूप से उपयोगी नहीं रहता, तो उसे बोझ मान लिया जाता है जो रिश्तों के बाज़ारवादी मूल्यांकन को दर्शाता है।
2. **भूमंडलीय गतिशीलता का दबाव:** विदेश या दूर के शहरों में काम करने वाले लोगों के लिए पारिवारिक संबंध अब फोन कॉल या वीडियो चैट तक सिमट गए हैं जो 'शारीरिक उपस्थिति' और स्पर्श-आधारित स्नेह की जग नहीं ले सकते।
3. **भावनात्मक गरीबी:** भौतिक समृद्धि के बावजूद भारतीय समाज में भावनात्मक गरीबी बढ़ी है, जिसका प्रमाण अवसाद, तनाव और आत्महत्या की बढ़ती दरों में देखा जा सकता है। यह दर्शाता है कि भौतिक बाज़ार 'संवेदना के बाज़ार' का विकल्प नहीं बन सकता।

भूमंडलीकरण ने परिवार के पारंपरिक सहकारी मॉडल को तोड़कर एक प्रतिस्पर्धी मॉडल स्थापित किया है, जहाँ प्रत्येक सदस्य अपनी व्यक्तिगत सफलता के लिए दौड़ रहा है।

5. उपसंहार

संवेदना का बाज़ार केवल एक रूपक नहीं है बल्कि यह उस कठोर सामाजिक यथार्थ का चित्रण है जहाँ भूमंडलीकरण ने परिवार जैसी मूलभूत संस्था को भी आर्थिक तर्क के अधीन कर दिया है। भारतीय परिवार जो कभी साझा चूल्हे और साझा दिल का प्रतीक था अब अलग-अलग कमरों और अलग-अलग लक्ष्यों वाले व्यक्तियों का एक समूह मात्र बनता जा रहा है।

यह शोध-पत्र इस बात पर जोर देता है कि आर्थिक विकास आवश्यक है, लेकिन यदि यह मानवीय संवेदनशीलता और सामाजिक एकजुटता की कीमत पर होता है, तो वह विकास टिकाऊ नहीं हो सकता। भविष्य के लिए यह आवश्यक है कि हम भूमंडलीकरण के लाभों को स्वीकार करते हुए भी उन पारंपरिक मूल्यों और संस्थाओं की रक्षा करें जो भावनात्मक सुरक्षा और सामाजिक सामंजस्य प्रदान करती हैं। पारिवारिक संबंधों में लाभ-हानि के बाज़ारवादी दृष्टिकोण को त्यागकर फिर से निस्वार्थ प्रेम और सहयोग की भावना को स्थापित करने की दिशा में कार्य करना अनिवार्य है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अभय कुमार दुबे (सं), भारत का भूमंडलीकरण, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली,(2017) पृष्ठ संख्या ३७
2. डॉ. श्याम सुंदर तिवारी, (सं) सामाजिक परिवर्तन एवं विकास: एक समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, (2020) पृष्ठ संख्या 51

3. योगेन्द्र सिंह, (सं), आधुनिकीकरण और भारतीय परम्परा, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर (2018) पृष्ठ संख्या 46
4. डॉ. रामनारायण पाण्डेय, (सं) भारतीय समाज और संस्कृति, ओरियंट ब्लैकस्वॉन (2015)
5. एंथनी गिडेंस , (सं), Runaway World: How Globalization is Reshaping Our Lives. Profile Books. (1999).
6. स्वदेश दीपक, (सं), कोर्ट मार्शल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (1999)

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 154-156
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आदिवासी जीवन और साहित्य

आशिमा गोयल,
पीएच.डी. शोधार्थी
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110007

भारत विभिन्नताओं के देश कहलाता है। यहाँ न केवल विविध धर्मों और संस्कृतियों के लोग रहते हैं बल्कि विविध जातियों एवं जनजातीय समूहों की अस्मिताएँ एक साथ वास करती है। इन अलग समूहों के कल्याण और विकास संबंधी धारणाएँ भिन-भिन्न है। इस प्रकार जीवन की मुख्यधारा से भिन्न आदिवासी समाज हाशिए की जिंदगी जीने को विवश है। ''आदिवासी समाज का अपना एक लम्बा और समृद्ध इतिहास रहा है। प्रकृत्ति के निकट जीवन को नैसर्गिक रूप में जीना इनकी संस्कृति है। जंगलों में रहते हुए वहाँ के प्राकृतिक संसाधनों के सीमित एवं संतुलित उपयोग के माध्यम से अपना जीवन-निर्वाह करते हैं लेकिन लगातार बाहरी दुनिया के जंगल में बढ़ते हस्तक्षेप, आधुनिक जीवन शैली के पर्यावरण पर बढ़ते दुष्प्रभाव, व्यावसायिक हितों और स्वार्थों ने इनके शोषण की प्रक्रिया को तेज किया है।''[1]

औपनिवेशिक शासनकाल में अंग्रेजों द्वारा आदिवासी समाज के प्रति अपनाई गई गलत नीतियों के दृष्टिकोण में इस समाज को जीवन जीने की मूलभूत आवश्यकताओं से भी विमुख रखा गया है। 'वन संरक्षण अधिनियम' उत्तीर्ण हो जाने के बाद जंगलों में इनके सहज जीवन पर अनेकानेक अंकुश लगा दिए गए परिणामस्वरूप इनका अतीत जीवन के प्रति संघर्ष और जीवन्तता का अतीत हैं। भारत के विविध प्रदेशों में आदिवासी समूहों ने अंग्रेजों और उनसे जुड़े शोषणकारी देशी ज़मीदारों एवं महाजनों के विरुद्ध लड़ाईयाँ लड़ी। अतीत की मुख्यधारा ने इनके विद्रोहों की निंदा करते हुए इन विद्रोहों का इतिहास में सही ढंग से मूल्यांकन नहीं किया गया है। अस्मितावादी विमर्श के तहत अब इस ओर श्रेष्ठपूर्ण प्रयत्न किए जा रहे हैं।

आदिवासी समाज और साहित्य संबंधी अपने लेख में मनीषा लिखती हैं- ''भारतीय समाज जहाँ कई सभ्यताएँ आयीं व प्राचीन समय से लेकर अब तक कई व्यवस्थाएँ परिवर्तित हो चुकी हैं। इस बीच भारतीय समाज में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर कई परिवर्तन हुए। इस बीच मनुष्य कई जातियों एवं वर्गों में बँटा जहाँ मनुष्य द्वारा ही दूसरे मनुष्य का शोषण हुआ। दलित-पिछड़ों को सहने के लिए कई यातनाएँ और पीड़ा मिली। इसी वर्ग का एक बहुत बड़ा हिस्सा जंगलों में गुजर बसर कर रहा है। यह समाज भारत का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। जंगलों में रहने वाला यही तबका आदिवासी कहलाया। आदिवासी अर्थात् जनजाति।

यह शब्द अंग्रेजी भाषा के 'टराईब' का हिन्दी रूपांतरण है। विश्व के अनेक भागों में जन-जातियाँ पायी जाती है। विदेशी जनजातियों में तसमानी, ऑस्ट्रेलियाई, बुशमैन, एस्किमों आदि आती हैं। भारतीय जनजातियों में संथाल, मीणा, भील, नागा, गाडे, थार, खस आदि प्रमुख जनजातियाँ है। भारत में आदिवासी समाज के अधिकांश

लोग जंगलों में जीवन व्यतीत करते हैं, जिनका सहन-सहन प्राकृतिक है जिनके लिए जल, जंगल और ज़मीन ही उनकी पहचान है।''[2]

आधुनिकता की अंधी दौड़ में हम अपने सनातन मूल्यों को भुलाकर केवल स्वार्थ और हित की पूर्ति में लग गए है। विकास के लिए किसी भी कीमत को चुकाने के कगार पर आदिवासी समाज वर्तमान समय में पुनर्व्यवस्था की पीड़ा को झेलने के लिए अभिशप्त हैं। इस संबंध में रमेश चन्द लिखते हैं कि ''ज़मीन से उखड़ा पेड़ दूसरे स्थान पर जड़े जमा नहीं सकता, अगर लगाया जाता है तो वह नये स्थान पर लगाते ही सूख जाएगा। इस सामान्य सी बात को सामान्य सी समझ रखने वाला व्यक्ति समझ सकता है पर दुर्भाग्य से इस देश के नीति नियंता विकास के नाम पर जो नीतियाँ बना और लागू कर रहे हैं उनसे सदियों से रहते आये मूलवासी अपनी जमीन व जंगल से जड़ों सहित उखड़ने के लिए अभिशप्त है।''[3]

साहित्य लेखन की ओर रुख किया जाए तो कहना होगा कि आदिवासी रचनाशीलता की प्रमुख विधाएँ है- कविता, कहानी, उपन्यास और संस्मरण। आदिवासी विमर्शकार राजाराम भादू के अनुसार- ''आदिवासी साहित्य के उद्भव और परिप्रेक्ष्य निर्माण में मराठी के दलित साहित्य के संबंध को जोड़कर देखा गया है जो सही भी है, लेकिन आदिवासी अस्मिता और उनकी संघर्ष-धर्मी चेतना के विकास और प्रतिरोध संगठनों के निर्माण में नक्सलवादी आंदोलन के प्रेरणा प्रयासों को वहाँ लगभग नज़रअंदाज़ कर दिया गया है। जबकि तेलांगना-तेभागा आंदोलन से ही आदिवासी स्त्री-पुरुषों को गोलबंदी आरम्भ हो गयी थी। यह प्रक्रिया नक्सलवादी श्रीकाकुलम, दण्डकारण्य और भोजपुर में आगे परवान चढ़ी और भयंकर दमन और उत्पीड़न के बावजूद आज भी आदिवासी अंचलों में फैलती जा रही है।''[4]

साहित्य तथा विमर्श के क्षेत्र में तथाकथित विद्वान बेमतलब का अस्मिता विद्रोह दिखाते हुए साहित्य को कई भागों में बाँटने का प्रयत्न करते हुए देखा गया है जैसे- आदिवासियों के द्वारा लिखा गया साहित्य ही आदिवासी साहित्य है। अन्य के द्वारा लिखे गए साहित्य को आदिवासी साहित्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। किसी भी समुदाय के मनुष्य द्वारा लिखा गया वह साहित्य जो किसी समुदाय विशेष का विवेचन करता हो उसे उस समुदाय के साहित्य के रूप में निरुपित किया जाना चाहिए। उसमें निहित चेतना, संवेदना आदि पर ध्यान दिया जाना चाहिए न कि रचनाकार की जाति पर। ''कुछ मामलों में ये हो सकता है कि जिसने भोगा नहीं उसे क्या मालूम की वास्तविक दर्द क्या होता है परंतु वैसी स्थिति में भी आदिवासी इतर साहित्यकारों द्वारा लिखे साहित्य को जो कि पूरी तरह से आदिवासियों की संवेदना पर आधारित है उसे आदिवासी विमर्श का साहित्य ही माना जाना चाहिए। क्योंकि साहित्य पर किसी व्यक्ति विशेष या समुदाय का एकाधिकार कभी नहीं रहा और न ही भविष्य में ऐसा हो पाएगा। इसका चाहे तो विभाजन कर आदिवासियों द्वारा रचित साहित्य को आदिवासी साहित्य कहा जा सकता है और आदिवासी इतर साहित्यकारों द्वारा रचित साहित्य को आदिवासी संवेदना का साहित्य तो कहा ही जा सकता है।''[5]

हाशिये पर स्थित आदिवासी समुदाय की पहचान की समस्या

आदिवासियों का वजूद संकट के साथ पहचान की भी समस्या निरंतर बढ़ती जा रही है। सवर्ण लोग आदिवासी समुदाय को सामान्य मनुष्य के तौर पर नहीं बल्कि जंगली, वनवासी, असभ्य और संविधान में आरक्षित जन के रूप में ही परिभाषित करते है। आदिवासी समाज की इस विडंबना पूर्ण स्थिति को महादेव टोप्पो की कविता 'त्रासदी' व्यक्ति करती है- ''इस देश में पैदा होने का / मतलब है / आदमी का जातियों में बँट जाना। और गलती से तुम अगर हो गए पैदा / जंगल में / तो तुम कहलाओंगे / आदिवासी-वनवासी-गिरिजन / वगैरह-वगैरह / आदि तो कम से कम / कहलाओगे नहीं ही।''[6]

डॉ. मंजु ज्योत्सना 'ब्याह' कविता के द्वारा एक आदिवासी स्त्री को अपने माता-पिता का घर छोड़ दूसरे के घर जाने के बाद की पीड़ा को अभिव्यक्त करती है। वह ऐसे पुरुष जाति का विरोध करती है जो स्त्रियों को सिर्फ और सिर्फ चुल्हा और बिस्तर के माफिक समझता है। वह कहती है- ''पिता मेरी शादी मत करना / मैंने देखी है बुधनी की जिंदगी / बाल बच्चे संभाल खेत में खटती है / उसका मर्द सांझ संवेरे, रात / मारता है कितना।''[7]

महाराष्ट्र में कुल 47 आदिवासी जनजातियाँ स्थित है। अन्य राज्यों की तुलना में यहाँ की आदिवासियों की ज़िंदगी भी बहुत ही सोचनीय है। स्वतंत्रता के 70 वर्ष पश्चात् भी अपनी आदिम व्यवस्था में जी रही है। सह्यचद्री, सातपुडा, गोडवाना में यही वर्णित होता है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार और सभ्य समाज द्वारा उपेक्षा का व्यवहार झेलते आदिवासी समाज अब अपनी प्रगति के लिए चिंतन-मनन करने लगे हैं। महाराष्ट्र में आदिवासी लेखकों द्वारा अपनी वेदना और विद्रोह का साहित्य प्रगाढ़ रूप में लिखा जाने लगा है। भुजंग, मेश्राम, वाहरू, सोनवणे, डॉ. विनायक तुमराम, वामन शेडमाके, नेताजी राज गडकर, ऊषा किरण आत्रम आदि कुछ श्रेष्ठ नाम है। विनायक तुमराम की कविताओं के माध्यम से आशावादी दृष्टिकोण परिलक्षित होते हैं। वे अपनी कविता के द्वारा एकलव्य से बातचीत करते हैं और एकलव्य के साथ हुए अन्याय को अपनी कविता के द्वारा मुखरित करते हुए कहते हैं- ''मित्रवर तुम्हारे तरकश में / तड़पने वाले तीक्ष्ण तीर से / करूँगा में क्रांति, बनाऊँगा क्रांति की मशाल / तुम्हारे अंगूठे से बहे रक्त से लिखूंगा मृत्युलेख।''[8]

अंततः भारत की धरा का मूल निवासी आदिवासी होने के बावजूद तथाकथित सभ्य समाज की क्रूरता से यह समुदाय जंगलों, कंदराओं की ओट में रहने के लिए मजबूर है। प्रकृति से साहचर्य प्रतिष्ठित कर यह समाज जल, जंगल और ज़मीन किसी कोने में दुबका रहता है। सवर्णों ने कभी भी अपने ग्रंथों में दलित, आदिवासी समुदायों को पनाह नहीं दी और यही कारण है कि दलित, आदिवासी समुदाय के लोगों को अपनी पुरातन संस्कृति के बारे में ज्यादा ज्ञात नहीं है। समकालीन सवर्ण लेखकों की सोच में पर्याप्त बदलाव आया है और वे भी अपनी लेखनी वंचित संवेदनाओं को उकेरने के लिए चला रहे हैं। ये समय की मांग के कारण भी हो सकता है, क्योंकि पुरातन साहित्य, परम्पराओं, स्वरूपों आदि में बहुत बदलाव आ चुका है और यह कहावत सही भी है जो समय के साथ नहीं चलेगा वह पिछड़ जाएगा। निश्चित रूप से कहा जा सकता है आगामी पीढ़ियों को अपनी जड़े तलाशने के लिए सवर्णों द्वारा लिखे गए ग्रंथों का मुँह नहीं देखना पड़ेगा।

संदर्भ ग्रंथ

1 डॉ. रजत रानी 'मीनू' वन्दना, अस्मितामूलक विमर्श और हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 34
2 वही, पृष्ठ 34-35
3 वही, पृष्ठ 35
4 आदिवासी समाज और शिक्षा- http://www.eledu.net/node/778
5 डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह, आदिवासी साहित्य: चिंतन एवं दिशाएँ, पृष्ठ 22
6 रमणिका गुप्ता, 'आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी', पृष्ठ 49
7 वही, पृष्ठ 98
8 रमणिका गुप्ता, आदिवासी साहित्य यात्र, पृष्ठ 60

संपर्क: 7503869771 ई-मेलः ashimagoelma@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 157-161
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी एकांकी साहित्य के विकास में भारतेंदु हरिश्चंद्र का योगदान

डॉ. दिलचंद राम
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
घाटशिला महाविद्यालय, घाटशिला

विषय प्रवेश :–

एकांकी का अर्थ होता है – 'एक अंक वाला' दृश्य काव्य का यह विशेष भेद जिसमें केवल एक अंक होता है– एकांकी कहलाता है। आधुनिक हिंदी साहित्य में इस शब्द का प्रचलन अंग्रेजी के 'वन एक्ट प्ले' के अर्थ में हुआ हुआ है। हिंदी के विभिन्न विद्वानों ने एकांकी की व्याख्या अपने–अपने ढंग से की है। प्रो. सद्गुरु शरण अवस्थी की मान्यता है कि एकांकी में एक सुनिश्चित सुकलपित लक्ष्य एक ही घटना पर स्थित अथवा समस्या वेग संपन्न प्रवाह और निदर्शन में चातुरी आवश्यक है।

सेठ गोविंद दास जी किसी एक मूल विचार या समस्या को आवश्यक मानते हैं। इसके अनंतर विकास के लिए संघर्ष की आवश्यकता बताते हैं तथा विचारों और संघर्ष दोनों के लिए कथानक, पात्र, कथोपकथन आदि की योजना होनी चाहिए।

प्रसिद्ध एकांकीकार उपेंद्रनाथ अश्क ने एकांकी की तीन आवश्यक बातें बताई हैं– (1) आकार तथा समय की लघुता – इसका समय 35 मिनट से 45 मिनट तक की अवधि मानी है। (2) अभिनयशीलता और (3) रंग संकेत की स्पष्टता।

एकांकी के तत्व –

डॉ. रामचरण महेंद्र ने एकांकी के आठ तत्व निर्धारित किए हैं – (1) कथावस्तु (2) संघर्ष या द्वन्द्व (3) संकलन त्रय (4) पात्र और चरित्र चित्रण (5) कथोप कथन (6) अभिनयशीलता (7) रंगमंच निर्देश और (8) प्रभाव ऐक्य।

एकांकी और नाटक में अंतर

एकांकी और नाटक दोनों ही दृश्य काव्य के अंग हैं, किंतु दोनों में पर्याप्त अंतर है। एकांकी में एक अंक, एक घटना, एक कार्य और एक समस्या होती है; जबकि नाटक में कई अंकों, कई घटनाओं, कई कार्यों और समस्याओं का योगदान होता है। अतः स्थल दृष्टि से एकांकी नाटक की अपेक्षा बहुत लघु और सीमित होता है, किंतु किसी छोटे नाटक को एकांकी या बड़े एकांकी को नाटक नहीं कह सकते। नाटक से निकलकर अलग किए गए। एक अंक को भी एकांकी नहीं कहा जा सकता है। एकांकी अपने आप में पूर्ण होता है तथा उसकी सट्टा उसका अभिव्यक्ति एवं उसकी चाल ढाल नाटक से बहुत कुछ भिन्न होती है। एकांकी कार अपने लक्ष्य की ओर सीधा दौड़ता है, जबकि नाटककार धीरे–धीरे आगे बढ़ता है। एकांकी की शैली में संक्षिप्ता तथा एवं गतिशीलता होती है।[1]

हिंदी एकांकी का विकास नाट्य कला की दृष्टि से हमारा अतीत अत्यंत गौरवमय रहा है। पहली शताब्दी से लगभग नौवीं शताब्दी तक शूद्रक, हर्ष, विशाखदत्त, भास, भटनारायण, कालिदास और भवभूति आदि नाटककारों ने अपनी–अपनी नाट्य कृतियों से संस्कृत साहित्य को समृद्ध बनाया इसके बाद मुस्लिम काल में

नाटक को प्रश्रय नहीं मिला। फलस्वरूप इसकी धारा भूमिगत हो गई। लगभग 1000 वर्षों तक के पश्चात् उसके दर्शन 19वीं शताब्दी में हुए। इसके विपरीत लोक–नाटकों की धारा आबाध गति से बहती रही और लोग जननाटकों से अपना मनोरंजन करते रहे।[2]

हिंदी में एकांकी विधा का सूत्रपात कहां से हुआ इस विषय को लेकर काफी मतभेद है। ओमप्रकाश सक्सेना ने लिखा है''– जिस प्रकार हिंदी साहित्य में नाटकों का प्रारंभ भारतेंदु युग से होता है, उसी प्रकार हिंदी एकांकी का प्रारंभ भी भारतेंदु युग या उसकी मंडली से हुआ। सन 1873 ई. में हम हिंदी एकांकी का प्रारंभ मान सकते हैं, जब भारतेंदु ने 'प्रेमयोग' लिखा।'' इस तथ्य का प्रतिपादन डॉ. सूर्यकांत ने भी किया है। भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी नाटक के जन्मदाता माने जाते हैं। एकांकी का सूत्रपात उन्होंने ही किया। डॉ. रामचरण महेंद्र ने भी इस मत का अनुमोदन किया है। आधुनिक युग में भारतेंदु को हिंदी एकांकी के जन्मदाता माने जाते हैं, किंतु प्रतिनिधि एकांकी कार्य की भूमिका में इस धारणा को खंडन करते हुए उन्होंने लिखा है–''भारतेंदु युग से हिंदी एकांकी का प्रारंभ स्वीकार नहीं किया जा सकता भले ही उसे कल में नाटकों के नाते रचनाओं की बाहरी शैली एकांकी जैसी हो इस विरोधाभास इस विरोधात्मक स्थापना के साथ ही डॉक्टर महेंद्र के प्रबंध की सार्थकता कम होती है। साथ ही साथ सत्य की आधारशिला से बहुत दूर चले जाते हैं। इस तथ्य पर एक विरोध और भी उत्पन्न हो जाता है, वह यह है कि अगर हिंदी एकांकी का प्रारंभ भारतेंदु युग से नहीं माना जाए तो डॉ. महेंद्र ने ही अपने शोध प्रबंध में भारतेंदु के एकांकियों से ही विवेचन प्रारंभ क्यों किया है? वहीं से विकास की श्रृंखला क्यों जोड़ी गई है? इस मत की पुष्टि उनके शोध प्रबंध में भारतेंदु के एकांकियों के विवेचन से ही हो जाती है। बलवंत गार्गी और नेमीचंद्र जैन ने भी हिंदी एकांकी का प्रारंभ भारतेंदु युग के एकांकियों से माना है। डॉ . नगेंद्र ने लिखा है ''हिन्दी एकांकी का इतिहास गत दस वर्षों से सिमटा हुआ है, यूं तो हिंदी के प्रेमी इसे भारतेंदु तक खींच कर ले गए।''[3]

जगदीश चंद्र माथुर का विकास विचार है कि ''सन 1930 ई. के आसपास एकांकी नाटकों का उदय रंगमंच की परंपरा के उत्थान में एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक चिह्न है।''

हिंदी एकांकी के विकास को चार उत्थानों में विभक्त किया गया है –

प्रथम उत्थान (1870 ई से 1900 तक)
द्वितीय उत्थान (1901 ई से 1936 ई तक)
तृतीय उत्थान (1937 ई से 1947 ई तक)
चतुर्थ उत्थान (1948 ई से 1975 ई तक)

हिंदी एकांकी में भारतेंदु हरिश्चंद्र का योगदान–

हिंदी एकांकी साहित्य में भारतेंदु जी का अनुपम योगदान है । भारतीय एकांकीकारों पर भारतेंदु की एकांकी लेखन कला की गहरी छाप है। एकांकी लेखन में ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक और हास्य व्यंग प्रधान एकांकियों की रचना हुई है। यह राष्ट्रीय जागरण का काल था, जब एकांकी का स्थान और विकास हुआ इस काल के एकाकीकारों (नाटककारों) ने अपने नाटकों का कथानक राष्ट्रीय चेतना को चुना और उनसे जनजीवन को प्रभावित किया। इस क्षेत्र में भारत की तत्कालीन दुर्व्यवस्था गुलामी, अतीत की स्मृति, आत्मगौरव की भावना, राष्ट्रीय कल्याण उज्ज्वल चरित्र और सुखमय भविष्य की कल्पना आदि को नाटक का विषय बनाया गया। इस दृष्टि से भारतेंदु का 'भारत दुर्दशा' और 'भारत जननी राधाचरण गोस्वामी का 'भारत माता', काशीनाथ खत्री का 'तीन परम मनोहर' ऐतिहासिक रूपक हैं। राधाकृष्ण दास का 'महारानी पद्मिनी' और प्रताप नारायण मिश्र का 'भारत दुर्दशा' आदि द्रष्टव्य है। इन एकांकियों में इन एकांकीकारों का उद्देश्य था– प्राचीन आदर्श को समक्ष रखकर नवजागरण का संदेश देना। ये एकांकी मनोरंजनात्मक न होकर उपदेशात्मक और प्रबुद्धात्मक होते थे। तत्कालीन भारतीय राजनीतिक चेतना का स्तर इन एकांकियों में स्वतः मुखरित है।

जहाँ पौराणिक एकांकियों की कथावस्तु, भारतीय संस्कृति की आदर्शवादी विचारधारा से चुनी गई है। इस काल के एकांकियों में बिखरी हुए भारतीय संस्कृति की रचनात्मक एवं सुधारात्मक प्रवृत्तियाँ ही प्रबल है। उन्हें अपने उद्देश्य में आशातीत सफलता मिली है। इस दृष्टि से भारतेंदु का 'माधुरी' और 'धनंजय विजय' पंडित बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमधन' का 'प्रयाग गण', राधा चरण गोस्वामी का 'श्रीदामा' और 'सतीश चंद्रावली',

बालकृष्ण भट्ट का 'दमयंती स्वयंवर' एकांकियों ने अपने उत्थान को विशेष रूप से प्रभावित किया है और इन संबंधों ने सबों में भारतीय संस्कृति की रक्षा के बीज तत्व हैं, इसमें संदेह नहीं।[4]

इस उत्थान में सबसे अधिक प्रश्रय सामाजिक एकांकियों को मिला। इसमें सामाजिक विकृति को दिखलाकर सुधारात्मक प्रवृत्ति अपनाई गई है और कथ्य का प्रवेश अथार्थवादी सामाजिक घटना है। राष्ट्रीय जागृति के साथ ही साथ इन नाटककारों की दृष्टिकोण समाज की पतनोन्मुख दशा की ओर गयी। समाज की रूढ़ियां, प्राचीन मान्यताएं सामाजिक विद्रूपता, मद्यपान, वेश्यावृत्ति, अस्पृश्यता, व्यभिचार, जुआ, जाति भेद, धार्मिक संघर्ष आदि ने तत्कालीन समाज में अराजकता फैला रखी थी और जनजीवन इन प्रतिक्रियाओं से आक्रांत था। इस उत्थान के एकांकीकारों का ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ, फलस्वरूप वे सामाजिक एकांकियों की रचना करने लगे। इस प्रवृत्ति का प्रभाव उसके प्रवृत्ति, उत्थान, कथावस्तु पर विशेष रूप से पड़ा। भारतेंदु जी का 'भारत दुर्दशा', पंडित प्रताप नारायण मिश्र का 'कलि कौतुक रूपक', पंडित अम्बिका दत्त व्यास का 'भारतवर्ष में यवन लोग' आदि इस उत्थान के आधार स्तंभ है। इसमें सामाजिक रूढ़ियों और कुरीतियों को उभारा गया है।[5]

हास्य– व्यंग की दृष्टि से इस उत्थान का अपना महत्व है। इन एकांकियों के कथानक तत्कालीन जीवन से लिए गए हैं और उनके विद्रूपताओं पर हंसने का प्रयास किया गया है। इन एकांकियों का मूल उद्देश्य सुधारात्मक है। ढोंगी साधुओं धर्म के नाम पर नवयुवक व्यक्तियों को वासना का शिकार बनाने वाले धर्म के ठेकेदारों जनता की आंखों में धूल झोकने वाले, ज्योतिषियों और देवताओं के नाम पर मंदिरों में कर्मकांड का प्रसारण देने वाले पंडितों आदि बगुला–भक्तों का भंडाफोड़कर जनसाधारण के समक्ष रखने का प्रयास है।

इस उत्थान के एकांकीकारों का मूल उद्देश्य या तो भारतेंदु ने इस कार्य को स्वयं किया और भारतेंदु ने और राधा चरण गोस्वामी बालकृष्ण भट्ट और पंडित प्रताप नारायण मिश्र आदि नाटककारों ने इस विधा को आगे बढ़कर उनके अस्तित्व को अच्छुण्ण रखा है।

हास्य–व्यंग्य के कलात्मक दृष्टिकोण से इस उत्थान के एकांकी ऐसे हैं, जिसमें समस्या के एक ही पहलू पर विचार किया गया है और संवादों में पात्रों के माध्यम से लेखकीय विचारों को जो रख दिया गया है। भारतेंदु हरिश्चंद्र का स्थान प्रथम उत्थान में सर्व प्रमुख है। मेरा इन्होंने लघु नाटकों के अतिरिक्त पूर्ण नाटकों की भी रचना की। 'पाखंड–विडम्बन' 'धनंजय विजय' विषस्म 'माधुरी' 'भारत दुर्दशा', 'प्रेम योगिनी' 'नील देवी' 'अंधेर नगरी' और वैदिक की हिंसा हिंसा न भवति आदि भारतेंदु के लघु नाटक हैं, जिन्हें निर्विरोध एकांकी माने जा सकते हैं। विषय वस्तु की दृष्टि से भारतेंदु के एकांकी की प्रमुखता चार भागों में विभक्त किया जा सकता किया गया है। ऐतिहासिक, पौराणिक सामाजिक और हास्य व्यंग प्रधान एकांकी।[6] 'भारत दुर्दशा', 'भारत जननी' विषस्य विषमौषधम' और 'नील देवी' उनके ऐतिहासिक एकांकी हैं। इनमें राष्ट्रीयता का शंखनाद है। 'भारत दुर्दशा' उपरूपक का एक भेद है। भारतेंदु ने इसे लास्य रूपक नाट्य रासक कहा है। नाट्य रासक में एक अंक होता है। 'भारत दुर्दशा' में छह अंक है, जो दृश्य के पर्याय हैं। इस संबंध में डॉ. गोपीनाथ तिवारी भारतेंदु के 'भारत दुर्दशा' को प्राचीन शास्त्रीय शैली का नाट्य रासक नहीं मानते, वरण नवीन शैली का नाट्य रूपक स्वीकार करते हैं।[7]

भारतेंदु ने इसमें नांदी की योजना नहीं की है। मंगलाचरण इसमें हुआ है। गीतों और पदों को इसमें विशेष स्थान दिया गया है। अंतिम अंक में 'भारत भाग्य' का स्वागत है। रंग संकेत है किंतु पात्रों के मनोभावों के चित्रण में समर्थ रंगमंचीय दृष्टि से उतना सफल नहीं कहा जा सकता। भारतेंदु ने अपने काल में ही इसका मंचन करवाया था। पात्रों की अधिकता के कारण इसका कथानक बिखरा सा लगता है और कथानक की गति शिथिल है किंतु लेखक अपने उद्देश्य में पूर्णता में सफल है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का 'भारत दुर्दशा' का ऐतिहासिक महत्त्व है। इस परिपाटी को लेकर पंडित प्रताप नारायण मिश्र ने भी 'भारत दुर्दशा' एकांकी लिखा है। यद्यपि यह अपने में उतना प्रभावशाली नहीं बन सका, किंतु इसका ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य अक्षुण्ण रहेगा।[8]

'भारत भाग्य' के रंग संकेत से यह स्पष्ट है कि भारतेंदु अपने रंगमंच पर अवनिका का प्रयोग करते थे जो अंक की समाप्ति पर गिरती थी। उन्होंने अंक और दृश्य में कोई भेद नहीं रखा।

'भारत जननी' भारतेंदु जी की एक अन्य एकांकी है। यह ओपरा (Opera) है (ओपरा संगीत– नाट्य विधा है जिसमें संगीत, गीत, अभिनयम, नृत्य और नाटक सबका सम्मिलित रूप प्रस्तुत किया जाता है। इसकी मौलिकता में विद्वानों को संदेह है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा डॉ. रामचरण महेंद्र ने इसे बंगला के किसी कवि का 'भारत–माता' का अनुवाद माना है। 'भारत जननी' के रूप को इतना परिवर्तित रूप में भारतेंदु ने रखा है कि इसके मौलिकता पर कुछ क्षणों तक संदेह नहीं किया जा सकता। इस कथन की पुष्टि डॉ. सत्येंद्र ने किया है 'भारत जननी' का प्रबंध विधान बंगला के किसी की रचना 'भारत–माता' से लिया गया है और इसमें भारतेंदु जी ने अपने मनोनूकूल परिवर्तन करके प्रस्तुत किया है। ऐसी स्थिति में उसे मौलिक कहा जाए तो कोई विशेष आपत्ति नहीं हो सकती।[9] डॉ. सिद्धनाथ कुमार ने भी डॉ. सत्येंद्र के विचार का अनुमोदन किया है। अतः इसकी मौलिकता में संदेह करना नाटककार के प्रति अन्याय होगा।

भारतेंदु पारसी रंगमंच से प्रभावित हल्के और पतनोन्मुख नाटकों से हटकर जनरुचि का परिष्कार करने वाले नाटकों का प्रणयन किया है।[10] किंतु 'भारत जननी' को देखते हुए यह भी यह कभी भी नहीं माना जा सकता कि 'भारत–जननी' पर पारसी रंगमंच का परवाह नहीं है। कथानक की दृष्टि से या अपने सोद्देश्यता की प्राप्ति में भले ही एकांकी सफल हो। पारसी नाटकों में जिस प्रकार पद्यात्मक और गद्यात्मक संवाद के दर्शन होते हैं उनसे कम गीतों और पद्यात्मक संवादों की योजना इसमें नहीं है। इसका प्रारंभ ही मंगलाचरण से होता है। इसमें ठुमरी, परज, कलिंगगड़ा, राजबसंत, होली, राग चैती, सोरठा, मल्हार और दोहे आदि का पर्याप्त प्रयोग है। यहां परतंत्रता की निंदा में निमग्न भारतवासियों को जगाने का प्रयास किया गया है। भारत माता सोए पड़े अपने बच्चों को देखकर कहती हैं – इन्हें तो भयानक अंधकार में पड़े रहने के कारण अधिक भ्रम हो गया है और इसी हेतु नेत्रोंन्मिलन होकर इस दशा में पड़े हैं..... देखो बेटा, हमारा धन, आभूषण, वसन इत्यादि सब लुटेरे बलात हर ले गए हैं।''[11]

परतंत्रता की बेड़ी में जकड़ी भारत माता के मुख से इस प्रकार कहलाकर भारतेंदु ने अंग्रेजी शासकों के मुंह पर एक कठोर थप्पड़ मारा है। कथानक रंगमंचीय और युगानुकूल है किंतु मंगलाचरण और गीतों के समूह में कथानक विलीन हो गया है। इनकी गति खो गई है। मंच पर भारत–सरस्वती, भारत–लक्ष्मी, भारत–माता, भारत–दुर्गा, भारत–जननी और कुछ भारत–वत्सों का आगमन होता है। यह एक दृश्यीय नाटक है। दृश्य के पूर्वार्द्ध में संलाप पद्यात्मक है और उत्तरार्ध में पद्यात्मक और गद्यात्मक दोनों। इसमें रंग संकेत पर्याप्त नहीं है, भाषा खड़ी बोली है और अवधि है इस पर अंग्रेजी 'ठापेरा' की पूर्ण छाप है। संकलन त्रय का अभाव है। प्रभाव ऐक्य की कमी है। इसके पात्र भी प्रतीकात्मक हैं। उनकी प्रधान विषय वस्तु को लेकर रंगमंच पर सरलता से प्रदर्शित की जा सकती हैं।

निष्कर्ष :– इस प्रकार हम देखते है, हिन्दी गद्य साहित्य में एकांकी का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके उत्थान और विकास में भारतेन्दु युग हरिशचन्द्र एवं उनके युग का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, इसे नकारा या भूलाया नहीं जा सकता। इसका महत्व उपर्युक्त अध्ययन के अतिरिक्त 'प्रेमयोगिनी' का प्रतिपाद्य विषय समकालीन काशी के गुण्डों का चित्रण को देखकर अनुभव किया जा सकता है। 'विषस्य–विषयौषधम' एक भाणा है। इसमें मल्हाबराव के सिंहासन च्युत होने का इतिहास और पर स्त्री गमन की निन्दा की गयी है। 'नील देवी' में मुस्लिम आक्रमणकारियों की नीचता और भारतीय नारी की वीरता का जो चित्रण है, जिसे तात्कालीन भारतीय समाज का दर्पण कहना समीचीन होगा।

संदर्भ संकेत

1. 'साहित्यिक निबंध', डॉ. गणपति चंद्रगुप्त, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवम संस्करण, पृष्ठ सं. 457
2. 'हिंदी एकांकी का रंगमंचीय अनुशीलन', भुवनेश्वर, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ संख्या– 102
3. 'आधुनिक हिंदी नाटक', डॉ नागेंद्र' , नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 139
4. ' हिंदी एकांकी का रंगमंचीय अनुशीलन', भुवनेश्वर , अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ संख्या – 110

5. ' वही' , पृष्ठ संख्या –111
6. ' वही' ,पृष्ठ संख्या 112
7. 'भारतेंदु नाटक साहित्य' डॉ. गोपीनाथ तिवारी, प्रकाशन हिंदी साहित्य, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 349
8. 'भारतेंदु युग': डॉ रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 60
9. 'हिंदी एकांकी उद्‌भव और विकास' , डॉ. रामचंद्र महेंद्र, राजपाल एंड संस प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 275
10. वही , पृष्ठ संख्या – 54
11. 'हिंदी एकांकी का रंगमंचीय अनुशीलन', भुवनेश्वर, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ संख्या 114

मोबाइल नंबर – 9431559318

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 162-165
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी बाल कथा साहित्य में बाल जीवन की समस्याएं : एक मनौवैज्ञानिक अध्ययन

पूजा सोनी
शोधार्थी,
हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

मूल सार- हिंदी बाल कथा साहित्य में बाल मन को टटोलने का सदा प्रयास होता रहा है तथा समाज में फैली समस्याओं का विवेचन होता रहा है। आज भारत दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन चुका है तथा सामाजिक, राजनीतिक, एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में दुनिया में अपनी छाप छोड़ रहा है किन्तु भारत के हरियाणा जैसे राज्यों में बाल लिंग अनुपात (834) आज भी सोचनीय स्थिति में है। हिंदी साहित्यकारों ने मनोवैज्ञानिक न होते हुए भी बाल मन में सामाजिक असमानताओं के कारण पड़ने वाले प्रभाव का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है तथा समाज के विभिन्न रूपों का विवेचन किया है तथा बच्चों के असमान व्यवहार, अपराधिक मनोवृत्तियों, तथा चिंताजनक व्यवहार के कारणभूत तत्वों की खोज भी की है। बाल विमर्श की दृष्टि से अनेक विमर्शकारों में अपनी लेखनी के माध्यम से अपने समय और समाज के बच्चों के जीवन की जटिलताओं तथा मनोभावों को न केवल संस्पर्श किया अपितु अत्यन्त गहन चिंतन तथा विचार विमर्श का धरातल भी प्रदान किया तथा जिस प्रकार एक माँ अपने बच्चे के मन को समझती है उसी प्रकार हिंदी साहित्यकारों ने बाल मन की गहराइयों में उतरकर बाल मनोविज्ञान की अनेक झांकियां प्रस्तुत की।

बीज शब्द - लैंगिक रूढ़िवादिता, मनोविज्ञान, शैक्षणिक विभेद, भ्रूण हत्या, उत्पीड़न, दुर्व्यवहार लिंगभेद।

मूल आलेख - हिंदी साहित्य में विभिन्न आलोचकों ने मानव जीवन के विभिन्न आयामों तथा चित्रों को उभारा है तथा विभिन्न बाल चित्रों की मनौवैज्ञानिक झांकी भी प्रस्तुत की है। किन्तु बाल जीवन पर गंभीर विचार विमर्श का अभाव अभी भी खटकता है। समय - समय पर इस पर कम होता रहा है क्योंकि अनेक कहानियों, उपन्यासों आदि में बच्चों की आवश्यकताओं (मानसिक तथा शारीरिक), अधिकारों, समस्याओं, दैहिक शोषण, मानसिक उत्पीड़न, लैंगिक उत्पीड़न आदि पर चित्र उकेरे गए है किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि इस पर गंभीर अध्ययन किया जाए। बाल जीवन से जुड़ी समस्याओं को मुख्यतः दो भागों में बांटा गया है

1- मनौवैज्ञानिक समस्याएं
2- सामाजिक समस्याएं

बच्चों से संबंधित मनौवैज्ञानिक तथा सामाजिक समस्याओं पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि समाज में अपने अपने हक की लड़ाई लड़ने वाले लोगों में बच्चे शामिल नहीं है। वे अपने अधिकारों की लड़ाई स्वयं नहीं लड़ सकते, ऐसे में हम बड़े उनके प्रति अपने उत्तरदायित्वों तथा कर्तव्यों से मुंह नहीं मोड़ सकते। वर्तमान समय में बच्चों से जुड़ी

तमाम समस्यायें जैसे कुपोषण, अशिक्षा, भ्रूण हत्या, उत्पीड़न, बाल श्रम, यौन शोषण आदि विकराल रूप लेकर सामने खड़ी है। बाल अधिकारों पर सम्मेलन की 20वीं वर्षगांठ के अवसर पर मुस्कान इंडिया, यूनिसेफ, सी. डब्लू. सी. (बाल अधिकार सम्मेलन, अहसास के प्रतिनिधियों ने बच्चों से जुड़ी भिन्न मानसिक तथा सामाजिक समस्याओं को रेखांकित किया जो इस प्रकार है-

1- बाल संरक्षण की जिम्मेदारी निभाने में सरकारी तंत्र की विफलता।
2- बच्चों में अशिक्षा।
3- गरीबी उनकी पढ़ाई में एक प्रमुख बाधा है।
4- 50 प्रतिशत से ज्यादा बच्चे कुपोषित है तथा 40 फीसदी बच्चे गंभीर रोगों डायरिया, निमोनिया आदि से ग्रसित है तथा वे पर्याप्त टीकाकरण एवं पोषण सुविधाओं से भी वंचित है।
5- राज्य की बाल कार्य योजना तथा बाल नीति में सुधार की आवश्यकता है।
6- बाल अधिकार किसी भी राजनीतिक दल के घोषणा पत्र में शामिल नहीं है।
7- लैंगिंग भेदभाव बरते जाने की घटनाएं अभी भी बहुत है।
8- बच्चों को अभिभावक प्रयोगशाला के रूप में समझते हैं जोकि सही नहीं ै।
9- अभिभावकों द्वारा बच्चों पर सिर्फ अपने स्वप्न लादना बिना उनकी रुचि समझे।
10- टेलीविजन के माध्यम से आधुनिकता के नाम पर परोसी जाने वाली फूहड़ता जो बच्चों के मन मस्तिष्क पर बहुत बुरा असर डाल रही है।
11- बच्चों को एक नागरिक के तौर पर न पालना।
12- मानसिक मंदित बच्चों के लिए अलग बजट का अभाव।

इस प्रकार समय समय पर किए जाने वाले भिन्न भिन्न कार्यक्रमों में विभिन्न समस्याएं सामने आती हैं।

हिंदी साहित्य के कथा क्षेत्र में बाल जीवन के विभिन्न पहलुओं का आंकलन किया गया है तथा समसामयिक पहलुओं को देखने के बाद पता चलता है कि समाज में बच्चों की आधी से अधिक आबादी अभी भी अशिक्षित है तथा अधिकांश बच्चे तो ऐसे हैं जिनका नाम तो स्कूली रजिस्टर में दर्ज है किन्तु अनेक कारणों से स्कूल नहीं जाते है अथवा ' ड्रॉप आउट' के कारण समय से पहले ही स्कूल छोड़ देते हैं। सबको प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने का संकल्प उठाने तथा उसके पीछे प्रतिबद्धता के बावजूद बाल अशिक्षा की व्यापकता के अनेक कारण हैं जैसे निर्धनता बालश्रम, लिंगभेद, अभिभावकों में जागरूकता का अभाव, बालिका शिक्षा के विभिन्न साधन उपलब्ध होने के बाद भी उनका लाभ ना उठाना। इन्हीं विकट समस्याओं को उजागर करती हुए अनेक रचनाएं हिंदी साहित्य में हुए है जैसे-**कुछ बेमतलब लोग (दिनेश पालीवाल)** नामक कहानी में जब भीख मांगने वाले बच्चे अपने सामने दूसरे बच्चों को स्कूल जाते देखते हैं तो उन्हें अपनी हीनावस्था का तीव्रता से बोध होता है। अपने इस मूल तथा संवैधानिक अधिकार से वंचित रह जाने के कारण उनका यह आक्रोश गालियों के रूप में फूटता है फुटपाथ पर बैठे बच्चे कुछ पल उस सफेद बच्चे को देखते रहते हैं फिर कहते है, जरूर अंग्रेजी स्कूल में पढ़ता होगा और क्या हमारी तरह भीखमंगा बना डोलता है ?" अपने माँ बाप साले कितने हरामी है.... नगरपालिका वाले स्कूल तक हमे नहीं भेजते।"1

यद्यपि सरकार ने मुफ्त शिक्षा तथा उसके साथ माध्यमिक भोजन कार्यक्रम को शुरू करके इस समस्या का समाधान किया है लेकिन ड्रेस, कॉपी आदि की कमी के कारण बच्चे दंडित होते है तथा स्कूल जाने से कतराते है जैसे **'परंपरा'** नामक कहानी को लिए जा सकता है। जहां पर रग्धू के पास पढ़ाई लिखाई का कोई सामान नहीं था" स्लेट की जगह उसके पास टिन का टुकड़ा था जिस पर उसके पिता बदलू ने काला रंग पुतवा दिया था उसी पर वह खड़िया से सवाल निकालता था, रग्घू के पास न रबड़ थी न ड्राइंग पेपर की कॉपी। उसे इतनी सजा मिलती थी कि वह पिता से कहता था कि जब तक समान नहीं होगा मैं स्कूल नहीं जाऊंगा। "2

स्थान विशेष की भौगोलिक संरचना के कारण भी शैक्षणिक संस्थानों का अभाव है वहां बच्चे अशिक्षित रहने के लिए विवश है। ' **गलत लोहा**' कहानी इसी समस्या की ओर संकेत करती है जिसमें एक मेधावी छात्र भी कैसे आगे की पढ़ाई के लिए गांव में विद्यालय न होने के कारण अंततः मात्र एक लोहार बनके रह जाता है आगे की पढ़ाई के लिए जो स्कूल था वह गांव से चार मील दूर था। दो मील की चढ़ाई के अलावा बरसात के मौसम में रास्ते में पड़ने वाली नदी की समस्या अलग थी।" 3

बाल कुपोषण की स्थिति भारत में बहुत विकट है। भारत में लगभग 50 प्रतिशत बच्चे कुपोषित है जिसके कारण जन्म के समय कम वजन, प्रोटीन व विटामिन तथा अन्य पोषक तत्वों की कमी तथा संक्रामक रोगों से ग्रस्त होने के कारण पांच वर्ष की आयु तक पहुंचने के पूर्व ही बच्चे मृत्यु के मुख में चले जाते हैं। समाज वैज्ञानिकों ने बाल कुपोषण के पीछे (1) देश में व्याप्त गरीबी और भुखमरी (2) स्वास्थ्य एवं पोषण संबंधी सेवाओं की अपर्याप्तता तथा उन तक सबकी पहुंच न होना आदि कारण प्रमुख है। जन्म के समय से दुर्बल तथा अस्वस्थ बच्चे कालांतर में दूध, संतुलित आहार इत्यादि न मिलने से गंभीर कुपोषण का शिकार होते चले जाते हैं। हिंदी कथा साहित्य में बाल कुपोषण की समस्या पर कुछ कहानियां रची गई है। जैसे **'बबलू'** नामक कहानी में एक रिक्शा चालक अपने बच्चे बबलू के स्कूल की मोटी फीस जुटाने के बाद उसे सिवाय सूखी रोटी के कुछ नहीं जुटा पाता बबलू के लिए पाव भर दूध का जुगाड नहीं हो पा रहा है। चाय के साथ रोटी खाकर जाता है बबलू स्कूल।" 4 इसी तरह वह पीलिया से ग्रसित होकर एक दिन काल का ग्रास बन जाता है। बाल कुपोषण का एक कारण बालक-बालिका के बीच भेदभाव भी है इसी कारण जहाँ पांच बालकों में एक कुपोषित है वहीं दो बालिकाओं में एक बालिका कुपोषित है क्योंकि बालकों की अपेक्षा उन्हें कम समय तक स्तनपान कराने, आहार में अंतर, बीमारियां होने पर उनकी उचित देखभाल, इलाज न करा पाना तथा उपेक्षा बरतने की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। अपनी ही जन्मी बच्ची को बोझ समझ कर माताएं जन्म के पश्चात ही उपेक्षा बरतना शुरू कर देती हैं तथा उन्हें दुग्धपान तक से वंचित कर देती है। जैसे **तीन किलो की छोड़ी** नामक कहानी में स्वस्थ, सुंदर तथा वजनी बच्ची को लेकर जन्म देने वाली लल्लीबेन के घर जब दाई बच्ची को लेके जाती है तो वहां सिर्फ लताड़े ही पति है। माता मातम मनाती है और दादी कहती है"..... तीन किलो ! तीन किलो ! दूध है जो डिपो पर बेंच आए। क्यों जले पर नमक छिड़क रही है, डाल परे कमबख्त को। मरे तो अपने भाग से जिए तो अपने भाग से।" 5 वहीं दूसरी ओर पड़ोस में रहने वाली नैनीबेन स्वयं कुपोषित है तथा जल्दी ही बच्चे को छोड़कर कम पर जाने लगती है, जिससे जन्म के समय ही अत्यंत कम वजनी होने के कारण कुछ दिनों में ही दम तोड़ देता है।

निष्कर्ष : हिन्दी कथाकारों ने जिस प्रकार इन समस्याओं पर विचार विमर्श किया है उसके अध्ययन से पता चलता है कि प्रेमचन्द युग में बच्चों की समस्याएँ भिन्न प्रकार की हैं, वहाँ बालक ग्रामीण अंचलों में फैली निर्धनता, निरक्षरता, बेरोज़गारी, अभावों तथा सामंती परिवेश की समस्याओं से ग्रसित है। वहीं जैनेन्द्र के रचनाकाल में कहानी क्षेत्र में मनोविज्ञान के प्रवेश के साथ बालमन को प्रभावित करने वाले घटकों पर प्रकाश डाला गया है। अज्ञेय और उनके समकालीन रचनाकारों की कहानियों व उपन्यासों में बालक आधुनिक परिवेश के दबाव का दंश झेल रहा है। भीष्म साहनी, मन्नू भण्डारी जैसे लेखकों की रचनाओं में तत्कालीन समाज के विघटन, टूटन, बिखराव तथा माता-

पिता के असहज, असफल दाम्पत्य सम्बन्धों में पिसते बच्चों का आत्र्तनाद सुनाई देता है। आगे उत्तर आधुनिकता के दौर में भूमण्डलीकरण, उपभोक्तावाद, बाज़ारवाद तथा मीडिया संस्कृति' का चहुँतरफा दबाव झेलते बच्चों की बहुआयामी समस्याओं पर चिन्तन्-मनन किया गया है। घर में पिता, माता, विमाता अथवा अन्य सदस्यों द्वारा तथा विद्यालयों में शिक्षकों के द्वारा बच्चे शारीरिक हिंसा का शिकार होते हैं। परिवार में अति अनुशासनप्रियता, बच्चों को नियन्त्रित करने हेतु सदा दण्ड का तरीका अपनाने व मादक द्रव्यों के व्यसन आदि के कारण पिता प्रायः आतंक के पर्याय बन जाते हैं। वहीं परिवार में विमाता द्वारा अपने-पराए का भेद करने, सपत्नी के बच्चों को प्रताड़ित कर अपने बच्चों के साथ पक्षपातपूर्ण बर्ताव करने तथा माता के द्वारा क्रोध, खीझ, झुंझलाहट आदि के कारण बच्चों के साथ निर्मम व्यवहार किया जाता है। स्कूलों में शिक्षक बच्चों को उनकी छोटी-छोटी गलतियों के कारण कठोर शारीरिक दण्ड देते हैं, जैसे बेतों से पिटाई, बाल नोंचना, थप्पड़ मारना, कान उमेठना, लटका देना, धूप में दौड़ाना, उठक-बैठक लगवाना, मुर्गा बना देना, कमरे में बन्द कर देना। हिन्दी कथा साहित्य में कठोर शारीरिक दण्ड भुगतने वाले बच्चों की दुरावस्था का चित्रण करती हुई कई रचनाएँ मिलती हैं, जैसे-'दशरथ का वनवास' (चित्रा मुद्गल), तुम किसकी हो बिन्नी' (मैत्रेयी पुष्पा), गोबर गणेश (रमेश चन्द्र शाह), 'वंशज' (मृदुला गर्ग), दुख भरी दुनिया' (कमलेश्वर), आदि। समाज में व्याप्त कई प्रकार के धर्माडम्बर, अन्धविश्वास और कुप्रथाएँ बच्चों के लिए अत्यन्त अहितकारी तथा खतरनाक हैं, फिर भी, इनका उन्मूलन नहीं किया जा सका है।

संदर्भ :

1. कुछ बेमतलब लोग, दिनेश पालीवाल, लाइब्रेरी बुक सेंटर, दिल्ली, संस्करण-1994, पृष्ठ संख्या-71, 72
2. मेरी प्रिय कहानियाँ, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, पूर्वोदय प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण-2008, पृष्ठ संख्या- 348
3. गलता लोहा 'शेखर जोशी संकलित कहानियाँ नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली, संस्करण-2008, पृष्ठ संख्या-100
4. बबलू, बच्चन सिंह, अभिव्यक्ति पत्रिका, 16 नवम्बर 2006
5. शहर के नाम, कहानी संग्रह, तील किलो की छोरी, मृदूला गर्ग, संस्करण-1990, पृष्ठ संख्या-1
6. समग्र कहानियाँ, दुख भरी दुनिया, कमलेश्वर, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-6, संस्करण 2002, पृष्ठ संख्या-438,439
7. प्रसाद की सम्पूर्ण कहानियाँ, बेड़ी, जयशंकर प्रसाद, भारतीय भाषा प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, संस्करण 1988, पृष्ठ संख्या-229,230
8. मानसरोवर, भाग-6, गृहदाह, प्रेमचन्द, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-1980 पृष्ठ संख्या- 176,177
9. ललमनियाँ, तुम किसकी हो बिन्नी संस्करण-1996, पृष्ठ संख्या-13
10. मानपत्र, गोबर गणेश, रमेशचन्द्र शाह, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, संस्करण-1992, पृष्ठ संख्या- 36,37

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 166-169
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी का बदलता परिवेश और संभावनाएं

रजत तिवारी
शोधार्थी,
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय (दिल्ली)

क ख ग घ लघुत्तम और अर्थभेदक स्वनिमों से शुरू होती हुई, शब्द या पदों के सार्थक समूह से वाक्यों के सार्थक समूह से आगे बढ़कर भाषा का स्वरूप प्राप्त करती हमारी हिंदी, देश की राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित है। हिंदी भाषा की विकास यात्रा प्राचीन भारतीय आर्यभाषा संस्कृत (वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत) से होती हुई मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा (पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश) से विकास की ओर बढ़ते-बढ़ते आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं तक आकर पहुँचती है, जिसमें वर्तमान में 5 उपभाषायें और 18 बोलियाँ शामिल हैं। इन सभी उपभाषाओं एवं बोलियों को हिन्दी के व्यापक अर्थ के रूप में लिया जाता है। आदिकाल में पद्य (दोहा, कवित्त, छप्पय आदि) के रूप विकसित हुई हिंदी भाषा आधुनिक काल में गद्य-पद्य दोनों के रूप में आगे बढ़ते-बढ़ते एक नए परिवेश में हमारे सामने मौजूद है, हिंदी भाषा का यह परिवेश वर्तमान में विज्ञान, तकनीक, जनसंचार के एक सशक्त माध्यम के रूप में हमारे सामने विकसित हुआ है। वर्तमान में हिंदी के महत्त्व का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता हैं कि हमारे देश में हर वर्ष 14 सितंबर को राष्ट्रीय हिंदी दिवस एवं हर वर्ष 10 जनवरी को अंतरराष्ट्रीय हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाता है। इसे विश्व हिन्दी दिवस भी कहते हैं। इस दिन को मनाने का उद्देश्य हिंदी भाषा के महत्त्व को समझने के लिए प्रेरित करना और हिन्दी भाषा को वैश्विक स्तर पर बढ़ावा देना है।

बदलते समय में हुए परिवर्तन के साथ हिंदी भाषा ने अपना स्वरूप बदला है ।आज विश्व में लगभग 3000 भाषाएँ बोली जाती हैं, जबकि भारत में ही 453 भाषाएँ बोली जाती हैं, जिनमें से 22 भाषाओं को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया है और अनुच्छेद 343 से 351 में हिंदी भाषा के विकास से जुड़े प्रावधान शामिल हैं। वर्तमान में हिंदी तकनीक और विज्ञान की भाषा भी है। हिंदी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन भी समय समय पर किया जाता रहा है। जब वैज्ञानिक भाषा की बात की जाती है तो उससे अभिप्राय होता है किसी भाषा की उत्पत्ति, उसकी बनावट, संरचना, उसके व्याकरण की रूपरेखा। हिंदी भाषा हमारे सामने एक वैज्ञानिक भाषा के रूप में भी मौजूद है, हिन्दी के वैज्ञानिक स्वरूप का विकास भी काफ़ी पुराना है। हिंदी भाषा के विज्ञान को लेकर श्री प्रसाद ने कहा है - "हिंदी एक वैज्ञानिक भाषा है। यह जिस प्रकार बोली जाती है, उसी प्रकार लिखी जाती है। इसके उच्चारण व

लिखावट में जितनी समानता है, उतनी किसी अन्य भाषा में नहीं। इसमें अंग्रेजी व अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द भी घुल मिल गये हैं।" वैज्ञानिक होने से कोई भी भाषा अधिक सुसंगत और सटीक होती है।

डॉ. सत्य प्रकाश सरस्वती के अनुसार, "महान प्रश्नों के विषय में उत्सुकता ही वैज्ञानिक भावना है और यह जिज्ञासा की ओर ले जाती है।" किसी भी भाषा के वैज्ञानिक होने से उसका प्रभाव, महत्त्व एवं विश्वसनीयता बढ़ती है, उसका उपयोग हर क्षेत्र में आसानी से किया जा सके उसमें ऐसी सुगमता आ जाती है। जिससे उस भाषा में नई संभावनाएं भी बढ़ जाती है।

हिंदी भाषा में ये सभी गुण मौजूद हैं एवं अन्य भी बहुत सारे गुण है, जिसके कारण हिंदी भाषा में आज हर क्षेत्र के लिए अनेक संभावनाएं मौजूद है।

भाषा के बिना तथ्यों, भावों, विचारों को व्यक्त नहीं किया जा सकता। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है। भाषा दो रूप में होती है। प्राकृत भाषा (वह भाषा है जो स्वाभाविक रूप में होती है) और कृत्रिम भाषा (जिसको विज्ञान की भाषा कहते हैं।) किसी भी भाषा का वैज्ञानिक पक्ष जितना ही सुनिश्चित होता है, वह भाषा को उतना ही विश्वसनीय और व्यवस्थित बनाता है। इसलिए वैज्ञानिक भाषा के रुप में हिंदी भाषा का बदलता परिवेश नई संभावनाओं को अपने में समाहित किए हुए है।

बीते कुछ वर्षों में इंटरनेट, वैश्वीकरण के दौर ने, संचार में सूचना क्रांति प्रौद्योगिकी के विकास ने विश्व के अनेक देशों के बीच की दूरी को लगभग खत्म ही कर दिया है। आज फ़ोन एवं कम्प्यूटर पर सिर्फ़ एक क्लिक से हम देश के किसी कोने में बैठकर विश्व के किसी कोने की जानकारी बहुत ही आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। ऐसे में हिंदी भाषा का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। आज परिवार से लेकर समाज, समाज से राष्ट्र, राष्ट्र से संपूर्ण विश्व हर जगह विज्ञान है। ‘‘विज्ञान को घटनाओं के कारणों की खोज माना जा सकता है।’’ अभी तक विज्ञान के क्षेत्र में अंग्रेजी भाषा का ही वर्चस्व रहा है, लेकिन अब हिंदी भाषा भी इस क्षेत्र में आगे बढ़ रही है।

आज हिंदी भाषा में विज्ञान, प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में लेखन कार्य आरंभ हो चुका है। स्नातक, परास्नातक, उच्च शिक्षा के लिए भी विज्ञान, प्रौद्योगिकी में लेखन कार्य हो रहा है। जहां पहले हिंदी टाइप करने के लिए फॉन्ट उपलब्ध नहीं थे, आज मोबाइल, कंप्यूटर एवं प्रौद्योगिकी के अन्य साधनों में भी सरलता से हिंदी भाषा का प्रयोग हो रहा है। आज हिंदी भाषा में लगभग 350 पत्र पत्रिकाएं, विभिन्न शिक्षण संस्थानों में, शोध संस्थानों में प्रकाशित हो रहे हैं। विज्ञान के क्षेत्र में हिंदी भाषा का विकास और अधिक हो सके। उसके लिए हमें विज्ञान से जुड़े ऐसे विषयों को पाठक वर्ग के सामने रखना होगा, जिसमें रोचकता हो, लोकप्रियता हो, जिससे उनका ज्ञानवर्धन हो। इस तरह से हिंदी भाषा में और संभावनाएं बनेगी और हिंदी भाषा का अधिक विकास हो पायेगा।

आज कंप्यूटर ने बड़ी ही तेजी से हिंदी के नए परिवेश को विकसित किया है। इसमें नागरी (देवनागरी अक्षरों) को भी शामिल किया गया है। आज नागरी के फॉन्ट भी कंप्यूटर में मौजूद है जिससे हिंदी भाषा हर क्षेत्र में उपलब्ध हो गई है। विभिन्न क्षेत्रों में अब हिंदी टाइपिंग से जुड़ी जरूरतों को आसानी से पूरा किया जा रहा है।

अब हिंदी भाषा सोशल मीडिया, प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में, जनसंचार, सिनेमा में, वाणिज्य में, प्रशासन, विधि, सरकारी दफ्तरों में हर जगह आसानी से उपलब्ध है, फ़ोन एवं कंप्यूटर के माध्यम से बात करना, प्रिंट, टाइपिंग करना सब आसान हो गया है। आज हिंदी भाषा में अनेकों पुस्तकें छप रही है। आज दूसरी भाषाओं की पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद हो रहा है। हिंदी का पाठक वर्ग बढ़ रहा है।

आज हिंदी सिर्फ भारत तक ही सीमित नहीं है बल्कि हिंदी एक विश्व स्तर की भाषा बन गई है। आज हमारे प्रधानमंत्री यूएनओ में हिंदी में अपनी बात रखते हैं। हमारी हिंदी फिल्में आज पूरे विश्व में देखी जा रहीं हैं और कमाई के नए-नए रिकॉर्ड बना रहीं हैं। आज दूसरे देशों के लोग हिंदी भाषा सीख रहें हैं, भारत में आकर हिंदी भाषा पर अध्ययन कर रहें हैं, यानी हिंदी का विश्व में महत्त्व बढ़ रहा है। कहा जा सकता है कि आज हिंदी विश्व की भाषा बन गई है।

आज ई-कॉमर्स, ई-मेल, एसएमएस, ब्लॉगिंग आज हर क्षेत्र में हिंदी भाषा उपलब्ध है। हिंदी साहित्य से जुड़ी घटनाएँ, हिंदी का साहित्य, हिंदी की पाठ्य सामग्री सब आज इंटरनेट पर मौजूद है। सोशल मीडिया के माध्यम से हिंदी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन करने में सक्षम है। आज कुर्ती देव, मंगल फॉन्ट और यूनिकोड के प्रयोग से हिंदी भाषा आसानी से टाइप एवं प्रिंट करने के लिए उपलब्ध है। आज सोशल साइट व अन्य प्लेटफार्म पर हम आसानी से अपनी बात को हिंदी में लिख सकते हैं। आज हिंदी में ऑनलाइन पाठ्यक्रम कोचिंग लाइब्रेरी, एनसीईआरटी की सामग्री विभिन्न विषयों पर लेख सब हिंदी में मौजूद है। आज गूगल ट्रांसलेटर किसी भी भाषा को हिंदी में रूपांतरित करने में सक्षम है जिससे हमें किसी अन्य भाषा में कही गई बात को समझने के लिए किसी दूसरे व्यक्ति पर निर्भर नहीं होना पड़ता गूगल ट्रांसलेट के माध्यम से हम खुद जान सकते हैं कि सामने वाला व्यक्ति क्या कहना चाहता है। आज हम सिर्फ़ मुँह से कुछ भी बोलकर उसको हिंदी में टाइप कर सकते हैं। आज किसी भी भाषा का हिंदी में और हिंदी का किसी अन्य भाषा में अनुवाद करना बहुत आसान हो गया है।

अभी कुछ वर्षों पहले फोन या कंप्यूटर पर हिंदी टाइप करना एक बहुत ही बड़ी समस्या होती थी। आज सब कुछ बस कुछ मिनट में ही संभव हो गया है। आज तकनीक के प्रभाव के कारण इंजीनियरिंग, विज्ञान की पुस्तक, विधि की पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद होकर हमारे सामने उपलब्ध हैं। भारत की राजभाषा बनने के बाद हिंदी का महत्व इसकी उपयोगिता और अधिक बढ़ गई है। अब सरकारी कार्यों, विज्ञान टेक्नोलॉजी और प्रौद्योगिकी के कारण हिंदी के स्वरूप का विस्तार हुआ है। ऐसे में इन क्षेत्रों में भी हिंदी का विकास हुआ है। आज दूरसंचार, अंतरिक्ष विज्ञान, भौतिकी, शासन, रसायन शास्त्र में भी हिंदी भाषा मौजूद है। इन सभी में हिंदी भाषा की जरूरतों को पूरा करने के लिए तकनीकी शब्दावली के निर्माण की जरूरत महसूस हुई। जिसके कारण हिंदी की तकनीकी शब्दावली का निर्माण हुआ। इसके साथ साथ पत्रकारिता, प्रशासन, वाणिज्य, व्यवसाय आदि से जुड़ी पारिभाषिक शब्दावली तथा अनुवाद का पुनर्गठन एक जरूरत बनकर उभरा जिससे हिंदी का स्वरूप बदला और हमें हिंदी का वह रूप मिला जो आज हमारे सामने है।

संस्कृत के श्लोकों से होते हुए आज खड़ी बोली के रूप में मौजूद हिंदी हमारे देश की राजभाषा है एवं हिंदी को आदिकाल से लेकर आज वह जिस रूप में हमारे सामने मौजूद है, उसके लिए काफ़ी लंबा संघर्ष करना पड़ा है। चाहे वह आधुनिक काल में हिंदी और उर्दू का संघर्ष हो, चाहे हिंदी को राजभाषा के रूप में स्थापित करने का संघर्ष हो, यहाँ तक आने और हिंदी भाषा को अपने लिए संभावनाएं बनाने के लिए लंबा इंतज़ार और लगातार संघर्ष करना पड़ा है। आज विकासशील देश, विकसित देश बनना चाहते हैं, पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव पूरी दुनियाँ पर हावी है। होमी जहांगीर भाभा ने कहा है : "विज्ञान को समाज में जीवन्त और ऊर्जस्वी शक्ति के रूप में स्थापित करने की समस्या औद्योगिक रूप में अविकसित देश को विकसित देश में बदलने की समस्या का अविभाज्य अंग है।"

आज हम कह सकते हैं कि हिंदी भाषा जनसंचार, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष, पत्रकारिता, वाणिज्य ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहां हिंदी मौजूद नहीं है। आज शिक्षा विभाग, सरकारी दफ्तरों, बैंकों, अन्य संस्थाओं सभी में हिंदी भाषा में कार्य हो रहें हैं। आज हिंदी जिस स्थान पर मौजूद है, वहां आने में एक लंबा इंतजार व एक लंबा सफर तय

करना पड़ा है, तब जाकर हिंदी ने अपना वर्तमान स्वरूप प्राप्त किया है जो आज इतना लोकप्रिय हुआ है। हिंदी के महत्त्व और प्रभाव अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि प्रत्येक वर्ष 10 जनवरी को विश्व हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता है तो वहीं 14 सितंबर को हर वर्ष राष्ट्रीय हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता है।

आज समय के साथ हिंदी भाषा का परिवेश बहुत बदल गया है। हिंदी भाषा का यह बदला हुआ परिवेश, आज हिंदी भाषा की जरूरत है। हिंदी का यह परिवेश हिंदी की सभी ज़रूरतों को पूरा करने में सक्षम है। कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जहां हिंदी भाषा आज मजबूती के साथ मौजूद नहीं हैं। आज सभी जगह हिंदी के लिए संभावनाएं बनी है और लगातार बन भी रही हैं। आज का समय जिसमें वैश्वीकरण, आधुनिकता सभी पर हावी है। हर देश किसी न किसी तरीके से पूरी दुनियाँ पर, सभी देशों पर अपनी संस्कृति, भाषा, व्यापार के माध्यम से अपनी शिक्षा, खोज, विज्ञान के माध्यम से प्रभाव जमाना चाहते हैं। ऐसे में हमारी भी जिम्मेदारी बढ़ जाती है कि हम भी अपनी भाषा और अपनी संस्कृति पर गर्व करें। आज जहां पाश्चात्य सभ्यता सभी जगह हावी है, अंग्रेज़ी भाषा एक अलग ही स्तर पर लोकप्रिय है। ऐसे में हिंदी भाषा अपने स्वरूप को तभी बचाकर रख पायेगी। जब हम हिंदी भाषा के महत्त्व को समझेंगे और इसका गर्व के साथ प्रयोग करेंगे। आज हमारे सामने ऐसे बहुत से देशों के उदाहरण हैं जिन्होंने अपने देश की भाषा को प्राथमिकता दी है व अन्य भाषाओं जैसे अंग्रेज़ी के प्रभाव से अपने देश को बचाया है। अंग्रेज़ी या फ़िर किसी भी दूसरी भाषा को जानना, सीखना ग़लत नहीं हैं लेकिन अपनी भाषा को बोलने में शर्म महसूस करना व दूसरी भाषा को बोलने में गर्व करना यह स्थिति किसी भी देश के लिए सही नहीं हैं। आज हमारी हिंदी भाषा एक नए रूप में हमारे सामने है, अब हिंदी का स्वरूप बदला है आज की हिंदी नए ज़माने की हिंदी है। जिसमें सभी क्षेत्रों में प्रयोग होने वाले शब्द चाहे, चिकित्सा, विज्ञान, वाणिज्य, प्रशासन कुछ भी हो तकनीकी और परिभाषिक शब्दावली के माध्यम से हिंदी सभी की ज़रूरतों को पूरा करने में सक्षम है। आज हिंदी भाषा हमारे सामने अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम बनकर, भारत की राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित है। जिसपर हर हिंदी भाषी को गर्व होना चाहिए।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. रविन्द्रनाथ श्रीवास्तव, भाषाशिक्षण, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली
2. 'प्राचीन भारत की वैज्ञानिक भावना' में ग्रन्थ "आर्ष विज्ञान, पृ.-45
3. आधुनिक जीव विज्ञान, डॉ रमेश गुप्ता, पृ-116
4. वचन विचार, : संडे मेल (21 27 मार्च, 1993), पृ-2

ईमेल – Tiwarirajat765@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 170-173
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मुअनजोदड़ो : सभ्यता से संवाद का सफ़रनामा

अमित कुमार यादव
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी- 221005

यात्राओं से मनुष्य का हमेशा से जुड़ाव रहा है। समूची मानव सभ्यता हम देखें तो यायावरी ही रही है। तमाम सभ्यताओं और ज्ञान-विज्ञान की खोज का संबंध इन्हीं यात्राओं से जुड़ता है। कोलंबस से लेकर वास्कोडिगामा तक इसके जीवंत उदाहरण हैं। फाह्यान से लेकर ह्वेनसांग भी इसी यायावरी प्रवृत्ति के थे। समूची भारतीय ज्ञान परंपरा और जीवन-दर्शन का संबंध किसी न किसी रूप में यात्राओं पर आधारित रहा है। बुद्ध से लेकर गांधी तक यदि हम देखें तो इनके जीवन में यात्राओं का कितना महत्त्वपूर्ण योगदान है। क्योंकि किताबी ज्ञान से प्रत्यक्ष दर्शन हमेशा कारगर रहता है।

कुछ न कुछ करने के पीछे किसी न किसी कारण की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसी तरह लिखने के पीछे भी है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना कहते हैं कि-

'मैं जहाँ होता हूँ
वहाँ से चल पड़ता हूँ,
अक्सर एक व्यथा
यात्रा बन जाती है।'[1]

हम देखते हैं कि यात्रा वृत्तांत बीसवीं सदी के मध्य तक आते-आते हिंदी साहित्य की एक स्थापित विधा बन जाते हैं। देश और दुनिया का भ्रमण करने वाले तमाम लोगों ने वहाँ के बारे में कुछ न कुछ लिखा है। जिससे एक समूची परंपरा का परिचय प्राप्त होता है। तमाम ऐतिहासिक, पौराणिक और सांस्कृतिक प्रसंग इस विधा में हमें मिलते हैं।

सुप्रसिद्ध लेखक, आलोचक, संपादक एवं वरिष्ठ पत्रकार ओम थानवी द्वारा पाकिस्तान के सिंध प्रांकी यात्रा इस कड़ी में एक नया अध्याय जोड़ती है। उन्होंने 'मुअनजोदड़ो' नाम से अपनी इस यात्रा के समूचे वृत्तांत को बड़ी ख़ूबसूरती से दर्ज किया है। मुअनजोदड़ो दुनिया की सबसे प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। जिसका समय 2500 ईसा पूर्व ठहरता है। इसकी खोज 1922 ई. में भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के तत्कालीन महानिदेशक जॉन मार्शल के नेतृत्व में राखलदास बनर्जी ने की थी, यह भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के एक अधिकारी थे। मुअनजोदड़ो पाकिस्तान के सिंध प्रांत में स्थित है। इसका अर्थ 'मुर्दों का टीला' है।

ओम थानवी के इस वृत्तांत में पहले तो पाकिस्तान के कराची शहर से लाड़काणा तक बस यात्रा और उसके बाद लाड़काणा से 28 किलोमीटर का खेतों के बीच से होकर जाने वाला रास्ता। इस यात्रा वृत्तान्त में सिर्फ़ यात्रा का

वर्णन नहीं है, इसके साथ-साथ एक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक और राजनैतिक परिदृश्य का भी वर्णन मिलता है। पाकिस्तान का सिंध प्रांत ऐसा है जिसे सूफियों की विरासत माना जाता है। सबसे ज़्यादा हिंदू आज भी वहीं रहते हैं। इस शहर के बारे में ओम थानवी की यात्रा के साथी नासिर ख़ान बताते हैं कि, "पाकिस्तान में सबसे ज़्यादा हिन्दू-कोई पचीस लाख-सिन्ध में रहते हैं। बँटवारे से पहले यह तादाद ज़्यादा थी। यह बात इसलिए अहम है कि पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में मुस्लिम राज सबसे पहले सिन्ध में क़ायम हुआ, इस्लाम की स्थापना के थोड़े ही समय बाद। सत्तरह साल के अरब शहज़ादे मोहम्मद बिन क़ासिम ने सन 711 में सिंध के राजा दाहिर पर धावा बोला था। बाद में इलाक़े पर बगदाद के ख़लीफ़ाओं ने राज किया। उन्नीसवीं सदी तक मुग़लों समेत सात राजवंश यहाँ अपनी धाक जमा चुके थे। मगर हिन्दू-मुस्लिम फसाद यहाँ कभी नहीं हुए। बँटवारे के वक़्त भी नहीं।"[2]

ऐसा है सिंध प्रांत, जो अपनी जड़ों से तब तक नहीं कटे थे। अब आज की स्थिति क्या है यह कहना मुश्किल है। हम इसी सिंध प्रांत में स्थित मुअनजोदड़ो जिसे ओम थानवी ख़ुद 'सभ्यता के सबसे बड़े तीर्थस्थल' की संज्ञा देते हैं। इसी तीर्थयात्रा का वर्णन यात्रावृत्तांत में मिलता है। मुअनजोदड़ो के विषय में प्रसिद्ध है कि "सौ साल पहले भारत का दुनिया में महज़ दावा था कि उसकी सभ्यता प्राचीन है। बीसवीं सदी की देहरी पर मुअनजोदड़ो की खुदाई ने पहले हड़प्पा-कालीबंगा में हो चुकी खुदाई को समान रोशनी में देखा। और अन्ततः उस खोज ने सिंधु घाटी को मिस्र और मेसोपोटामिया (इराक़) की सुमेरी सभ्यता के समकक्ष ला खड़ा किया।

जाहिर है, वह मुअनजोदड़ो ही था जिसने सबसे पहले भारत के इतिहास को पुरातत्त्व का वैज्ञानिक आधार दिया। मुअनजोदड़ो रवाना होने से पहले कराची में मैंने जो पर्यटक गाइड ख़रीदी थी, उसमें दर्ज थाः 'जब यूरोप के लोग जानवरों की खाल ओढ़ा करते थे और अमेरिका महज आदिम जातियों का इलाक़ा था, यहाँ (सिंधु घाटी) के लोग धरती पर एक अत्यन्त परिष्कृत समाज का हिस्सा थे... और नगर निर्माण में सबसे आगे।'..."[3]

ओम थानवी लिखते हैं कि, "मुअनजोदड़ो के खंडहर 1924 में दुनिया के सामने आए। इनकी खुदाई का श्रेय जॉन मार्शल को दिया जाता है। वे पूरे बत्तीस बरस भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के महानिदेशक रहे। उन्होंने अपने सहयोगियों का हौसला बढ़ाया, उन्हें दिशा दी। खोज की व्याख्या कुछ उलझे सूत्रों को जोड़ा। उन्होंने स्थापित किया कि सिंधु घाटी पूरी तरह भारत में पनपी और पली-पुसी संस्कृति थी।"[4]

यह हमारी दुनिया की सबसे प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक मुअनजोदड़ो का संक्षिप्त इतिहास था, जिसकी खुदाई ने रातों-रात हिंदुस्तान को चर्चा में लाकर उसे दुनिया में एक अलग पहचान के रूप स्थापित किया। मुअनजोदड़ो की खुदाई से बड़ी संख्या में इमारतें, सड़कें, धातु-पत्थर की मूर्तियाँ, चाक पर बने चित्रित भाण्ड, मुहरें, साजो-सामान और खिलौने आदि मिले हैं। इसके व्यापक स्वरूप के मद्देनज़र ओम थानवी लिखते भी हैं कि "मुअनजोदड़ो के बारे में धारणा है कि अपने दौर में वह घाटी की सभ्यता का केंद्र रहा होगा। यानी एक तरह की राजधानी। माना जाता है यह शहर दो सौ हैक्टर क्षेत्र में फैला था। आबादी कोई पचासी हज़ार थी। ज़ाहिर है, पाँच हज़ार साल पहले यह आज के 'महानगर' की परिभाषा को भी लाँघता होगा।"[5]

मुअनजोदड़ो के बारे में यह कहा जाता है कि यह एक खेतिहर और पशुपालक सभ्यता थी। यह अपने समय की एक विशाल एवं सुसंस्कृत सभ्यता थी, जिसका समय वैदिक काल से बहुत पहले ठहरता है। हालांकि इस पर विद्वानों में बहुत मतभेद भी हैं। लेकिन इस सभ्यता का संबंध आदिम सभ्यताओं से ठहरता है, यह एक विकसित सभ्यता थी, इस पर लगभग लोग सहमत हैं। इसके बारे में कहा जाता है कि, "वह कोई खंडहर क्यों न हो, किसी घर की देहरी पर पाँव रख कर सहसा सहम जा सकते हैं, जैसे भीतर कोई अब भी रहता हो। रसोई की खिड़की पर खड़े होकर उसकी गन्ध महसूस कर सकते हैं। शहर के किसी सुनसान मार्ग पर कान देकर उस बैलगाड़ी की रुन-झुन भी सुन सकते हैं जिसे आपने पुरातत्त्व की तस्वीरों में मिट्टी के रंग में देखा है। यह सच है कि किसी आँगन की टूटी-फूटी सीढ़ियाँ अब आपको कहीं ले नहीं जातीं; वे आकाश की तरफ़ जाकर अधूरी ही रह जाती हैं। लेकिन उन अधूरे

पायदानों पर खड़े होकर अनुभव किया जा सकता है कि आप दुनिया की छत पर खड़े हैं; वहाँ से आप इतिहास को नहीं, उसके पार झाँक रहे हैं।"[6]

इस स्थल का वर्णन करते हुए ओम थानवी ने लिखा है, "ढँकी हुई नालियाँ मुख्य सड़क के दोनों तरफ़ समांतर दिखाई देती हैं। बस्ती के भीतर भी इनका यही रूप है। हर घर में एक स्नानघर है। घरों के भीतर से पानी या मैले की नालियाँ बाहर हौदी तक आती हैं और फिर नालियों के जाल से जुड़ जाती हैं। कहीं-कहीं वे खुली हैं, पर ज़्यादातर बन्द हैं। स्वास्थ्य के प्रति मुअनजोदड़ो वासियों के सरोकार की यह उम्दा मिसाल है। अमर्त्य सेन कहते हैं कि मुअनजोदड़ो के चार हजार साल बाद तक अवजल-निकासी की ऐसी व्यवस्था देखने में नहीं आई। बस्ती के भीतर छोटी सड़कें हैं। उनसे छोटी गलियाँ भी। छोटी सड़कें नौ से बारह फुट तक चौड़ी हैं। इमारतों से पहले जो चीज़ दूर से ध्यान खींचती है, वह है कुओं का प्रबन्ध। ये कुएँ भी एक ही आकार की पकी हुई ईंटों से बने हैं। इरफ़ान हबीब कहते हैं, सिंधु घाटी सभ्यता संसार में पहली ज्ञात संस्कृति है, जो कुएँ खोद कर भू-जल तक पहुँची। उनके मुताबिक़ केवल मुअनजोदड़ो में सात सौ के क़रीब कुएँ थे। बड़े व्यापारियों और किसानों के आँगन में शायद अपने कुएँ रहे होंगे।"[7]

कुछ विद्वान इस सभ्यता को जल संस्कृति से जोड़कर देखने की भी बात करते हैं। क्योंकि नदी, कुएं कुंड और बेजोड़ जल निकासी के पर्याप्त उदाहरण यहाँ की खुदाई से मिले हैं। इस सभ्यता के निर्माण से लेकर उजड़ने तक तमाम मत और मतांतर आज भी मौजूद हैं। सबसे बड़ा विवाद इस सभ्यता को वैदिक सभ्यता से प्राचीन और अर्वाचीन ठहराने की होड़ है। कुछ वैदिक तो हर चीज़ को वेद से ही जोड़कर देखते हैं। लेकिन इतिहास को तथ्यों की ज़रूरत होती है। बिना तथ्य के कपोल-कल्पना तो कुछ भी की जा सकती है। वैदिक संस्कृति और सिंधु सभ्यता के बीच संबंध को लेकर तमाम क़यास लगाये जाते रहे हैं।

"क्या दोनों में कोई सीधा सम्बन्ध है? क्या आर्य 'आक्रान्ता' थे जिन्होंने हड़प्पा संस्कृति चौपट कर दी? या सिंधुवासी द्रविड़ थे जिन्हें आर्यों ने दक्षिण में धकेल दिया? सिंधु घाटी के उजड़ने और वैदिक संस्कृति के स्थापित होने में कितना फ़ासला है? या नव-स्थापित आर्य संस्कृति ने लुप्त हड़प्पा संस्कृति के बचे तत्त्वों को संक्रमण की सहज प्रक्रिया में धीमे-धीमे आत्मसात कर लिया? या धीमे-धीमे क्षय हो रही हड़प्पा सभ्यता ने वैदिक संस्कृति को आत्मसात कर लिया और जो ऐसा नहीं कर सके वे दूर चले गए ? शायद ऐसे सवालों के मद्देनज़र ही रोमिला थापर ने इस मुद्दे को भास्तीय इतिहास की सबसे पेचीदा समस्या क़रार दिया है।" [8]

इस संदर्भ में ओम थानवी कहते हैं कि, "समस्या पेचीदा है और कुछ ख़तरनाक भी । ख़तरनाक इस मायने में कि हमारे यहाँ संकीर्ण हिन्दुत्ववादी कुछ समय से हिन्दू धर्म की स्थापना करने वाली वैदिक संस्कृति को जबरन हड़प्पा युग में स्थापित करने की कोशिश में हैं। वे इस विवेचन से जो अभी अपुष्ट है-परेशान हैं कि आर्य बाहर से आए। उधर जॉन मार्शल से लेकर इरफ़ान हबीब तक-यानी पुरातत्त्ववेत्ता ही नहीं आधुनिक इतिहासकार भी-सिंधु सभ्यता का उद्गम मोटे तौर पर देशज मानते हैं। ऐसे में वैदिक संस्कृति को देशज तभी ठहराया जा सकता है जब उसे सिंधु सभ्यता से जोड़ा जाए। मुस्लिम और ईसाई समाज को बाहर का बताकर आँखें दिखाने वालों के लिए शायद यह और ज़रूरी है। लेकिन उनकी मुश्किलें बढ़ गई हैं क्योंकि ऋग्वेद को, नई पुरातात्त्विक खोज के बाद, नौ हज़ार साल पीछे नहीं ले जाया जा सकता। सिंधु सभ्यता का आरम्भिक चरण 7000 ई. पू. माना जाता है। उसका प्रौढ़ युग 2600 ई. पू. से 1900 ई. पू. तक रहा। जबकि वेदों का रचना-काल 1500 ई. पू. के आसपास माना जाता है।"[9]

कई साहित्यकार भी जब इस दौड़ में अंधाधुंध दौड़ रहे हैं तो स्थिति थोड़ी और पेचीदा हो जाती है। क्योंकि भावनाओं और कपोल-कल्पना से कुछ भी सिद्ध कर दिया जाए लेकिन वह इतिहास नहीं हो सकता। इतिहास के लिए पुरातत्त्व अपना एक अलग स्थान रखता है। उसे सबूत और तथ्य चाहिए। ओम थानवी कहते हैं कि, "कहने का सबब यह है कि साहित्य के वर्णनों की मदद से ऐतिहासिक स्थापनाओं में न लेखक कामयाब हो सकते हैं, न

इतिहासकार और न ही पुरातत्त्ववेत्ता । इतिहास की गाड़ी को कल्पना के घोड़े लगाकर दलदल में ही फँसाया जा सकता है।"[10]

मुअनजोदड़ो पर एक लंबी बहस अभी तक जारी है। लेकिन यह वैदिक सभ्यता से प्राचीन या आधुनिक है कि नहीं है इससे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह सभ्यता खेतिहर और पशुपालकों की थी। इसकी खुदाई से प्राप्त अवशेष और जहाँ एक ओर विकसित नगर नियोजन और इसकी समृद्धि के द्योतक हैं, साथ ही इसे एक श्रेष्ठ और सुसंस्कृत सभ्यता सिद्ध करते हैं। यहाँ बड़ी मात्रा में फसले होती थीं। इसका क्षेत्रफल भी विशाल था। इसके उजड़ने का कारण बाढ़ रही हो या सूखा या इस पर बाह्य आक्रमण, लेकिन इन सबसे ज़रूरी बात है इसकी बनावट और इसमें प्राप्त अवशेष जो भारतीय उपमहाद्वीप को दुनिया में एक अलग पायदान पर प्रतिष्ठित करते हैं।

संदर्भ :-

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, प्रतिनिधि कविताएं- पृष्ठ-15,राजकमल, प्रकाशन- 1989
2. ओम थनवी, मुअनजोदड़ो, पृष्ठ-23, वाणी प्रकाशन ,2011
3. वही , पृष्ठ-38
4. वही , पृष्ठ-45
5. वही , पृष्ठ-49
6. वही, पृष्ठ-50
7. वही , पृष्ठ-63
8. वही , पृष्ठ- 83
9. वही , पृष्ठ-84
10. वही , पृष्ठ-104

ईमेल- amitrsjnu@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 174-176
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

इक्कीसवीं सदी के प्रमुख उपन्यासों में किन्नर जीवन की त्रासदी

डॉ. राहुल सैनी
शोधार्थी,
हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

त्रासदी का सार संघर्ष है, सही और गलत के बीच नैतिक संघर्ष नहीं, बल्कि वैध अधिकारों और संस्थानों के बीच संघर्ष है। इस तरह का संघर्ष नैतिक जीवन के अचल मानदंडों और संस्थानों को हिला देता है, जिससे उनके विनाश का खतरा होता है। इस तरह का संघर्ष दुखद नायक की झूठी चेतना से उत्पन्न होता है, जो अपनी स्वयं की सत्यता के प्रति आश्वस्त होकर, इच्छाशक्ति की जिद्दी स्थिरता का प्रतीक है जो एकतरफा कार्यवाई में जारी होता है जो एक और वैध अधिकार का उल्लंघन करता है और नायक को आत्म-विरोधाभास में डुबो देता है। वह यह मानने से इंकार करता है कि, यदि वह स्वयं के प्रति सज्जा है, तो उसे किस बात का सम्मान करना चाहिए। त्रासदी का सम्बन्ध दुःख से है, किन्तु वह केवल दुःख की कथा नहीं हैं। उस दुःख के साथ कुछ ऐसे प्रसंग जुड़े होते हैं, जिसका आभास नायक को स्वप्र में भी नहीं होता है। त्रासदी मूलतः नाटक की एक शैली है। जिसमें मानवीय दुःखों का विरेचन करना होता है। इस तरह नाटकों का उद्देश्य दर्शकों के भावों का विरेचन करना होता है। कालांतर में त्रासदी शब्द का अर्थ विस्तार हुआ। साहित्य के कई दूसरे अंगों ने भी त्रासदी को अपनाया है।

हिंदी साहित्य के उपन्यासों में त्रासदी का यथार्थ चित्रण देखा जा सकता है। किन्नर समुदाय से सम्बन्धित हिंदी उपन्यासों में किन्नरों की त्रासदी मानव मन को झकझोर देती है। उपन्यास विधा के माध्यम से उनकी दयनीय त्रासद स्थिति का चित्रण किया गया है।

मंगलामुखी को समाज द्वारा उपेक्षा एवं तिरस्कार के अलावा कुछ नहीं मिला। इसी सभ्य समाज ने उनको हाशिए पर धकेल दिया। समाज के साथ-साथ परिवार भी उन्हें अपनेसे पृथक रखना चाहते है या किन्नर बजे से कोई रिश्ता नहीं रखना चाहते है। उनका किर होने का एहसास सर्वप्रथम उनके परिवार द्वारा कराया जाता है। शरद सिंह द्वारा संपादित पुस्तक 'थर्ड जेंडर विमर्श' में उल्लेखित है कि- "आज थर्ड जेंडर एक साहित्यिक विमर्श के रूप में हमारे सामने है, किन्तु इस विमर्श को खड़े होने में भी लगभग डेढ़ दशक से अधिक समय लग गया। सन 2002 में नीरजा माधव का उपन्यास आया 'यमदीप' जो बर्ड जेंडर के जीवन पर केंदित था।"1

हिन्दी साहित्य में उपन्यास के माध्यम से नीरजा माधव जी ने किन्नर विमर्श को साहित्य में उकेरा। यमदीप के माध्यम से किन्नरों की दयनीय स्थिति का यथार्थ रूप में चित्रण किया गया है।

सम्मेलन पत्रिका में उल्लिखित है कि "यमदीप उपन्यास में समाज के हर तबके का प्रतिबिम्ब पथार्थ रूप में 26 खंडों में विन्यस्त है। जिसमें नंदरानी से नाजबीवी तक की व्यथा कथा हृदय द्रावक है। "2

प्रसवावस्था में एक विकसित स्त्री की मृत्यु हो जाती है। नाजबीवी मृत पगली की लड़की वहां उपस्थित लोगों को देना चाहती है। परंतु कोई भी तैयार नहीं होता है। मानवीय संवेदना यहां तक मर जाती है किंतु किन्नर, जिनको समाज ने निकाल दिया है। वही हमारे समाज की नाजायज बच्ची को पालते हैं। समाज के द्वारा किए गए कुकृत्यों को अपने आंगन में जगह देते हैं।

उपन्यासकार लिखती है कि- "अब कोई पूछनहार नहीं इसका तो क्या हम भी छोड़ जाएंगे ? अरे हम हिजड़े है, हिजड़े. ..... इनसान है क्या जो मुंह फेर ले।"3

'मैं भी औरत हूँ' उपन्यास की पात्र रोशनी का बलात्कार करने के लिए कुछ युवक पकड़ लेते हैं। किन्तु उन्हें जब यह पता चलता है कि यह किन्नर है तो वह रोशनी को उसी स्थिति में छोड़कर भाग जाते हैं।

उपन्यासकार लिखती हैं कि- "दूर खड़े हुए लड़के दौड़कर आए और बोले अरे सुरेश... हो गया, मजा आ गया। - खाक मजा आ गया, यह साली वो हिजड़ा है।

हिजड़ा..... बाकी चार के मुँह से एक साथ निकला। हां भाई हिजड़ा ही है। हमन बेकार अपना समय बर्बाद किया, चलो यहां से।"[4]

इस घटना के माध्यम से लेखिका ने ग्रामों में शौचालय की व्यवस्था न होने के कारण इसके दुष्परिणामों की ओर इंगित किया है देश में हो रहे यौन शोषण का यथार्थ चित्रण किया गया है।

तीसरी ताली' उपन्यास के केन्द्र में स्त्री पुरुष से इतर तीसरी योनि के लोगों की ऐसी दुनिया है, जो समाज के हाशिए पर जिन्दगी व्यतीत करती, हर शहर में कुछ न कुछ मौजूद है। जेंडर स्पष्ट ने होने के कारण समाज से बहिष्कृत दण्डित ये लोग अपनी पहचान के लिए संघर्षरत है। 'थर्ड जेंडर अतीत और वर्तमान' पुस्तक में उल्लिखित है कि- "तीसरी ताली की थाप पर नाच गा कर खुशियां बांटने वाले किन्नरों के त्रासद जीवन का अजीबों गरीब सच यह है कि बच्चा न जन सकने वाले किन्नर, हमारे बच्चों पर पड़ने वाले काले साये से उन्हें दूर रहने का आशीर्वाद देते हैं।"[5]

किन्नरों का आगमन हमारे घरों में शुभ माना जाता है, किंतु हमारा समाज जन्म के पश्चात उन्हे अशुभ की तरह उपेक्षित अपमानित जीवन जीने के लिए छोड़ देते है। 'तीसरी ताली' ऐसी ही लोगों की कथा है। किन्नरों के साथ इसमें समलैंगिकों की जिंदगी को केंद्र में रखकर लेखक ने समाज के विविध रूप प्रस्तुत किए हैं।

आज का मनुष्य जितना निर्दयी, कठोर, असंतोषी है, वहीं किन्नर दया, ममता, क्षमा की प्रतिमूर्ति है, लेकिन आज भी किन्नर समाज अपनी बदहाली पर खून के आंसू रो रहा है। वे आज भी शिक्षा, रोजगार और सम्मान पाने के लिए छटपटा रहे है। किन्नर शब्द एक गाली सा लगता है। महेन्द्र भीष्म अपने उपन्यास 'किन्नर कथा' में लिखते हैं कि- "वे हमारी तरह अपनी माँ की कोख से जन्मे अपने पिता की सन्तान हैं। वे ज्यादा नहीं मांग रहे, 'हमें हिजड़ा नहीं इन्सान समझा जाए। बस इतनी सी माँग है, उनकी कि वे समाज की मुख्य धारा से जुड़ना चाहते हैं। "[6]

चित्रा मुद्गल 'नाला सोपारा' में किन्नर वर्ग की उपस्थिति को उसकी व्यवहारिकता एवं उसकी भावनात्मक समस्याओं को प्रर्याप्त संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत करती है। विन्नी उर्फ विनोद उपन्यास का मुख्य पात्र उपन्यास का

कथानक विनोद के इर्द गिर्द चलता रहता है। विनोद अपनी 'बा' को सम्बोधित करके कहता है कि - "जिस नरक में तूने और पप्पा ने धकेला है मुझे, वह एक अन्धा कुआ है जिसमें सिर्फ सांप बिच्छू रहते हैं। सांप बिच्छू बनकर हम पैदा नहीं ुए होगे। बस, इस कुए ने उन्हें आदमी नहीं रहने दिया।"[7]

'नाला सोपारा' मुम्बई के एक सम्पन्न परिवार के बच्चे विनोद की कहानी है जो जन्म से ही लैंगिक विकलांग है। मां वन्दना विनोद की शारीरिक विकृति के कारण उससे अधिक मोहविष्ट रहती है। विनोद भी अपनी माँ को बहुत स्नेह करता है। वह मां को पत्र लिखकर हाल-चाल पूछता रहता है। यह उपन्यास पूर्ण रुप से पत्रात्मक शैली में लिखा गया है। प्रमुख उपन्यासों के माध्यम से यह देखा जा सकता है कि किन्नर जीवन बहुत ही दयनीय होता है।

शिक्षा की कमी, अन्य व्यवसाय में जुड़ने के सीमित अवसर, आर्थिक तंगी व परिवार का भावनात्मक लगाव न होना ही अधिकांश किन्नरों को यौनकर्म की ओर ले जाता है। लोगों की विचार धारा में यह बैठ गया है कि सभी किन्नर यौन कर्मी होते हैं, जो यथार्थ रूप में सत्य नहीं है। यही कारण है कि उनको समाज ने नकारात्मक दृष्टिकोण से देखा जाता है। समाज में इनको अवांछित माना जाता है। समाज को इन्हें देखने, समझने व परखने के लिए पूर्वाग्रहों से मुक्त होना पड़ेगा, जो अलीलता का चश्मा लगाकर इनके बारे में सोचते है है देखते सुनते हैं वह उतारना होगा।

इस्लाम धर्म की अपेक्षा हिन्दू धर्म व उसके सहयोगी धर्म यथा बौद्ध, सिक्ख, जैन आदि धर्मों में इन्हें काफी सम्मान प्राप्त है। वे लोग इनका आशीर्वाद वा मंगलकामना पाने के आकांक्षा रखते हैं। मानवाधिकार संगठनों की मांग पर विश्व के कई देशों में कहने के लिए कानून बनाए जा रहे हैं। सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने का भरपूर प्रयास किया जा रहा है। इन सबसे किन्नरों का त्रासदी पूर्ण जीवन जीने से मुक्ति मिल सकती है।

संदर्भ :-

1. सं. शरद सिंह, बर्ड जेडर विमर्श, सामयिक पेपर बैक्स, नई दिल्ली, संस्करण 2019, पृष्ठ संख्या-12
2. सम्मेलन पत्रिका, इलाहाबाद, प्रकाशक, विभूति मित्र, पौष-चैत्र संकलन, पृष्ठ संख्या- 134
3. नीरजा माधव, यमदीप, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2017, पृष्ठ संख्या-12
4. अनुसूया त्यागी, मैं भी औरत हूं, परमेश्वरी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 10
5. सं. डॉ. एम. फिरोज खान, थर्ड जेंडर अतीत और वर्तमान, विकास प्रकाशन कानपुर, पृष्ठ संख्या-50
6. महेंद्र भीष्म, किन्नर कथा, सामयिक पेपर बैक्स प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2011, पृष्ठ संख्या 81
7. चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नंबर– 203 नालासोपारा, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 11

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 177-185
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शैक्षिक सुविधाओं में वृद्धि एवं जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना में सहसम्बन्ध: अलवर जिले का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

नीतू चौधरी
शोधार्थी भूगोल विभाग,
डॉ. विजय कुमार वर्मा
शोध निर्देशक,
राजऋषि भृतहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर (राज.)

शोध सारांश-

प्रस्तुत शोधपत्र में अलवर जिले में वर्ष 2001 से 2011 के मध्य कार्यशील जनसंख्या में हुई वृद्धि और वर्ष 2005-06 से वर्ष 2015-16 तक विद्यालयों की संख्या में हुई वृद्धि के मध्य सम्बन्ध को ज्ञात करने का प्रयास किया गया है। जिसका उद्देश्य यह जानना है, कि क्या अध्ययन क्षेत्र में विगत एक दशक में विद्यालयों की संख्या में हुई वृद्धि का प्रभाव जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना पर पड़ा है अथवा नहीं। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है, कि अध्ययन क्षेत्र में विद्यालयों की संख्या में वृद्धि और कार्यशील जनसंख्या में वृद्धि के मध्य आंशिक सकारात्मक सम्बन्ध है। अर्थात अध्ययन क्षेत्र में विद्यालयों की संख्या में वृद्धि होने से कार्यशील जनसंख्या में आंशिक वृद्धि होगी। अध्ययन क्षेत्र में कार्यशील जनसंख्या में वृद्धि के लिए अनेक कारक उत्तरदायी हैं, जिसमें सरकार की रोजगार सम्बन्धी नीतियाँ, जनसंख्या में कौशल का स्तर, आर्थिक क्रियाओं का स्तर, बाजार में श्रम की मांग और पूर्ति की स्थिति है। इसके पश्चात भी शैक्षिक सुविधाएँ कार्यशील जनसंख्या में वृद्धि में परोक्ष रूप से सहायक हैं।

शब्द कुंजी- शैक्षिक विकास, जनसंख्या की कार्यशील जनसंख्या, कौशल विकास और मानव संसाधन प्रबन्धन।

परिचय-

प्राय: यह माना जाता है कि जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना का सम्बन्ध समाज में शिक्षा और कौशल के स्तर से है। समाज में शिक्षा और कौशल को बढ़ावा देने के लिए शैक्षिक सुविधाओं में वृद्धि अपेक्षित है। वास्तव में, शैक्षिक सुविधाओं में वृद्धि के परिणामस्वरूप जहाँ एक ओर जनसंख्या की कार्य क्षमता में वृद्धि

होती है, वही दूसरी ओर शैक्षिक सुविधाओं के विकास के कारण जनसंख्या में कौशल का विकास होता है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति उत्पादन प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेकर अर्थव्यवस्था में अपना अपेक्षित योगदान देता है। शोधकर्ता द्वारा प्रस्तुत शोधपत्र में अलवर जिले में वर्ष 2001 से 2011 के मध्य कार्यशील जनसंख्या में हुई वृद्धि और वर्ष 2005-06 से वर्ष 2015-16 तक विद्यालयों की संख्या में हुई वृद्धि के मध्य सम्बन्ध ज्ञात करने का प्रयास किया गया है। जिसका ध्येय यह स्थापित करना है, कि क्या अध्ययन क्षेत्र में विगत एक दशक में विद्यालयों की संख्या में हुई वृद्धि का प्रभाव जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना पर पड़ा है अथवा नहीं।

अध्ययन क्षेत्र

भौतिक दृष्टि से अलवर जिला उत्तरी अरावली पर्वतीय प्रदेश में अवस्थित है, वहीं प्रशासनिक दृष्टि से यह जिला भारत के पश्चिम में अवस्थित राजस्थान राज्य के उत्तर-पूर्वी भाग में स्थित है। अलवर जिला 27° 4' उत्तरी अक्षांश से 28° 4' उत्तरी अक्षांश तथा 76° 7' पूर्वी से 77° 13' पूर्वी देशान्तर के मध्य विस्तारित है। अलवर जिले का उत्तर से दक्षिणी विस्तार 137 कि.मी. और पूर्व से पश्चिमी दिशा में 110 कि.मी. है। जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 8380 वर्ग कि.मी. है, जो राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 3,42,239 वर्ग कि.मी. का 2.45 प्रतिशत भाग है। इसकी समुद्र तल से समांतर माध्य ऊँचाई 271 मीटर (889 फीट) है। जिले के अधिकांश क्षेत्र पर अरावली की पहाड़ियों का विस्तार है। ये पहाड़ियाँ थानागाजी, राजगढ़ तहसीलों में अधिक विस्तारित है। जिले में साबी, रूपारेल, चुहडसिद्ध आदि प्रमुख मौसमी नदियाँ प्रवाहित होती हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार अलवर जिले की कुल जनसंख्या 36,74,179 है, जिसमें 1939026 पुरुष एवं 1735153 स्त्रियाँ है। इसी प्रकार यहाँ अनुसूचित जाति एवं जनजाति की जनसंख्या क्रमशः 653036 व 289249 अर्थात् 17.77 प्रतिशत व 7.87 प्रतिशत है।

साहित्य पुनरावलोकन

Lutz, W., & Goujon, A. (2003).[1] ने अपने अध्ययन "The World's Changing Human Capital Stock: Multi-State Population Projections by Educational Attainment" में यह स्पष्ट रूप से माना है, कि वर्तमान समय में जिस प्रकार मानव को एक संसाधन के रूप में देखा जा रहा है, उसके कारण उसकी कुशलता में अत्यधिक वृद्धि हुई है। शोधकर्ता के अनुसार जिन देशों ने अपने मानव संसाधन को अधिक प्रबंधित और विकसित किया है, उन देशों की अर्थव्यवस्था तुलनात्मक रूप से अधिक सुदृढ़ और विकासोन्मुखी है।

Lutz, W. (2009).[2] अपने शोध "The Demography of Future Global Population Aging: Indicators, Uncertainty, and Educational Composition." में उल्लिखित किया है, कि विश्व में जिस प्रकार जनसंख्या के आकार में वृद्धि हो रही है, उसे रोजगार देने के लिए बड़े शैक्षिक सुधार की आवश्यकता है। साथ ही इस बढ़ती हुई जनसंख्या को कौशल प्रदान कर उसे निर्माण प्रक्रिया में भागीदार बनाना आवश्यक है।

Loichinger, E., & Prskawetz, A. (2017).[3] ने अपने अध्ययन "Changes in economic activity: The role of age and education." में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया है, कि वर्तमान में जिस प्रकार आर्थिक क्रियाओं में परिवर्तन देखने को मिल रहा है, उसका प्रमुख कारण शिक्षा और आयु संरचना है।

शिक्षा के कारण श्रमिकों की कुशलता में वृद्धि हुई है, जिसके फलस्वरूप निर्माण प्रक्रिया में वृद्धि परिलक्षित हुई है, जिसका स्पष्ट प्रभाव स्थानीय अर्थव्यवस्था पर पड़ा है।

Prskawetz, A., & Hammer, B. (2018)[4] ने अपने अध्ययन "Does education matter? – economic dependency ratios by education." में यह उल्लिखित किया है, कि वर्तमान में जिस प्रकार डिजिटल क्रांति के कारण रोजगार के अवसरों में कमी आई है, उसके परिणामस्वरूप विश्व में बेरोजगारी की स्थिति अत्यधिक भयावह हो गई है। अतः यहाँ शोधकर्ता यह अनुशंसा करता है, कि युवाओं को अधिक से अधिक कुशल बनाया जाए, जिससे उनकी मांग में वृद्धि हो एवं बेरोजगारी की स्थिति को नियंत्रित किया जा सके।

Vézina, S., & Bélanger, A. (2019)[5] ने अपने शोध पत्र "Impacts of education and immigration on the size and skills of the future workforce." में यह माना है, कि हाल के वर्षों में जिस प्रकार विश्व में शैक्षिक सुविधाओं में वृद्धि हुई है, उसके कारण युवाओं के कौशल में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है और यही कारण है, कि अधिक कुशल युवा अपेक्षाकृत अधिक आय वाले कार्यों में नियोजित होने का प्रयास करता है, जिसके परिणामस्वरूप वह विश्व की विकसित अर्थव्यवस्थाओं की ओर पलायन करना आरंभ कर देता है।

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोधकार्य के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं:

1. अध्ययन क्षेत्र में विगत दो जनगणनाओं के दौरान कार्यशील जनसंख्या में हुई वृद्धि और वर्ष 2005-06 से 2015-16 के मध्य विद्यालयों की संख्या में हुई वृद्धि के बीच सहसम्बन्ध का विश्लेषण करना।
2. यह समझना कि अध्ययन क्षेत्र में विद्यालयों की संख्या में वृद्धि का कार्यशील जनसंख्या पर क्या परिवर्तनात्मक प्रभाव पड़ता है।

शोध परिकल्पना

इस शोध कार्य हेतु शोधकर्ता द्वारा अपनी परिकल्पना में यह माना गया है, कि अलवर जिले में संदर्भित अवधि में कार्यशील जनसंख्या में वृद्धि ओर विद्यालयों की संख्या में हुई वृद्धि के मध्य सहसम्बन्ध है।

सीमाएं

शैक्षिक सुविधाओं का आयाम अत्यधिक व्यापक है, किन्तु यहाँ शैक्षिक सुविधाओं के तहत केवल विद्यालयों की संख्या को सम्मिलित किया गया है।

शोध प्रविधि-

यह शोधपत्र द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है, जिन्हें भारतीय जनगणना की विभागीय वेबसाइट और जिला आर्थिक समीक्षा, जिला अलवर से संकलित किया गया है। शोधकर्ता द्वारा अपनी परिकल्पना की सत्यता की जांच के लिए कार्ल पियर्सन के सहसम्बन्ध गुणांक का उपयोग किया गया है। सहसम्बन्ध गुणांक को ज्ञात करने के लिए जहाँ शोधकर्ता द्वारा स्वतंत्र चर (X-variable) के रूप में वर्ष 2005-06 और 2015-16 के मध्य अलवर जिले में अवस्थित विद्यालयों की संख्या में अंतर को सम्मिलित किया गया है, वहीं आश्रित चर (Y-variable) के रूप में वर्ष 2001 से वर्ष 2011 की जनगणना में अलवर जिले की कुल कार्यशील जनसंख्या में हुए परिवर्तन को सम्मिलित किया गया है।

कार्ल पियर्सन के सहसम्बन्ध गुणांक का सूत्र

$$r = \frac{\sum(X-\overline{X})(Y-\overline{Y})}{\sqrt{\sum(X-\overline{X})^2}\sqrt{(Y-\overline{Y})^2}}$$

यहाँ- $\overline{X}$ = mean of X variable

$\overline{Y}$ = mean of Y variable

शोध परिणाम

अध्ययन क्षेत्र में वर्ष 2001 में कुल कार्यशील जनसंख्या 1346152 थी, जो बढ़कर वर्ष 2011 में 1521953 हो गई। एक दशक में अध्ययन क्षेत्र की कुल कार्यशील जनसंख्या में 175801 व्यक्तियों की वृद्धि अंकित की गई। (तालिका-1)

तालिका -1 : अलवर जिले में कुल कार्यशील जनसंख्या का वितरण,
वर्ष 2001 व 2011

पंचायत समिति	कुल कार्यशील जनसंख्या			
	वर्ष 2005-06 (वर्ष 2001 की जनगणना पर आधारित)	वर्ष 2015-16 (वर्ष 2011 की जनगणना पर आधारित)	अंतर	अंतर (% में)
बहरोड़	79986	**80546**	**560**	**0.7**
नीमराना	74941	**86485**	**11544**	**15.4**
मण्डावर	121213	**113254**	**-7959**	**-6.57**
कोटकासिम	60181	**74828**	**14647**	**24.34**
तिजारा	143184	**131153**	**-12031**	**-8.4**
किशनगढ़ बास	85229	**105299**	**20070**	**23.55**
लक्ष्मणगढ़	134148	**138400**	**4252**	**3.17**
रामगढ़	98366	**129924**	**31558**	**32.08**
उमरेण	119633	**140705**	**21072**	**17.61**
बानसूर	102401	**132452**	**30051**	**29.35**
थानागाजी	93125	**107746**	**14621**	**15.7**
राजगढ़	62107	**79137**	**17030**	**27.42**
रेणी	58436	**80330**	**21894**	**37.47**
कठूमर	113202	**121694**	**8492**	**7.5**
योग	1346152	1521953	175801	219.32
समांतर माध्य	96153.71	108710.93	12557.21	15.67

स्रोत: जिला जनगणना पुस्तिका, वर्ष 2001 और वर्ष 2011

अध्ययन क्षेत्र में वर्ष 2001 में पुरुष कार्यशील जनसंख्या 748637 थी, जो बढ़कर वर्ष 2011 में 841291 हो गई, इस एक दशक में अध्ययन क्षेत्र की पुरुष कार्यशील जनसंख्या में 92654 की वृद्धि अंकित की गई। (तालिका-2)

तालिका-2: अलवर जिले में पुरुष कार्यशील जनसंख्या का वितरण,
वर्ष 2001 व 2011

पंचायत समिति	पुरुष कार्यशील जनसंख्या			
	वर्ष 2001	वर्ष 2011	अंतर	अंतर (% में)
बहरोड़	42157	**44255**	**2098**	**4.98**
नीमराना	40831	**47471**	**6640**	**16.26**
मण्डावर	64705	**62234**	**-2471**	**-3.82**
कोटकासिम	32825	**39992**	**7167**	**21.83**
तिजारा	85531	**71653**	**-13878**	**-16.23**
किशनगढ़ बास	47468	**58511**	**11043**	**23.26**
लक्ष्मणगढ़	73009	**75278**	**2269**	**3.11**
रामगढ़	56155	**73772**	**17617**	**31.37**
उमरेण	67215	**79876**	**12661**	**18.84**
बानसूर	57639	**73397**	**15758**	**27.34**
थानागाजी	**51242**	**59703**	**8461**	**16.51**
राजगढ़	35441	**43937**	**8496**	**23.97**
रेणी	32959	**43438**	**10479**	**31.79**
कठूमर	61460	**67774**	**6314**	**10.27**
योग	748637	**841291**	**92654**	**209.48**
समांतर माध्य	53474.07	60092.21	6618.14	14.96

स्रोत: जिला जनगणना पुस्तिका, वर्ष 2001 और वर्ष 2011

अध्ययन क्षेत्र में वर्ष 2001 में महिला कार्यशील जनसंख्या 597515 थी, जो बढ़कर वर्ष 2011 में 680662 हो गई। इस प्रकार एक दशक में अध्ययन क्षेत्र में महिला कार्यशील जनसंख्या में 83147 की वृद्धि अंकित की गई। (तालिका-3)

तालिका-3: अलवर जिले में महिला कार्यशील जनसंख्या का वितरण,
वर्ष 2001 व 2011

पंचायत समिति	महिला कार्यशील जनसंख्या			
	वर्ष 2001	वर्ष 2011	अंतर	अंतर (% में)
बहरोड़	37829	36291	-1538	-4.07
नीमराना	34110	39014	4904	14.38
मण्डावर	56508	51020	-5488	-9.71
कोटकासिम	27356	34836	7480	27.34
तिजारा	57653	59500	1847	3.2
किशनगढ़ बास	37761	46788	9027	23.91
लक्ष्मणगढ़	61139	63122	1983	3.24
रामगढ़	42211	56152	13941	33.03
उमरेण	52418	60829	8411	16.05
बानसूर	44762	59055	14293	31.93
थानागाजी	41883	48043	6160	14.71
राजगढ़	26666	35200	8534	32
रेणी	25477	36892	11415	44.81
कठूमर	51,742	53920	2178	4.21
योग	597515	680662	83147	235.03
समांतर माध्य	42679.64	48618.71	5939.07	16.79

स्रोत: जिला जनगणना पुस्तिका, वर्ष 2001 और वर्ष 2011

तालिका 4 के अवलोकन से स्पष्ट होता है, कि अलवर जिले में वर्ष 2005-06 से 2015-16 के मध्य विद्यालयों की संख्या में समग्र रूप से वृद्धि हुई है। इस अवधि में जिले के कुल विद्यालयों की संख्या 5392 से बढ़कर 5612 हो गई, जो 220 विद्यालयों की वृद्धि अथवा 4.08 प्रतिशत की वृद्धि को दर्शाती है। पंचायत समिति वार अध्ययन से पता चलता है, कि जिले के कुछ क्षेत्रों में विद्यालयों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जबकि कुछ क्षेत्रों में कमी दर्ज की गई है। उमरैण पंचायत समिति में विद्यालयों की संख्या 340 से बढ़कर 567 हो गई, जो 227 विद्यालयों की वृद्धि अथवा 66.76 प्रतिशत की वृद्धि को इंगित करती है, जो समग्र जिले में सर्वाधिक वृद्धि है। इसी प्रकार थानागाजी में 18.71 प्रतिशत, कुल नगरीय क्षेत्र में 18.21 प्रतिशत, रामगढ़ में 10.87 प्रतिशत, तथा किशनगढ़ बास में 9.70 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, जो इन क्षेत्रों में शिक्षा के प्रसार और विद्यालयों के विस्तार की दिशा में सकारात्मक परिवर्तन का संकेत देती है। इसके विपरीत, कोटकासिम (-23.98%), बहरोड़ (-15.14%), रैणी (-15.05%), लक्ष्मणगढ़ (-12.24%), बानसूर (-9.63%) और कठूमर (-8.29%) पंचायत समितियों में विद्यालयों की संख्या में गिरावट देखी गई, जो इन क्षेत्रों में शैक्षणिक ढांचे की कमजोरी या विद्यालयों के एकीकरण का परिणाम हो सकता है। नीमराणा (-1.74%) और मण्डावर (-2.40%) में भी थोड़ी कमी दर्ज की गई, जबकि तिजारा (3.58%) और राजगढ़ (3.12%) में मामूली वृद्धि हुई है। समग्र

रूप से देखा जाए तो अलवर जिले में विद्यालयों की संख्या में वृद्धि का रुझान सकारात्मक है, परंतु यह वृद्धि सभी क्षेत्रों में समान रूप से नहीं हुई, जिससे यह स्पष्ट होता है, कि जिले में शैक्षणिक विकास असंतुलित स्वरूप में हुआ है।

तालिका-4:

अलवर जिले में विद्यालयों की संख्या का वितरण, वर्ष 2005-06 व 2015-16

पंचायत समिति	2005-06	2015-16	अंतर संख्या में	अंतर % में
उमरैण	340	567	227	66.76%
कठूमर	398	365	-33	-8.29%
किशनगढ़ बास	299	328	29	9.70%
कोटकासिम	246	187	-59	-23.98%
तिजारा	447	463	16	3.58%
थानागाजी	326	387	61	18.71%
नीमराणा	230	226	-4	-1.74%
बहरोड़	284	241	-43	-15.14%
बानसूर	436	394	-42	-9.63%
मण्डावर	334	326	-8	-2.40%
राजगढ़	321	331	10	3.12%
रामगढ़	368	408	40	10.87%
रैणी	279	237	-42	-15.05%
लक्ष्मणगढ़	425	373	-52	-12.24%
नगरीय	659	779	120	18.21%
अलवर जिला	5392	5612	220	4.08%
समांतर माध्य	359.47	374.13	14.67	0.03%

स्रोत: अलवर जिला सांख्यिकी पत्रिका, वर्ष 2007 एवं 2017

आरेख-1

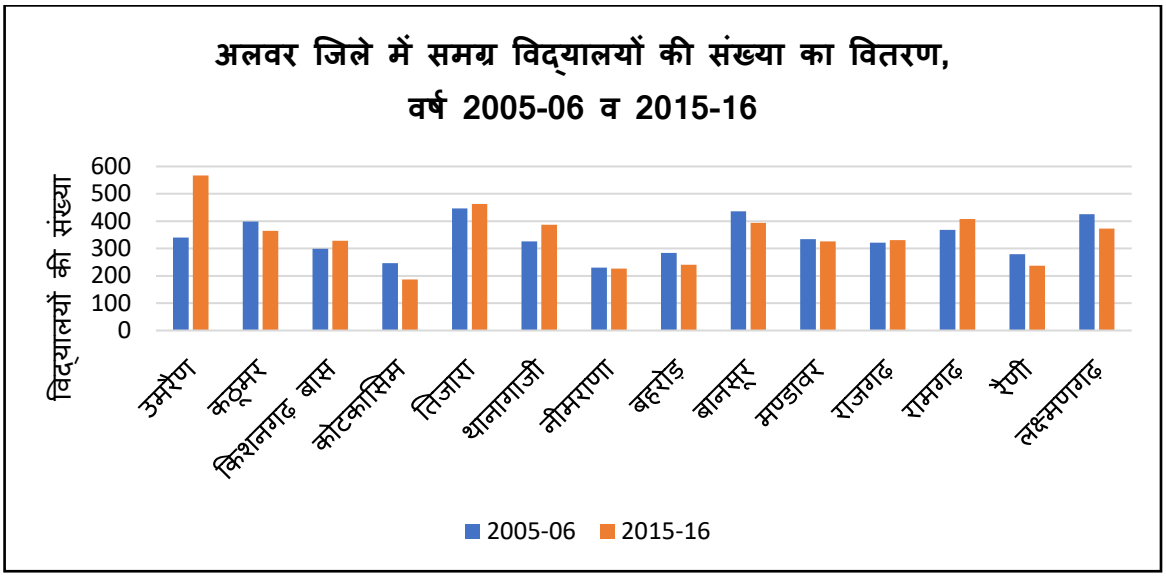

तालिका- 5 परिकल्पना की सत्यता की जाँच के लिए चरों का निर्धारण

X चर (स्वतंत्र चर)	Y1 चर (आश्रित चर)	Y2 चर (आश्रित चर)	Y3 चर (आश्रित चर)
वर्ष 2005-06 से 2015-16 के मध्य विद्यालयों की संख्या में वृद्धि (% में)	वर्ष 2001 से वर्ष 2011 के मध्य कुल कार्यशील जनसंख्या में वृद्धि (% में)	वर्ष 2001 से वर्ष 2011 के मध्य पुरुष कार्यशील जनसंख्या में वृद्धि (% में)	वर्ष 2001 से वर्ष 2011 के मध्य महिला कार्यशील जनसंख्या में वृद्धि (% में)

स्रोत: स्वयं की गणना

तालिका- 6 निर्धारित चरों द्वारा परिकल्पित कार्ल पियर्सन का सहसम्बन्ध गुणांक

चर युग्म	कार्ल पियर्सन का सहसम्बन्ध गुणांक (r)	सहसम्बन्ध का प्रकार
X चर और Y1 चर	0.25	कमजोर, धनात्मक
X चर और Y2 चर	0.24	कमजोर, धनात्मक
X चर और Y3 चर	0.28	कमजोर, धनात्मक

स्रोत: स्वयं की गणना

स्वतंत्र और आश्रित चरों के द्वारा परिकल्पित कार्ल पीयरसन के सहसम्बन्ध गुणांक का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है, कि सहसम्बन्ध की दिशा: सभी तीनों सहसम्बन्ध गुणांक r = 0.25, 0.24, 0.28 धनात्मक हैं। इसका आशय है, कि विद्यालयों की संख्या में वृद्धि और कार्यशील जनसंख्या में वृद्धि के बीच एक सकारात्मक संबंध है। अर्थात, जिन पंचायत समितियों में विद्यालयों की संख्या में वृद्धि अधिक हुई है, उनमें

सामान्यतः कार्यशील जनसंख्या में भी अधिक वृद्धि हुई है। इस आधार पर शोधकर्ता की शोध परिकल्पना सत्य सिद्ध होती है।

निष्कर्ष-

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है, कि अध्ययन क्षेत्र में विद्यालयों की संख्या में वृद्धि और कार्यशील जनसंख्या में वृद्धि के मध्य सकारात्मक सहसम्बन्ध है, किन्तु यह सहसंबंध 0.50 से कम है, इसीलिए यह सम्बन्ध एक कमजोर सहसंबंध है, इसका प्रमुख कारण है- जिले में कार्यशील जनसंख्या में वृद्धि को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों की उपस्थिति। अध्ययन क्षेत्र में कार्यशील जनसंख्या में वृद्धि के लिए अनेक कारक उत्तरदायी माने जा सकते हैं, जिनमें सरकार की नीतियाँ, आर्थिक क्रियाओं का स्तर, बाजार में मांग और पूर्ति की स्थिति, और कृषि के अन्तर्गत श्रमिकों की आवश्यकता प्रमुख हैं। तथापि शैक्षिक सुविधाएँ कार्यशील जनसंख्या में वृद्धि में परोक्ष रूप से सहायक हैं।

सन्दर्भ

1. Lutz, W., & Goujon, A. (2003). The World's Changing Human Capital Stock: Multi-State Population Projections by Educational Attainment. *Vienna Yearbook of Population Research*, 19-33.
2. Lutz, W. (2009). The Demography of Future Global Population Aging: Indicators, Uncertainty, and Educational Composition. *Population and Development Review*, *35*(2), 357–365.
3. Loichinger, E., & Prskawetz, A. (2017). Changes in economic activity: The role of age and education. *Demographic Research*, *36*, 1185–1208.
4. Prskawetz, A., & Hammer, B. (2018). Does education matter? – economic dependency ratios by education. *Vienna Yearbook of Population Research*, *16*, 111–134.
5. Vézina, S., & Bélanger, A. (2019). Impacts of education and immigration on the size and skills of the future workforce. *Demographic Research*, *41*, 331–366.

ईमेल – neetu47varsha@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 November 2025 Page No. : 186-188
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ. महीप सिंह की कहानियों में विभाजन की विभीषिका का चित्रण

अभिमल्ला विजयश्री
पीएचडी शोधार्थी,
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा,मद्रास
पी.जी. विस्तार शाखा, विजयवाड़ा–4

शोध सार :

साहित्य की विभिन्न विधाओं में कहानी और उपन्यास ऐसी विधाएँ हैं जो मानव जीवन को अत्यंत निकट से देखने–परखने की शक्ति रखती हैं। इनमें मनोरांजन के साथ–साथ जीवन के विविध पक्षों को व्यक्त करने की क्षमता होती है।

स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में तो राजनीति अधिक मुखर दिखाई देती है। य़द्यपि सत्तरोत्तर कहानियों में मूल्यच्युति, पारिवारिक और वैयक्तिक संबंधों का विघटन, व्यक्ति का अहं, नारीशोषण, मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण मुखरित हैं।

देश को एक ओर आजादी मिलती है तो दूसरी ओर विभाजन का ताप और दाह भी उसे झेलना पड़ता है। विरूध्दों के इस सामंजस्य से कितने ही लोग घर से बेघर हो गये और कितनों को अपने भरे–पूरे परिवार में न केवल साजों सामान से हाथ धोना पड़ा वरन् अपनी संतति को भी छोड़कर इस ओर से उस ओर जान पड़ा। विभाजन तो देश का हुआ पर साथ ही घर भर विभाजित हो गये और लोगों के दिलों के बीच एक विभाजक रेखा खींच गई। यह दारूण और त्रासद स्थिति थी, जिसे सभी भोगने के इच्छुक न होते हुए भी विवश थे। परिणामतः तत्प्रभावी साहित्य की सर्जना हुई। डॉ. महीप सिंह इसके एक खास अंग बने और इस सच्चाई को अपनी कहानियों के माध्यम से चित्रित करने में भी अग्रणी रहे उनकी कहानियों के मूलवस्तु महानगरीय जीवन, विभाजन की विभीषिका, सांप्रदायिकता, वर्तमान फिल्मी जगत आदि प्रधान रही हैं। विभाजन के नाम पर राजनैतिक हथकण्डों के बीच मनुष्य की बर्बरता और अमानवीयता की स्पष्ट रेखा डॉ. महीप सिंह ने अपनी कहानी पानी और पुल तथा अन्य कुछ कहानियों में खींची है।

बीज शब्द : विभाजन, त्रासद, राजनैतिक हथकण्ड, विभीषिका, मूल्यच्युति, मध्यवर्गीय जीवन, संबंधों का विघटन आदि।

हमारे देश का अनेक बार विभाजन हुआ है, जेसे–पाक का निर्माण , पंजाब का विभाजन आदि है। विभाजन के कारण अनेक बेगुनाह लोगों के परिवार उजड़ गये, व्यापार बंद होग गये और लाखों–करोंड़ों रूपए का आर्थिक नुकसान हुआ था। अनेक बेगुनाह बच्चे, बूढ़ों, स्त्री–पुरूषों की हत्याएँ हुई थी। भारत और पाकिस्तान की ओर से नागरिकों के यातायात के लिए रेल की व्यवस्था की गई थी ''परंतु दिल्ली से मुस्लिम से खचाखच भरी हुई रेलें चलती थीं जिसके यात्री कराची पहुंचने मात्र तक लाशों में बदल जाते थे। और कराची के हजारों हिंदू दिल्ली में आते आते प्रेत में बदल जाते थे।''[1] इसी संदर्भ में अंग्रेजी लेखक मोसले खिते हें –''अमृतसर के सरे बाजार में कछ सिक्ख युवक उन मुस्लिम युवतियों को घेरकर खड़े थे जिन्हें वे जबरदस्ती उठा लाये थे ओर उन्हें पूर्णतः नंगा कर दिया था। उन युवतियों की नंगी

परेड निकाली गई थी। कुछ युवक इन युवतियों को खींच ले गए और बारी–बारी से उन पर बलात्कार करने लगे। दूसरी ओर इसी समय लाहौर के मुसलमानों ने वहां के सबसे खूबसूरत गुरूद्वारे पर हमला कर दिया।

हजारों स्त्री–पुरूष और बच्चों ने इस विश्वास के साथ गुरूद्वारे में शरण ढूँढ़ी थी कि कोई आग लगा दी और जलते गूरूद्वारे के शोलों कें पाकिस्तान का पहला स्वतंत्रता दिन मानया गया।''[2] महीप सिंह की कई कहानियों में बड़ी मात्रा में इसी विभाजन की त्रासदी का सूद्वमता से सजीव चित्रण किया हुआ परिलक्षित होता है।

अतः कई कहानियों में विभाजन के कारणों का संकेत दिया है। विभाजन कारणों का संकेत 'पानी और पुल' कहानी में किया हुआ दिखाई देता है। कहानी का नायक 'मैं' अपनी माँ के साथ उसी गांव की ओर जा रहा है वहां से चौदह साल पहले भाग आये थे। वह कहता है–''आज मैं माँ साथ उस खाई पर राजकीय औपचारिकता के बाँधे हुए पुल से गुजरकर उसी ओर जा रहा था जो कल कितना अपना था, आज कितना पराया है।''[3]

'मैं' आगे हता है–''फिर सारे पंजाब में अग लगा गई। घर के घर, गॉव के गॉव और शहर उस आग में जलने लगे। आग रूकी तो लगा, इधर तक सपाट फैली जमीन अमृतसर और लाहौर के बीच से फट आई है और उस पर का फटा हिस्सा बीच में गहरी खाई सब भूल–से गए कि उस गहरी खाई के उस पार हमार अपना गॉव था, पक्की सड़क के किनारे, पीछे की ओर एक नहर थी और पास ही जेहलम नदी अल्हड़ लड़की की तरह अछलती कूदती वह रही थी।''[4] मैं का मन आज भी तत्कालीन स्थिति को याद करके कॉप उठता है। उस समय की हर घटना उसे आद आती है।

अंतरमन में एक दहरात सी महसूस होती है–''गाड़ी ने लाहौर का स्टेशन छोड़ा तो एक बारगी मेंरा मन कॉप उठा। अब हम लोग उस ओर जा रहे थे जहॉ चौदह साल पहले ऐसी अग लगी थी जिसमें लाखों जल गए थे और लाखों पर जलने के निशान आजतक बने हुए थे। मुझे लगा, हमारी गाड़ी किसी गहरी, लम्बी अंधकारमय गुफा में घुस रही है। और हम अपना सब कुछ इस अंधकार को सौंपे दे रहे हैं।'' नायक का अपे गॉव के प्रति जाने को मन नहीं करता है और अंदर से लगाव भी है।

'दिल्ली कहाँ है?' कहानी में विभाजन के समय टूटे परिवार और रिश्तों नातों का चित्रण दृष्टिगोचर होता है। कहानी का नायक 'मैं' जब लाहौर जाता है तो वहॉ उसे अनेक लोग मिले जो विभाजन के वक्त दिल्ली से वहां आये हुए थे। एक व्यक्ति है जो 'मैं' से कहता है ''मुल्क के बटवारे के वक्त बॅटवारा क्या हुआ। हमारा तो खानदान ही बॅट गया। आधे रिश्तेदार यहॉ आधे वहा। हम एक दसूरे के लिए परदेश बन गए हैं।''[5] उयहां दिखाई देता है कि बॅठवारे के समय अनेक लोगों के परिवार ही उजड़े हुए थे।

इस प्रकार महीप सिंह की कई कहानियों में विभाजन के समय का वास्तव चित्रण किया हुआ दिखाई देता है। विभाजन के राजनैतिक कारणों की ओर संकेत किया है तथा पाकिस्तान के निर्माण के समय का भी चित्रण किया हुआ दिखाई देता है।

विभाजन के बाद स्थलांतरित लोगों के जीवन का यथार्थ चित्रण महीप सिह की कई कहानियों में काफी मात्रा में किया हुआ दृष्टिगोचर होता है।

'पानी और पुल' कहानी का नायक 'मैं' पंजाब से उजड़कर किसी दूसरी जगह स्थलांतरित हुआ है। जब अपने सराई गॉव से एक दिन अपनी मॉ के साथ जा रहा था तो रेल वहां रूकी थी। रेल के आसपास के लोगों में से एक ने पूछा ''तुम सराई की हो?'' ''हॉ जी, हम सराई के ही है'' माँ ने जारे दकर कहा, 'इसी गांव के'। एक ने कहा तुम मूलासिंह की बीवी हो खेल सिंह की भाभी? कैसे हैं सब लोग...?''[6] ऐसी अनेक बातों ककी पूछताछ की। उस वक्त वहां के लोगों ने 'मैं' और उसकी मॉ को अने खाने की चीजें दे दीं और एक ने ता बार–बार प्रार्थना की कि ''भरजाई, तुम अपने बच्चों को लेकर यहां आजाओं''[7] किसी ने कहा ''भरजाई तुम लोग वापस आजाओ'' यहां स्पष्ट दिखाई देता है कि अपने गॉव के लोगों के प्रति मन में चौदह साल बाद भी उतना ही प्रेम है जितना पहले था।

जब पाकिस्तान बना तो अने कदिल्ली के मुसलमानों को पाकिस्ताना जाना पड़ा और पाकिस्तान से अनेक हिंदूओं को भारत में आना पड़ था। महेश दर्पण ने ठीक ही लिख है–''स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही विभाजन की विभीषिका ने बड़ी संख्या में लोगों को अपनी जमीन छोड़ने पर विवश किया। यह एक ऐसा सत्य था जो खुले आम सबकी ऑखों के सामने घट रहा था।''[8] दिल्ली से पाकिस्तान के लाहौर में गये लोगों की स्थिति का चित्रण 'दिल्ली कहाँ है' कहानी में किया हुआ दिखाई देता है। नायक 'मैं' एक दिन लाहौर जाता है तो दिल्ली से स्थालांतरित अनेक लोग प्यार से बातें करते है। स्कूटरवाला 'मैं' से

पैसे नहीं लेता। वह 'मैं' से कहता है मेरी एक बार दिल्ली आन की इच्छा है आप मुझे जब भी आपके यहां कोई कार्यक्रम हो तो मुझे एक आमंत्रण पत्र भेजें जिसके आधार पर 'मैं' दिल्ली आने की भारत सरकार से इजाजत लूगा उसकी ओर देखकर 'मैं' सोचता है ''एक ओर खून में डूअी हुई जंग और नफरत से सराबोर कुछ ही साल पहले की यादें, दूसरी ओर पेप्सी कोला, सोड़ा और नींबू के ठंडे पेय में तैरता हुआ वर्तमान। दोनों सच्चाइयों को अपने कंधों पर लादे हुए लोग कैसी अजीब लड़खड़ाती हुई चाल चलते जा रहे हैं।''[9]

विभाजन में अनेकां के व्यापार उजड़ गये। 'शहर' कहानी के नायक 'मैं' के बड़े भाई की कानपुर में दुकान थी। विभाजन के वक्त वे कानपुर से जालंधर गए। जालंधर में उनके पुत्रों ने तो अच्छा खासा धंधा शुरू किया परंतु 'मैं' के बड़े भाई का दिल जालंधर में नहीं लगता वे बार–बार कोई–न–कोई बहाना बनाकर कानपुर जाते थे। –''जिस शहर में सारी उम्र गुजर गई, शहर से बना हिसाब–किताब इतनी जल्दी कैसे खत्म हो जाएगा।''[10]

निष्कर्षः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विवेच्य कहानियों में विभाजन और विभाजन के बाद की लोगों की स्थितियों का चित्रण किया हुआ दिखाई देता है। विभाजन के पीछे राजनैतिक लोगों का स्वार्थ के कारणों का संकेत मिलता हैं। स्थानांतरित लोगों का अपनी मातृभूति के प्रति प्रेम और अलगाव दिखाई देता है। विभाजन के कारण अनेकों के परिवार, व्यापार उजड़े थे। जो भी लोग स्थनांतरति हुए उसमें ज्यादातर मजबूर ही थे। पाकिस्तान और पंजाब दोनों के विभाजन का यथार्थ चित्रण हुआ दिखाई देता है। डॉ. महीप सिंह की कहानियाँ केवल भौगोलिक और राजनीतिक उथल–पुथल तक सीमित नहीं हैं, विभाजन के कारण उत्पन्न हुए मानसिक संवेदनाओं और मनोवैज्ञानिक प्रभावों पर भी केंद्रित करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. महीप सिंह, समग्र कहानियाँ (3) पृ. 271
2. महीप सिंह, समग्र कहानियाँ (3) पृ. 272
3. महीप सिंह, समग्र कहानियाँ (1) पृ. 273
4. महीप सिंह, समग्र कहानियाँ (1) पृ. 143
5. महीप सिंह, समग्र कहानियाँ (1) पृ. 145
6. महीप सिंह, समग्र कहानियाँ (1) पृ. 216
7. महीप सिंह, समग्र कहानियाँ (1) पृ. 216
8. महीप सिंह, समग्र कहानियाँ (1) पृ. 216
9. महीप सिंह, समग्र कहानियाँ (1) पृ. 217
10. महीप सिंह, समग्र कहानियाँ (1) पृ. 217
11. हिंदी कहानियों का इतिहास, डॉ. गोपाल राय

मो. 99858 01084